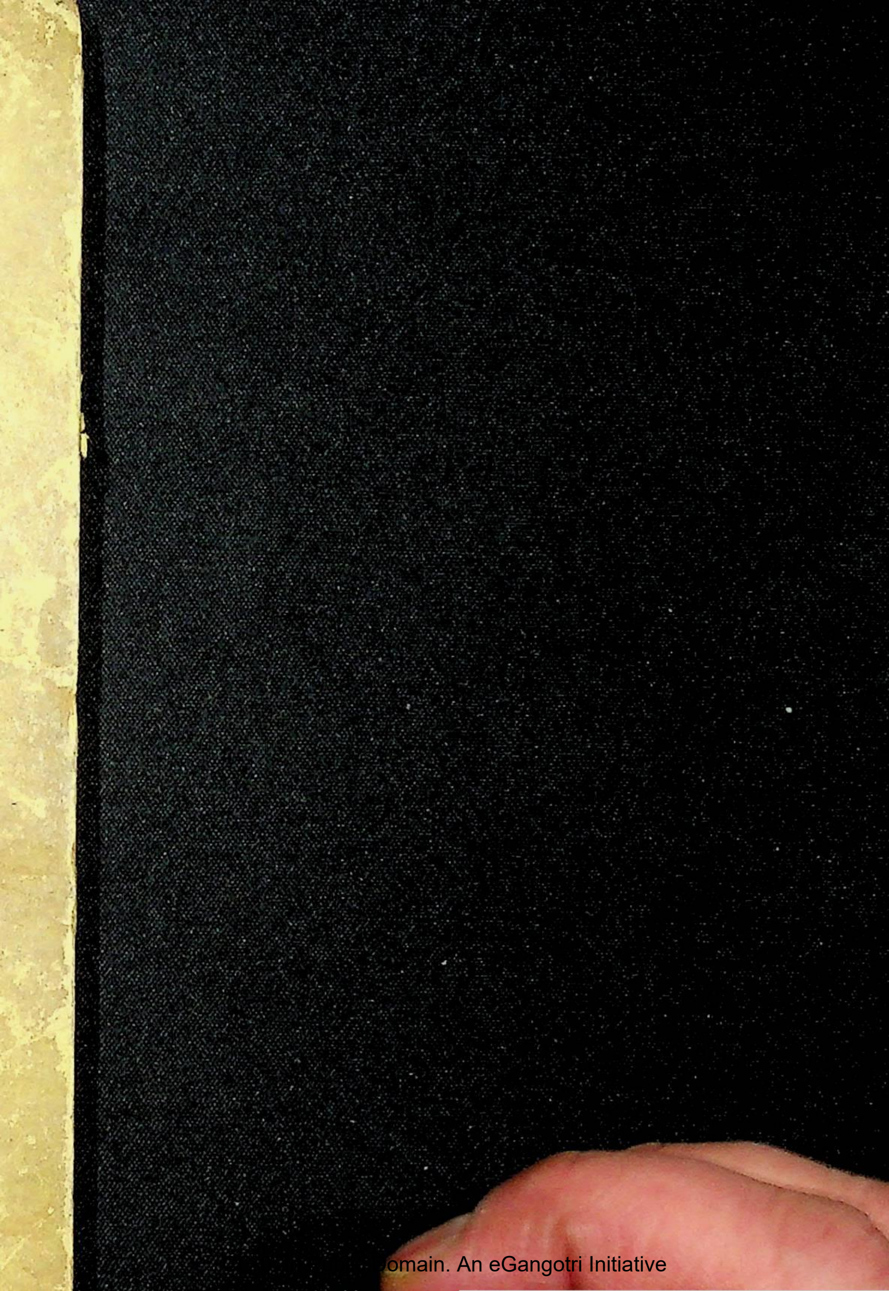
माटी की गुड़िया

उपन्यासकार

कमल शुक्ल



प्रेम प्रकाशन, दिल्ली-६.



Mati Ki Gudiya
by
Kamal Shukal.

'एक प्रेरणा, कुछ बोल'

कभी देखी थी मैंने माटी की गुड़िया। आज उसकी कहानी लिख दी। कहानी क्या है—एक आत्म-सन्देश। कला क्या है—एक जीवन प्रेरणा ही बोल है और बोल-ही जीवन की वास्तविकता। वास्तविकता ही मर्यादा है और आदर्श उसका पुजारी। यथार्थ हमारा परीक्षक है और संतुलन हमारा धन। यही सब तो था सरोज में। वह माटी की गुड़िया हमारी भारतीय नारी की प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता की प्रतीक है। इस नायिका को मैंने देखा, इसके प्रति मुझमें सहानुभूति उमड़ी बस फिर कलम नहीं मानी और सरोज इस उपन्यास की नायिका बन गई।

उपन्यास के तथ्यों के बारे में मुझे कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि भाई जगत शर्मा ने अपनी छोटी-सी-ही भूमिका में सब कुछ स्पष्ट कर दिया है। वे मेरे सहयोगी-ही नहीं, अनुज तुल्य प्रिय हैं और निकट भविष्य में ही हिन्दी-जगत उनसे सहज-ही परिचित हो जायेगा, यह मेरा विश्वास ही नहीं, पूर्ण निश्चय है। मैं यह कृति उन्हीं को समर्पित करता हूँ। यह मेरा प्यार समझो या अनुराग; क्योंकि छोटों को जो खिलौने दिए जाते हैं वे ऐसे ही तो होते हैं माटी के, कागज के, लकड़ी और शीशे के आदि-आदि।

एम० ५७, किदवई नगर,
कानपुर।

कमल शुक्ल



'मेरी प्रिय कृति माटी की गुड़िया'

माटी की गुड़िया की नायिका सरोज के प्रति मेरी अडिग आस्था है और आस्था ही है विश्वास की जननी। भ्रम उसके आगे नत होता है, स्नेह दूर-दूर भागता है और पराकाष्ठा कहती है कि वही तो है भारतीय नारी का गौरव और फिर जो देश गौरवान्वित हो उसका कहना ही क्या ? जहाँ दाख-छुहारे की बगिया में मन की कोयल बोलती है, जहाँ अमराई में बौर महकता है और जिस देश में सावन बरसता है रिम झिम, वही तो पवन धरती है, सोने की चिड़िया जिसे आर्यवर्त कहते हैं। यहाँ का आदर्श अद्वितीय है, यहाँ की मर्यादा बेजोड़। यहीं तो राम कृष्ण उपजे थे। यहीं के हैं ग्रन्थ रामायण, महाभारत और गीता। यहाँ की पंच-कन्या जगत विख्यात हैं। सीता, द्रोपती, कुन्ती, गाँधारी और सावित्री, जिसने यमराज को भी परास्त कर दिया था और यहीं की कहानी है माटी की गुड़िया की। सरोज वह चित्र है, जो एक बार पढ़ कर कभी भुलाया नहीं जा सकता।

और माटी की गुड़िया सरोज, जो सचमुच माटी की गुड़िया ही थी सहज, सरल एवं सुबोध, एक सफल नायिका है। किशोरावस्था में जिन्दगी के उत्थान-पतन की अनेक परिस्थितियाँ उसकी सहेली बनीं और फिर उसको दुनिया की भूल-भुलइयाँ में डाल दोनों हाथों कठपुतली की तरह ऐसा नचाया कि जिन्दगी एक आँख हँसी दूसरी आँख रोयी। वह मर-मर जिन्दा हुई। उसने दो बसेरे बनाए और प्रत्येक को प्रसन्न रखने का जीवन भर प्रयत्न करती रही। किन्तु नारीगत दुर्बलता ने उस पर आघात-प्रतिघात किये। गुड़िया फूटी तो नहीं; लेकिन उसकी काया अपना रूप खो बैठी।

माटी की गुड़िया उपन्यास यद्यपि यथार्थ की पृष्ठभूमि पर खड़ा है लेकिन आदर्श की माला सरोज के गले में है और सहनायिका सुनीता के गले में भी वही हार। जिस देश में सुनीता जैसी स्त्रियाँ हों और कुमारमाधव जैसे व्यक्ति

वहीं तो सहयोग मुस्कुराता है, वहीं सन्तोष का फूल खिलता है और सारी दुनिया उसकी महक सूँघती है।

जयन्त, जिसका चरित्र हेय लगता है, मर्यादा की एक कड़ी है। अशोक, जो अपने में सब कुछ है, एक निरर्थक पदार्थ। बचपन का प्यार अमर है, जवानी की हवा एक ज्वार। तभी तो मिट गया अशोक और जयन्त ही पथ का दावेदार बना। यह कृति समाज को ही नहीं, देश को ही नहीं, अखिल-विश्व को यह सन्देश देती है कि सचाई ही सब कुछ है प्यार एक जिन्दगी। मनुष्य कुछ नहीं, मिट्टी का एक लोंदा है। वही बुत है, वही इन्सान। वही भगवान और वही शैतान। कर्म प्रधान है, चरित्र कसौटी है और परिस्थितियाँ मंजिल। उन्नति गुलाब का फूल है, जिसमें काँटे लगे होते हैं।

इस तरह सब कुछ मिलाकर कलम के धनी, भाषा में सिद्धहस्त मुन्शी प्रेमचन्द्र जैसी औपन्यासिक प्रतिभा से ओत-प्रोत श्रीकमल शुक्ल का यह उपन्यास एक जीता जागता दर्पण है भटके हुए लोगों को सद्मार्ग का निर्देशन दे, साथ-ही-साथ मर्यादा की कहानी कहता हुआ, यह उपन्यास प्रतिष्ठा का स्थापक है। मैंने इसकी पांडुलिपि स्वयं ही लिखी है और मुझे यह कृति बहुत प्रिय लगी इसमें निश्छल-प्रेम की कथा है और है ऐसी अनुभूतियों की माला, जिसे पहन हम अपनी जिन्दनी में सहज ही मुस्कुरा सकते हैं।

६१/१२५, सीताराम मोहाल,
कानपुर।

जगत शर्मा

१



नगर हरदोई के आलू थोक के चौराहे पर एक गुड़िया बेचने वाला प्यारी-प्यारी मीठी आवाज लगा रहा था—"चीनी मिट्टी की गुड़िया कागज-कपड़े की गुड़िया और भइया लो, यह दो-दो पैसे माटी की गुड़िया।" आलू थोक नगर का वह धनी-मानी मौहल्ला है, जिस पर उसे गर्व है। उसके चौराहे पर छोटे-मोटे, मध्यम श्रेणी के घर नहीं; आलीशान कोठियाँ हैं, गगनचुम्बी अट्टालिकायें। उसी चौराहे पर गुड़ियावाला मधुर-मीठे स्वर में गा रहा था—"मेरी माटी की गुड़िया रे। तू चल री पिया के देश, मेरी कपड़े की गुड़िया रे।"

अमीरी की गोद में पले लड़के-लड़कियाँ दौड़े। उनके खिदमतगारों के बाल-गोपाल भी उधर ही भागे और ललचाये वे बालक और बालिकायें भी, जो धोबियों के थे, मिल-मजदूरों के जो मध्यम वर्ग के ही नहीं; बल्कि निम्न-मध्यम-श्रेणी के परिचायक थे। गुड़िया वाला काँधे हिला-हिला, सिर झुला-झुला, मधुर रागिनी अलाप रहा था—"मेरी कागज की गुड़िया रे, मेरी माटी की गुड़िया रे।"

किसी ने माटी की गुड़िया खरीदी, तो किसी ने कपड़े की पसन्द की। किसी ने चीनी-मिट्टी की ली। लेकिन एक बालिका रोकर रह गई। गुड़िया-वाले ने पूछा कि क्यों रोती है बेटी। जा, माँ से पैसे ले आ। मैं अभी खड़ा हूँ। तुझे जो अच्छी लगे ले ले। इस पर उस रोती हुई बालिका के साथी बच्चे खिलखिला कर हँस पड़े। वे सम्मिलित स्वर में बोले—"अरे सरोज!

यह क्या लेगी गुड़िया ? इसकी माँ मर रही है, बाप शराब के नशे में है। गुड़िया वाले यह तो खुद ही माटी की गुड़िया है।"

सरोज का उपहास कर बाल-समुदाय वहाँ से खिसका; किन्तु वह वहीं खड़ी रही, रोती रही, सिसकती रही। ऋतु बसन्त की थी। निकटवर्ती एक कोठी में लगे कलमी आम के वृक्ष पर बैठी कोयल कूक रही थी 'कुहू-कुहू।' शीतल-मंद-सुगन्ध समीर वातावरण में ऐसा घुल रहा था जैसे मुँह में मिसरी। सड़क पर कारें रपटतीं, बग्घियाँ दौड़तीं। ताँगे और इक्के वाले भी बोलियाँ लगाते—हटना भइया ! चलना बाबू !! बचो राजा। चल मेरे घोड़े, चल काबुली ! हटना बन्दे ! चलो भाई जी !!"

दिन का पहला पहर था और सलोना प्रभात मुखर-मुखर कर कह रहा था कि आई बसन्त-ऋतु, आज मैं हूँ मगन, मेरा नाचे जिया। गुड़िया वाले ने अपनी बात फिर दोहरायी—"जा बेटी पैसे ले आ। तू रोती क्यों है ? तुझे सस्ती दे दूँगा। दो पैसे की माटी वाली गुड़िया, एक पैसे में।"

"एक पैसा भी नहीं है मेरे घर में। मुझे रोटी भी नहीं मिली। मेरी माँ बीमार है। मेरा बाप निकम्मा है वह जब दारू पीकर आता है, तो मेरी माँ को पीटता है। जाओ गुड़िया वाले, मैं गुड़िया नहीं लूँगी।" यह कहने के साथ-ही नव दस वर्षीया बालिका सरोज फूट-फूटकर रोने लगी।

गुड़िया वाले को दया आ गई। वह सरोज को गुड़िया यों-ही देने लगा। उसने कहा—"न रो बेटी ! लो, गुड़िया लो। मैं तुमसे पैसा नहीं लूँगा।

"मैं भीख नहीं लूँगी। मैं भिखारी की बेटी नहीं। मेरी माँ बिगड़ेगी। जाओ गुड़िया वाले, जाओ मैं गरीब हूँ, बहुत-ही गरीब। मेरे घर में कुछ भी नहीं।"

सरोज यह कहकर वहाँ से भागना-ही चाहती थी, तब तक एक पन्द्रह सोलह वर्ष का लड़का आ गया। उसने उसकी राह रोक ली। वह व्यस्त स्वर में पूछने लगा— 'क्या हुआ सरोज ? तुम रो क्यों रही हो ? किसी ने तुम्हें मारा ?

नहीं किसी ने नहीं। मैं माटी की गुड़िया लूँगी। मेरे पास पैसे नहीं।

यह गुड़िया वाला भीख दे रहा है। तुम उधार दे दो। मैं माँ से कह दूँगी। सचमुच जयन्त, मुझे यह बहुत अच्छी लगती है माटी की गुड़िया।"

"पगली कहीं की।" यह कहकर जयन्त ने बालिका के कपोल पर एक हल्की-सी चपत लगायी, फिर दो पैसे निकाल गुड़िया वाले को देता हुआ बोला—"दे भाई माटी की गुड़िया। यह सरोज भी तो मेरी माटी की गुड़िया—ही है। तभी तो रोने लगती है।"

गुड़िया वाले ने गुड़िया दी; रोती हुई सरोज हँस दी। उसने अपने आँसू पोंछे और तभी उसके साथ-साथ चलता हुआ जयन्त कहने लग—"मैं चाचो से खुद कह दूँगा कि मैंने सरोज को गुड़िया ले दी है। उसके पैसे नहीं लूँगा। मैं झूठ नहीं बोलता, सच कहता हूँ सरोज कि तू मुझे बहुत प्यारी लगती है। बताऊँ कैसी जैसी यह माटी की गुड़िया।"

यह कहकर जयन्त ने सरोज के चिबुक पर उँगली रखी, फिर उसकी ठुड्डी हिलायी। बालिका ने शर्म और संकोच से गर्दन झुका ली। तभी अचानक देखते-देखते हवा में हलर मच गया। नीला आसमान काले बादलों से घिर गया और धरती पर से उठकर गर्द के गुब्बारे ऊपर जा टिकने लगे। सकल दिशाओं में धुन्ध छा गई। सरोज चीख पड़ी; क्योंकि काली आँधी आ गई थी। हवा बड़े-बड़े झकोरे भर रही थी। वह जयन्त के वक्ष से लग गई। ऐसे में ही काले मेघों के मुँह खुल गये। वे प्रतात बन धरती पर झरने लगे। दोनों भीगने लगे; हवा का वेग कम हुआ। अन्धेरा दूर हुआ। दोनों भीगते हुए अपने-अपने घरों की ओर जा रहे थे।

सरोज की माटी की गुड़िया भी भीग गई थी। उसके रंग उतर गये थे। वह बदसूरत हो गई। सरोज दुखी हुई, तो जयन्त ने हँसकर उसे आश्वासन दिया। वह बोला—"चिन्ता क्यों करती हो सरोज! मैं इसे फिर से सोहागिन बना दूँगा। इसमें रंग भर दूँगा। जानती नहीं पगली, आदमी माटी का पुतला है और औरत माटी की गुड़िया! चल, चल मेरी माटी की गुड़िया। तुझे मैं घर पहुँचा दूँ, फिर मैं जाऊँ।"

सरोज हँस दी; जयन्त ने उसकी चोटी हिलाई। तब खिलखिल करके वह

दौड़ने लगी माटी की गुड़िया। आकाश से आ रही बूँदों की बौछार अब रिमझिम-रिमझिम का राग आलापने लगी थीं और हवा हो गई थी अनुकूल। वह माटी की गुड़िया के साथ-साथ चल रही थी। और भीगी हुई सड़क पर छप्-छप् करती हुई सरोज अपने घर जा रही थी। और जयन्त अब भी उसकी चोटी पकड़े था। वह कह रहा था—"चल मेरी माटी की गुड़िया……"

२



संसार में जिन लोगों को कमीन और जलील की संज्ञा दी जाती है; जिनको धूर्त, पापी और नीच कहकर पुकारा जाता है। किसी के पास इसका जवाब है? कोई कह सकता है? कोई प्रमाण दे सकता है! हर शिशु गर्भ में माँस का लोथड़ा होता है। जन्म लेने पर वह वातावरण के पालने में झूलता, परिस्थितियों के खिलौनों से खेलता। तब उसके सम्मुख सबसे पहले जो समस्या आती है, वह वर्ग-भेद की, वर्ण व्यवस्था की। कुलीन, बड़े और अमीर गरीब को उसी तरह खा जाना चाहते हैं जैसे छोटी मछली को बड़ी मछली। और अपना पराया-ही मनुष्य को सिखला देता है कि एक ईर्ष्या हैं, दूसरा द्वेष-यश का टीका और नेकनामी का ताज पहनने का हर आदमी इच्छुक होता है; किन्तु जब कामनायें कुचल दी जाती हैं, परिस्थितियाँ मोड़ लेती हैं, तो आदमी कहता है कि जहाँ सत्यानाश, वहाँ साढ़े सत्यानाश, चोर चोरी की विद्या गर्भ से नहीं सीखता। व्यभिचारी भी मुट्ठी बाँधे केहांव-केहाँव करता आता है। धूर्त, लम्पट, जुआड़ी और शराबी भी वैसे-ही धरती पर आते हैं जैसे सबका जन्म होता है। फिर वह विभिन्नता क्यों? छाले पड़ जाते हैं आदमी के कलेजे में, जब वह बर्छी-भाले जैसी बातें सुनता है। दुख उसके लिये नासूर हो जाता है, जब वह यह तय पा लेता है कि मेरे लिए सुख सम्भव ही नहीं। मध्यवर्ग निम्नवर्ग

और निम्न मध्य श्रेणी, ये तीनों वर्ग जीते हैं अपने भाग्य पर। यद्यपि भारतवर्ष में पूंजीपति मुट्ठी भर-ही हैं; लेकिन फिर भी लगता है कि उनकी शोषण-शक्ति उतनी ही तीव्र है जैसी अणुशक्ति। क्या करता रज्जन? वह लक्ष्मी शुगरमिल में छियालिस रुपए पाता था। वहाँ कुली था। सीजन भर मिल चलता, उसके बाद छुट्टी हो जाती। परिवार में पत्नी थी और छोटी-सी बच्ची सरोज। दस-दस, पाँच-पाँच रुपए का कर्ज इतना था कि वह कभी उऋण नहीं हो पाता। ऋण मनुष्य के लिए वह व्याधि है, जैसा क्षय, संक्रामक रोग। कर्जा तपैदिक हो जाता है। आदमी मर कर चला जाता है; लेकिन ऋण-परिशोध नहीं होता। ऐसी-ही स्थिति रज्जन की। जिस दिन वेतना बँटता, मिल के फाटक पर ही लोग उसे घेर लेते, सब पैसे छीन लेते, वह मन-ही-मन रोकर घर लौटता पत्नी कहती कि रुपये लाये? अनाज ले आओ। अपने लिए दो रुपए का घी। अरे, सरोज के लिए फ्राक बनवा दो। बटलोई फूट गई है, उसे बदला दो। तब रज्जन धीरे-से साँस लेता और कहता कि गरीबी तेरा बुरा हो।

इस तरह फिर कर्ज काढ़ा जाता। पचास देने वाला पैंतालिश देकर पुरनोट पर हस्ताक्षर करवा लेता, एक आना रुपया सूद अलग से। न बटलोई बदल पाती, न सरोज को फ्राक बन पाती। किसी तरह रोटियाँ चलतीं। सरोज की माँ आखिर गरीबी की मार सह नहीं पायी। उसे ज्वर रहने लगा, खाँसी आने लगी। एक दिन रज्जन ने बड़े अस्पताल में ले जाकर दिखलाया, तो मालूम हुआ कि बुखार बस गया है। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद हमारे देश में निःशुल्क चिकित्सा की न जाने कितनी व्यवस्था की गई है, कितने ही साधन जुटाये गए हैं, लेकिन गरीब जनता उतने अंशों में लाभ नहीं उठा पाती हर विभाग में हर अधिकारी भूखा। गृह मंत्रालय इस ओर सचेत नहीं; न जाने क्यों? ऐसा लगता है कि जैसे यहाँ कोई अपने प्रति ईमानदार-ही नहीं। सोमा को लाभ नहीं हुआ। उसके फेफड़े खाँसते-खाँसते छलनी हो गये। वह पूरी-पूरी तपैदिक का शिकार हो गई।

अब रज्जन जब मिल से आता, तो रोटियाँ सेंकता, सरोज को खिलाता। रात को पत्नी के लिए दवा लाता। सारी रात जागता और सोचा करता।

वह स्वयं पीला पड़ गया। उसकी भूख मर गयी। तब एक दिन उसने दारू पी फिक्र भुलाने के लिए। धीरे-धीरे नशा उस पर हावी हो गया। वह पियक्कड़ बन गया। अब सबकी नजर में करेला नीम पर चढ़ गया। लोग थू-थू करने लगे। अब संसार का मायाजाल हँसा, परिस्थितियां मुस्करायीं। वे एक-दूसरे से बोलीं—"देखो, कैसी बाजी मात हुई ! यह दुनियाँ शतरंज की चौपड़ है। यहाँ का हर बसर प्यादा और फरजी है। कोई सीधा चलता है, कोई टेढ़ा और शतरंज की चालों की शह तथा मात ही जिन्दगी और मौत है। रज्जन घी खायेगा। पहले भर पेट रोटी तो खा ले। सरोज नयी फ्राक पहनेगी। उसे नहीं मालूम कि उसके मुकद्दर में भीख माँगना बदा है। शराबी बाप की बेटी वह बेची जा सकती है, खरीदी जा सकती है और मौत के घाट उतारी जा सकती है। सोमा को जिन्दगी में सोना-चाँदी नहीं मिला, उसने जरी और रेशम नहीं छुआ। सारा बदला ले लिया भाग्य ने। उसे राज रोग मिला, जो साँसों के साथ-ही जायेगा, इस घर की कहानी यहीं खत्म हो जायेगी।

अब रज्जन जी भर-कर पीता। कच्ची शराब सस्ती पड़ती। वह घर आता, तो घनघोर नशे में होता। सोमा कुछ कहती, मना करती, तो वह उस रोगिणी को रुई की तरह धुन डालता। सरोज दो-दो दिनों तक भूखी रहती। उसके घर के बरतन बिक गये। मिट्टी के घड़ों में पानी रहता। आलमोनियम के बर्तनों में खाया जाता। कपड़े सबके फट गये थे। मोहल्ले में सभी कहते कि धिक्कार है रज्जन को; औरत और लड़की को रोटी कपड़ा तो दे नहीं सकता ऊपर से पीटता है।

नौ-दस वर्ष की छोटी-सी सरोज सोचती अकेले बैठकर कि हे भगवान् अगर मैं लड़का होती तो मैं भी मजदूरी करती। मेरे साथ की लड़कियाँ पढ़ती हैं। वे स्कूल जाती हैं। भगवान मुझे और मेरी माँ को मौत क्यों नहीं दे देता। हम दोनों बड़ी दुःखी हैं। मैं जयन्त से कहूँगी कि वह मेरी नौकरी लगवा दे। मैं माँ की दवा करूँगी, नहीं तो माँ मर जायगी फिर क्या होगा।

और कभी सोचती सरोज कि हाँ ठीक तो है। मैं पड़ोस के घरों में जाकर किसी का पानी भर दूँ, किसी के बरतन मल दूँ सब का कुछ-न-कुछ

काम करूँ। लोग पैसे देंगे। लाकर माँ को दूं। मुझे शरम लगती है, जब सहेलियाँ हँसती हैं और कहती हैं कि इसका बाप शराबी है।

एक दिन साँझ समय ऐसा—ही कुछ सोच रही थी सरोज। तभी कुछ लोग उसके बाप को हाथों पर उठाये आँगन में ले आये। उसके खून बह रहा था। लोगों ने बतलाया कि मोटर-दुर्घटना हो गई है। बालिका चीख पड़ी और सोमा ने उपेक्षा से मुंह घुमा लिया। वह लोगों से बोली—"डाल दो मुये को एक कोने में। रोज-रोज पीकर आता है। यह मर जाता, मैं राँड हो जाती, तो अच्छा होता। क्यों रोती है सरोज? तेरा बाप जिन्दा ही मर गया। तू भगवान की बेटी है वही तेरा बाप है।"

और रज्जन, जिसकी गाँठें फूट गई थीं, जिसकी ठुड्डी से खून बह रहा था जो अपने होश में नहीं था, कह रहा था—"तू जल्दी से जवान हो जा सरोज फिर मुझे शराब के पैसे नहीं देने पड़ेंगे। मैं तुझे होटल के मैनेजर से ही ब्याह दूंगा। मैंने उसका कर्जा खाया है। लाओ महाजन जी, दों पैग और, अभी नशा पूरा नहीं हुआ है।"

सोमा नें दीवाल पर सिर पटक दिया। उसका माथा फूट गया। वह क्रोध से बड़बड़ाने लगी—"धिक्कार है! तू हे नीच! तू लड़की की कमाई खायेगा? तू शराब पियेगा? नशा करेगा? इज्जत—अस्मत सब बेच देगा! मैं तुझे जहर दे दूंगी, जिन्दा-ही मार डालूंगी। खबरदार! अब जो मेरी लड़की के लिए कुछ कहा, तो मैं तेरी जीभ काट लूंगी।"

तू जहर देगी मुझे? तू जीभ काटेगी मेरी?" यह कहा रज्जत ने। वह जैसे स्वस्थ हो गया और तेजी के साथ उठ कर सोमा की ओर भागा। उसने गिन-गिन कर घूंसे लगाये सोमा की पीठ पर। बेचारी को खाँसी आ गई और कफ की जगह खून मुंह से आने लगा। वह चेतनाहीन हो गई। नशेबाज अपनी धुन में रहा। तब सरोज ने दाँतों से चबा लिया बाप का हाथ। वह हाँफ-हाँफ और रो-रोकर कहने लगी—"सत्यानाश हो तुम्हारा बापू! तुम्हें हैजा बटोरे, तुम मर जाओ। मेरी माँ को मारते हो?"

तब शरस लगी उस शराबी को। वह घर से चुपचाप चला गया और

सारी रात लौट कर नहीं आया।

रोगिणी की हालत बिगड़ती गई, वह शिथिल और शिथिल होती चली गई। आधी रात को उसे होश आया। उसने सरोज से पानी माँगा और सरोज पानी का गिलास लेकर गई, तो वह रो दी। वह अपनी बछिया को छाती से लगा, बिलख-बिलखकर कहने लगी—"अब मेरी चला-चली की वेला है सरोज। मैं बचूँगी नहीं। मेरे बाद तेरा क्या होगा बेटी? यह शराबी तुझे मार डालेगा या किसी के हाथ बेच देगा।"

"ऐसा न कहो माँ! ऐसा न कहो! पानी पी लो। बापू अच्छे आदमी नहीं हैं। उन्हें कोई समझाता भी नहीं। तुम अच्छी हो जाओगी माँ। मैंने सरवन देवी का परसाद माना है। मैं जब-जब हरदोई वाले बाबा के मन्दिर में जाती हूँ, तो एक छोटा-सा पत्थर उठा कर रख आती हूँ फिर हाथ जोड़कर कहती हूँ कि बाबा मेरी माँ को अच्छा कर दो। मैं तुम्हारा परसाद चढ़ाऊँगी और इस पत्थर को घी-गुड़ से पूजूँगी। लो पानी पी लो माँ। और यह कहते-कहते बालिका ने पानी भरा गिलास मुँह से लगा दिया।"

रोगिणी ने पानी के दो-चार घूँट गले से नीचे उतारे फिर रोकर बोली—"तू बिलकुल पागल है। भगवान गरीबों का कभी भला नहीं करते बेटी। वे तो अमीरों के हाथ बिके हैं। अगर भगवान हम पर दया करते, तो ये दिन देखने को क्यों मिलते? मैं तो कहती हूँ उस दुनियाँ के मालिक से कि तू मुझे इतने दिन जिन्दा रख कि में अपनी बिटिया के हाथ पीले कर दूँ फिर चैन से मरूँ। लेकिन वह कहाँ सुनता है सरोज? तेरे ननिहाल में भी कोई नहीं। तुझे कहाँ भेजूँ?"

माँ-बेटी एक-दूसरे के गले से लगी, सुबक-सुबक कर रो रही थीं। उधर बाहर के खुले किवाड़ हवा में चुरक रहे थे। सरोज सोचती की बाप आता होगा, किन्तु वह होटल में बैठा था। वह टूटे-फूटे स्वर में कह रहा था—"ब्वाय हाफ कोर्स ब्राँडी।"

"यस सर, यस सर। अभी लाया। ह्विस्की! ह्विस्की नहीं ब्राण्डी, दो पैग।"

जाम सामने आया; रज्जन उस शीशे की पालकी में बैठी लालपरी से बातें करने लगा कि कितनी लाजवाब हो तुम। तुम्हीं मेरी दुनियाँ हो। सोमा कहती है कि मुझको एक कोने में फेंक दो। वह साला मिल—मैनेजर, उसने नोटिस निकाला है कि इस साल बोनस नहीं देगा। और महाजन के तोड़ दूँगा हाथ-पैर। बेईमान ! सूद पर सूद लेता है। सरोज तनिक और बड़ी हो जाय। उसे मैनेजर को सौंप दूँगा। खूब पियूँगा, खूब पियूँगा। घर और गृहस्थी तपैदिक होती है। जब तक शुरूर नहीं आता जवानी जोश नहीं भरती।

गिलास खाली हो गया। शराबी मेज पर औंधे-मुँह लेट गया। तब बजे थे रात के तीन। सरोज डरते-डरते घर के बाहर निकली। वह बाहर पहुँची जहाँ उसका बाप जाता था। वह किसी तरह उसको घर लाई। रज्जन दरवाजे पर आते-आते किवाड़ों से टकराया। उसके पैर लड़खड़ाये, वह गिर पड़ा तब सरोज फिर रोने लगी।

३



सरोज माँ के पास भागी। उसने उसका कन्धा हिलाया; लेकिन सोमा में कोई हरकत नहीं हुई। तब वह जोर से बोली—"माँ देखो बापू को क्या हो गया है ?"

किन्तु सोमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब सरोज ने उसका हाथ पकड़ कर खींचा। और ऐसे में ही सहसा बालिका गई डर। माँ की गर्दन तकिये से उतरी तो टेढ़ी होकर झूल गई। वह कुछ भी समझ नहीं पाई और रोती हुई जाकर पड़ौसियों को लिवा लाई। बालिका सरोज क्या जाने कि उसके जाते-ही उसकी माँ ने दुनियाँ छोड़ दी। पड़ौसियों ने सोमा के शव को नीचे

उतारा और एक चादर ओढ़ा दी। तब रज्जन कह रहा था--"क्यों बुलाती है सरोज ? सोमा मेरी दुश्मन है दुश्मन ! यह मर भी नहीं जाती ! तपेदिक तो हो गया। देखता हूँ कब तक जीती है।"

मातम में आये पड़ौसी स्त्री-पुरुष आँगन में बैठे थे। लाश सामने रखी थी और सरोज बाप से कह रही थी—"अब भी तुम्हारा नशा नहीं उतरा बापू ? माँ मर गई। उसे चलकर देख तो लो। तुमने मार डाला उसे। बापू ! ओ बापू !"

यह कह कर बालिका धीर-अधीर होकर रोने लगी। रज्जन उठ कर बैठ गया। वह खूब जोर से हँसा और हँसते-हँसते बोला—"अब आजाद हो गया मैं। आज मैं बहुत खुश हूँ। मर गयी सोमा। मेरे लिए एक समस्या थी। मैं नहीं देखता उसका मुँह ! जा, लोगों से कह दे, उसे उठाकर फेंक आयें।"

सरोज सिसक-सिसक कर रो रही थी। रात का अन्तिम पहर भी जाने की तैयारी कर रहा था। पड़ौसी कह रहे थे कि भाई सब लोग मिलकर चन्दा करो तभी कफन आयेगा, तभी इस बेचारी को आग दी जा सकेगी। यह शराबी की पत्नी है। मर नहीं गई, बेचारी जिन्दा हो गई। और यारो इस लड़की का क्या होगा ? रज्जन के पास इसका रहना ठीक नहीं। वह आदमी नहीं पशु है—जानवर। भगवान ! इस कन्या का भला कर। यह शूली पर खड़ी है और इसके दूध के दाँत अभी नहीं गिरे।

अब सवेरा खुलकर हो चुका था। अर्थी पर सोमा का शव बाँधा जा रहा था। सरोज फूट-फूट कर रो रही थी। और रज्जन का भी नशा हो गया था हिरन। वह स्वयं अपने से पूछ रहा था कि सोमा मर कैसे गई। उसने अब अर्थी में कन्धा लगाया, तो बच्चों की तरह रोने लगा। लोगों ने समझाया कि क्यों रोते हो भाई। गलतियाँ तुमने कीं, और परिणाम भोगा इस बेचारी ने। अब क्यों रोते हो ? तुमने खुद अपने हाथों-ही घर फूंक तमाशा देखा है।

रज्जन मौन हो गया; लेकिन सिसकता रहा, रोता रहा। और श्मशान

पर जब सोमा का शव चिता पर रखा गया, तो आग लगाने से पहले रज्जन फिर रो दिया और अपनी मृत पत्नी से बोला—"तुम्हें तरस नहीं आया सोमा ? तुम मुझे अकेला छोड़ गईं। मैंने तुम्हें बहुत सताया। मुझे माफ कर दो। सोमा, मैंने-ही तुम्हें मार डाला। हत्यारा मैं हूँ। आह सोमा ! यह चोट ऐसी करारी लगी है कि मेरा कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा है। एक रात में ही दुनिया कितनी बदल गई। आज मालूम हुआ कि नशा इन्सान को हैवान बना देता है।"

चिता में आग लगी, वह धू-धू करके जलने लगी। जब सब लोग मुर्दनी से लौट कर आये, तो सरोज रोने लगी। वह रोती रही; बाप को कच्चा-पक्का बना कर खिलाती रही। इस तरह पाँच बरसातें बीतीं और वह जवानी की ओर अग्रसर होने लगी।

नशे के आधिक्य ने रज्जन की देह बेकार कर दी थी। आजकल वह मिल नहीं जाता, घर ही में पड़ा रहता। सरोज को पीटता और कहता कि ला, खाना दे। तू काम नहीं करेगी, तो मेरी शराब के पैसे कहाँ से आयेंगे। अब तू जवान हो गई है।

सरोज ने पहले से ही सोचा था कि वह कुछ काम करेगी, पड़ौसियों की दया पर कब तक जियेगी। उसने नौकरी कर ली एक वकील साहब की कोठी में वेतन तीस रुपए ठहराये। काम, नाश्ता आदि बनाना और बच्चों को खेलाने का था। वह सबेरे सात बजे ड्यूटी पर जाती। दोपहर को एक बजे वापस आती। तब घर में रोटियाँ सेकती, खुद खाती, बाप को खिलाती। चार बजे फिर जाती नौकरी पर। इसके बाद रात को कहीं नौ-दस बजे तक लौटती। वह सुन्दर थी फूल जैसी, सुकमार थी लता सद्दश गृह-स्वामिनी का बड़ा लड़का उसकी ओर आकर्षित हुआ उसने उसे रुपये का प्रलोभन दिया। सरोज ने उसकी शिक़ायत मालिकिन से कर दी। नतीजा यह हुआ कि एक दिन जब वह जीने से टी-सेट लेकर नीचे उतर रही रही थी, युवराज ने शरारत की। वह उसके पीछे-पीछे उतरा बहुत जल्दी-जल्दी। उसने ऐसा झटका दिया उसकी दाहिनी बाँह में कि ट्रे उसके हाथ से छूट गई, केटली और कप सब फूट गये। मालि-

किन टटोंगा लेकर दौड़ी। वह दाँत पीसकर बोली—"तेरा सत्यानाश हो चुड़ैल। कितना बढ़िया टी-सेट फोड़ डाला। अरे यह इटली का था। मैंने एक सौ पच्चीस रुपये में खरीदा था। अब तेरी सज़ा यही है कि इस महीने तेरी तनख्वाह नहीं मिलेगी। आजकल के नौकर और नौकरानी काम नहीं करते हैं; करते हैं बेगार। पैसे मुफ्त के लेते हैं।"

यह सब सुना सरोज ने, वह सन्न रह गई। उसकी जबान नहीं खुली। उसका साहस नहीं हुआ कि साफ-साफ़ कह दे कि टी-सेट मैंने नहीं फोड़ा, यह तुम्हारे लड़के की करतूत थी। पहली तारीख आ गई। सरोज का बाप रज्जन घर में दोस्तों को निमंत्रण दिये बैठा था कि आज सरोज को रुपये मिलेंगे जी भर कर पी जायेगी। सरोज रास्ते में आई तो धीरे-धीरे रोयी फिर सिसकने लगी। अभी वह अपने घर के मोड़ तक-ही पहुँची थी कि सामने मिल गया जयन्त। वह हँसकर बोला—"अरे तू रो क्यों रही है मेरी माटी की गुड़ियाँ ? क्या चाचा ने आज फिर पीटा या कुछ कहा ?"

"नहीं, चाचा ने नहीं जयन्त; नसीब ने मेरे कलेजे पर कोड़े लगाये हैं। मेरी तनख्वाह कट गई। मुझसे एक इटली का टी-सेट टूट गया है। अब बापू मुझे बहुत मारेंगे। जिस दिन मुझे तनख्वाह मिलती है, उस दिन उनके दोस्त मेरे ही यहाँ खाना खाते और दारू पीते हैं। मेरी मदद करो। तुमसे-ही कह लेती हूँ जो दु:ख मिलता है तुम मेरी पीर समझते हो।"

जयन्त के गोरे चेहरे पर काली-काली छोटी मूछें मुस्करा दीं। उसकी बाछें खिल उठीं। उसने एक चुटकी बजाई जोर से और तत्क्षण-ही कहने लगा—"तीस रुपये मिलते हैं न तुम्हें ? यहीं ठहरो, मैं अभी लाकर देता हूँ।"

और यह कहने के साथ वह तेजी के साथ वहाँ से चला गया। उसने एक पुरानी साइकिल खरीदी थी एक सप्ताह पहले साठ रुपये की। उसे महाजन के यहाँ तीस रुपये पर गिरवी रख रुपये लाकर सरोज के हाथ पर रख दिये।

रज्जन ने शराब की दो बोतलें मँगवायीं। गोस्त आया, जो सरोज को पकाना पड़ा। फिर उसने पूड़ियाँ तलीं और जब उसके बाप के दोस्त बिदा हो गये तो उसने देखा कि तीस में केवल बारह रुपए रह गए हैं, जिनमें लम्बे-

लम्बे दो पखवारे व्यतीत करने है।

सरोज की मन:स्थिति इतनी खराब हो गई। वह अपनी दीन दशा पर रोने लगी कि क्या होगा मेरा। माँ सच कहती थी। यह बाप नहीं दुश्मन समझो। कैसा कहता है लोगों से कि मैंने लड़की नहीं लड़का पैदा किया है। सरोज कमाती है और मैं खाता हूँ। जयन्त को लोग बुरा कहते हैं; लेकिन वह बुरा कहाँ, बहुत भला है। बेचारे के माँ नहीं, बाप नहीं। पढ़ा लिखा भी है। उसने दसवाँ पास किया है उसके चाचा-चाची ने उसके माँ बाप की रकम तो हड़प ली; लेकिन अब उसका साथ नहीं देते। तभी तो उन लोगों ने उसे घर से निकाल दिया है और अब एक पैसा नहीं देते है। लेकिन खूब। जयन्त मंडी जाता। वहाँ अनाज की गाड़ियां तोलता। आड़त वाले उसे खाने भर को दे देते। शायद वह हँसमुख है इसलिए लोग उसे बदमाश कहते है। वही कर सकता है मेरा उद्धार। एक उसी का सहारा है। जब मिलता है तो दुःख-सुख पूछ लेता है। मेरा जी ठण्डा हो जाता है। आजकल वह कितना सुन्दर लगता है। वह जवान हो गया। उसके मूछें निकल आयीं।

ऐसा सोचते-सोचते सरोज रोना भूल जाती। उसके आँसू सूख जाते। वह पुन: सोचने लगती कि जयन्त मुझे माटी की गुड़िया कहता है। मह भी गुड्डा है माटी का ही। क्या गुडिया और गुड्डे का ब्याह नहीं हो सकता? जरूर हो सकता है, कोई करने—वाला हो। आज जयन्त। तुम्हीं मेरी अंधेरी जिन्दगी का उजाला हो। तुम अपनी सरोज को कितना चाहते हो, कितना प्यार करते हो। ईश्वर तुम्हें सौ बरस की उमर दे। कौन कहता है कि तुम खोटे हो? तुम्हारी संगति अच्छे लोगों की नहीं। वे खुद बुरे है, जो तुम्हें बुरा कहते है।

इस तरह सरोज के मन में जो विश्वास का मन्दिर बना था, उसमें एक मूर्ति स्थापित हुई थी वह थी जयन्त की। नारी ने विश्वास पाया था जवानी की देहरी पर कदम रखते ही और पुरुष था अनभिज्ञ, उसने कभी सोचा ही नहीं था कि वह सरोज को प्यार करता है।



पिछले महीने सरोज की तनख्वाह कटी थी और इस माह उसके साथ यह हरकत हुई कि जब वह मालिकिन के लड़के को कमरे में दूध देने गई, तो उसने बलात पकड़ ली उसकी कलाई। सरोज चीखी चिल्लायी। उसने गरम-गरम दूध भरा गिलास उस पापी पर छोड़ दिया और जल्दी से कमरे के बाहर भागी। तभी आ गई मालिकिन और लड़का माँ से कहने लगा—"इसको अब नौकरी से निकाल ही दो माँ। इसका चाल-चलन बुरा है। यह जब आती है, तो मुझसे कुछ-न-कुछ कहती रहती है। आज कह रही थी कि मुझको लेकर भाग चलो। मुझसे सुन्दर दूसरी औरत नहीं मिलेगी।"

"क्यों राँड ? तू मेरी बहू बनेगी ? तेरी यह मजाल ! आखिर शराबी की बेटी जो ठहरी ! जब माँ-बाप के लच्छन अच्छे नहीं, तो लड़की दुरुस्त कहा से हों। जा जल्दी से मुँह काला कर। मैं तुझे कोठी में घँसने भी नहीं दूंगी।" यह कह मालिकिन गुस्से से लाल-पीली हो धक्के देकर सरोज को ढकेलने लगी।

तब सरोज ने गम्भीर होकर कहा—"आप तकलीफ न कीजिए माँ जी। मैं खुद ही चली जाऊँगी। मेरा कुछ सामान रखा है अन्दर। इजाज़त हो तो उठा लाऊं ?"

"जा-जा जल्दी उठा और रास्ता नाप। गोरी चमड़ी का नीच हमेशा दगा ही करता है और कमीनों को तो मुँह लगाना ही न चाहिए। मैंने बड़ी भूल की।"

मालिकिन बड़बड़ाती रही और सरोज उनके सामने से चली गई। वह पहुंची उसी लड़के के कमरे में जिसने उसे छेड़ा था। जाते-ही उसने खूँटी पर से बेंत उतारा। वह मनचला तब कपड़े बदल रहा था। सरोज ने आव गिना न ताव, वह सड़ासड़ उसकी पीठ पर बेंत बरसाने लगी। वह मारती जा रही थी और कह रही थी—"नौकरी छोड़कर जा रही थी, तब-तक ख्याल आया

कि तुम्हारे प्यार का मूल्य चुकाना है। लो कीमत जी भर कर ले लो। मेरा नाम सरोज है। मैं शराबी बाप की बेटी हूँ न, इसीलिए तूने गरम चाय समझा था। आज तुझे सबक मिल जायेगा। तू किसी भी नौकरानी को नहीं छेड़ेगा। पैसे वालों के लड़के बड़े नीच होते हैं नीच-तुम्हारी तरह।"

लड़का चीखा-चिल्लाया ; लेकिन सरोज ने हाथ बन्द नहीं किया। वह जैसे काली बन गई थी। जब मालिकिन वहाँ पहुँची, तो वह बेंत फेंक-कर चल दी और जाते-जाते स्वामिनी से बोली—"मैं कुछ लिये नहीं जा रही, छोड़े जा रही हूँ। आपके बेटे को यह नसीहत लाख रुपए खर्च करने पर भी नहीं मिलती।"

सरोज घर आई ; बाप ने पूछा तो उसने कहा कि आज जल्दी छुट्टी हो गई है। लेकिन वह सोचती रही मन-ही-मन कि कल सवेरे बापू को क्या जवाब दूँगी। मैं जाऊँगी जयन्त के घर। पहले वह दोस्तों के यहां रहता था। लेकिन अब पाँच रुपए महीने की एक कोठरी ले ली है। सात बजे सवेरे मिल तो जायगा। उससे सलाह लूँगी। वह जो कहेगा करूँगी।

सवेरा हुआ ; उधर सूरज ने आँखें खोलीं और इधर चिड़ियाँ लगीं चहकने। उनके कलखगान ने वातावरण को मुखरित कर दिया। रज्जन अब तक सो रहा था। सरोज उठकर चुपचाप चल दी। वह जयन्त के घर पहुँची तो वह भी अब तक सो रहा था। उसने दस्तक दी, किवाड़ खुले। जयन्त उसे देखकर चौंका। वह आँखें मिलमिलाता हुआ आश्चर्यचकित मुद्रा में बोला "सरोज तुम ! और सबेरे-ही-सबेरे ? कोई बात तो नहीं ? सब ठीक है न ?"

सरोज़ जयन्त के पास जाकर बैठ गई और तनिक हँस कर बोली—"कोई बात नहीं ; पहले यह बताओ तुम इतनी देर तक सोते रहते हो ? मैं तो तुम्हें देवता समझती हूँ ; लेकिन—"

"लेकिन मैं आदमी भी नहीं। यही बात है न सरोज ? मैं जानवर हूँ, देर तक सोता हूँ।"

यह कहते-कहते जयन्त स्वयं खिलखिलाकर हँस पड़ा सरोज के गुलाबी

होठों पर भी मुस्कान थिरकी। जयन्त ने जल्दी से मुँह-हाथ धोया। उसने शीशा लेकर बाल काढ़े जो काले थे, घुँघराले थे और जिनकी चमक निराली थी। सरोज ने उसे अपनी परिस्थिति से विज्ञ किया, तो वह हँसकर कहने लगा—"तुम्हें काम करने की जरूरत-ही नहीं सरोज। तुम घर पर बैठो। मैं तुम्हारी मदद करूँगा। चाचा से कहना कि मैंने नौकरी छोड़ दी। मैं घर पर ही बैठकर मेहनत-मजदूरी करूँगी और इस तरह एक रुपया रोज तो कमा-ही लूँगी। मैं दुगनी मेहनत करूगा। अपने लिए ही नहीं, तुम्हारे लिए भी कमाऊँगा। और एक बात यह भी है सरोज कि अब तुम जवान हो गई हो। तुम्हारा घर से निकलना ठीक नहीं। कह दो अपने बाप से भी कि घर में दोस्तों की महफिल न जोड़ा करें। आज कल के जवानों की निगाहें अच्छी नहीं उनमें फौरन-ही फर्क आ जाता है।"

सरोज ने कुछ समझा और कुछ नहीं। वह बोली हाथ नचाकर—"मैं जवान हो गई हूँ और तुम नन्हें-मुन्ने बन गये हो तभी तो दाढ़ी-मूछ निकल आई हैं। तुम भी मत निकला करो घर से। तुम्हें देखने वालों की नजर लग जायेगी।"

"वाह मेरी माटी की गुड़िया। तू बोलती है तो तेरे मुँह से फूल झड़ते हैं। तू जवान नहीं, बहुत छोटी हो गई। अच्छा-अच्छा घर जाकर काम देख।"

जयन्त यह कहकर हँसा और तभी खिलखिला पड़ी सरोज। वह उठकर खड़ी हुई और जाते-जाते बोली—"तो साँझ को हमारे घर आओगे न। रोटी वहीं खा लेना। आज मैं रूखी दाल ही नहीं, साग भी बनाऊँगी।"

"सरोज तुम्हारी इतनी श्रद्धा। तुम्हारा इतना लगाव। यह सब तुम्हें बदनाम कर देगा। जानती तो हो बस्ती के लोग मुझे आवारा और गुमराह कहते हैं और फिर तुम्हारा बाप क्या कहेगा? दुनियाँ मुझे गलत समझती है और तुम विश्वास रखती हो? यह ऐसा क्यों?"

जयन्त यह कहकर सरोज का मुँह देखने लगा और तभी वह तपाक से बोल उठी—"मैं खुद भी नहीं जानती। न जाने क्यों खिंची चली आई

श्रौर तुम्हारे पास मन लगा रहता हैं। तुम आओगी जरूर, तुम्हें मेरी कसम। मैं किसी से नहीं डरती। अगर जरूरत पड़ी, तो मैं तुम्हारे पीछे जान भी दे सकती हूँ।"

"सरोज, तुमने यह क्या किया? मैं अकेला रहना चाहता था। तुमने मुझे अपना संरक्षक बना लिया। यही तो कहा जाता है कि औरत नकेल होती है अदमी की नाक की। जा माटी की गुड़िया। आज तूने मन की बात कह दी और मुझे बन्दी बना लिया। मैं आऊँगा, जरूर आऊँगा। मेरी सरोज अगर मुझे जहर भी देगी, तो मैं हँसते-हँसते पी लूँगा। मैं........"

"जहर पीयें तुम्हारे दुश्मन। मैं तुम्हें अमृत पिलाऊँगी अमृत। तुम मेरे भगवान हों, तुम्हीं मेरे भाग्य जयन्त! में उन सबसे लड़ूँगी, जो लोग तुम्हें बुरा कहते हैं अच्छा, कुछ पैसे दे दो। घर में भूँजी भाँग भी नहीं। कौन-सी सब्जी पसंद करते हो? मैं वही बनाऊँ। आज मेरा बड़ा मन है कि मैं परोसूँ और तुम खाओ।"

सरोज की ये बातें सुन जयन्त मुस्कराया। उसकी जेब में दो रुपय का नोट पड़ा था। उसने उसके हाथ में रख दिया।

सरोज पुलकती हुई चली गई और जयन्त ठगा-सा खड़ा सोचता रह गया कि सरोज को क्या हो गया। वह मुझे भगवान कहती हैं। वह मुझ पर विश्वास करती है। मैंने पढ़ा है, जब नारी मोह लेती है पुरुष को, तो पुपुष के ऊपर उत्तरदायित्व की गठरी आ जाती है। कितनी अल्हड़ है, कितनी निश्छल! उसका रोम-रोम इसका प्रतीक है। कहीं वह मेरी जीवन-संगिनि न बन जाए। कहीं मुझे उसे अंगीकार न करना पड़े। अगर ऐसा हुआ, तो गृहस्थी बसेगी, बाल-बच्चे होंगे। आह! कितनी मीठी दुनिया है मेरी! सरोज, मेरी माटी की गुड़िया, मुझे कितना प्यार करती है, मैंने आज जाना।

साँझ हुई; नीले आसमान के रुपहले दिए जले। अँधेरा झुक-झुककर धरती पर उतरा और तभी गोरे चाँद की रजत चन्द्रिका ने निगल लिया उसे। वह विलीन हो गया ज्योत्सना के गर्भ में। हवा चली और दिशायें मौनस्वरों में प्रणय का राग आलापने लगीं। सरोज ने कटहल का शोरवेदार साग बनाया

महीना वैशाख का था। उसने अरहर की दाल में कच्ची अमियाँ डालीं फिर जीरे-लहसुन से उसमें बघार दिया। उसने रोटियाँ सेंकीं खूब छोटी-छोटी जो गुब्बारे की तरह फूलीं। लौकी का उसने रायता बनाया और कच्चे आम की चटनी। बाप ने खाने की जल्दी मचायी तो वह बोली कि तनिक ठहर जाओ बापू। आज मैंने जयन्त को खाने पर बुलाया है।

रज्जन चौंका; वह बोला—"जयन्त को तू खाना खिलायेगी? अरे, वह अच्छा लड़का नहीं है बेटी। लोग देखेगे तो क्या कहेंगे। वह तेरा दु:ख-सुख सुन लेता होगा, इसलिए तू उसे भला मान बैठी। नहीं वह नहीं आएगा मेरे घर! मेरी बदनामी होगी। आते ही मैं उसे बैरंग वापस कर दूँगा। यह तू क्या कर रही है तू नहीं जानती पगली कि झूठे लोग बहुत ही मीठे होते हैं।"

"जिसका बाप शराबी हो, इससे बड़ी और क्या बदनामी हो सकती है बापू। जिसका बाप अपनी जवान लड़की को पीटता हो, जिसका बाप शराब पीने के लिए नौकरी करवाता हो, जब यह सह लेती हूँ बापू। बोलता है सूप, चलनी बोलने का दावा नहीं कर सकती, जिसमें बहत्तर सौ छेद होते हैं। पहले अपनी काली चादर देखो फिर मुझे समझाओं। मैं तो कहती हूँ कि सब से बुरे आदमी तुम हो। धिक्कार है तुम्हारी जिन्दगी पर। लानत है तुम्हारे जीने पर!! खबरदार! जो जयन्त के खिलाफ मुझसे एक भी बात कही।"

यह पहला अवसर था, जब सरोज ने बाप को इस तरह का जवाब दिया। रज्जन को लगा कि लड़की हाथ से बेहाथ हो गई है और जयन्त उसे फोड़ रहा है। वह डंडा लेकर उठा। उसने सरोज की देह पीटते-पीटते काली कर दी, चूल्हा फोड़ डाला। दाल की बटलोई आँगन में लुढ़कने लगी और कटहल का साग सारे चौक में बहने लगा। रोटियाँ बाहर फेंकी गईं। और ठीक तभी जयन्त ने घर में प्रवेश किया। उसने जो कुछ देखा और सुना उससे उसके आँसू आ गए। वह चुपचाप लौट आया। उस रात उसने पानी तक नहीं पिया। उसे नींद भी नहीं आई। वह सरोज के प्रति ही सोचता रहा कि अब सरोज का बाप के साथ रहने मे कल्याण नहीं। वह राक्षस है,

राक्षस ! मैं उसका उद्धार करूँगा। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। काश ! कली फूल बनने के पहले ही कहीं अपनी साँसों को न तोड़ दे। उसे मुस्कराना चाहिए, महकना चाहिए।

इधर सबेरे जयन्त अपने घर में सरोज के प्रति चिन्तित था और उधर रज्जन फिर बेटी की मरम्मत कर रहा था। आज उसने उसको मारने के लिए चैला उठाया था। वह घसीट-घसीट कर उसे मार रहा था और कह रहा था—"नवाबजादी, तू काम पर नहीं जायगी, तो मैं खाऊँगा क्या ? मेरी शराब के पैसे कहाँ से आयेंगे ? बोल कमीनी ! तूने नौकरी कैसे छोड़ दी ? किससे पूछ कर ? अरी बेहया, कुछ दिन और कमा ले, फिर तो मैं तुझे बार के मैनेजर के हाथ सौंप दूँगा। यह जयन्त का भूत तुझ पर कब से सवार हो गया ? चल हरामखोरी, नौकरी ढूँढ़ कर आ, वर्ना मैं तेरी जान लेकर ही रहूँगा।"

रज्जन सरोज को घसीटकर सड़क पर ले आया। वह रोती-बिलखती रही। उसकी देह लोहू-लुहान हो गई थी। देखने वाले देखते रह गये। कुल-भामिनियों के आँसू आ गये। वे आँचल से उन्हें पोंछने लगीं और सम्भ्रान्तों ने कहा कि आह लड़की और गऊ बराबर होती है। यह निर्दयी उसको किस बुरी तरह पीटता है। लड़की की कमाई खाता है। इसके कीड़े पड़ेंगे, कोढ़ फूटेगा। कौन जाय उसके पास। वह तो नशे में धुत्त होगा।

और सरोज सड़क पर आ उठकर इस तरह भागी जैसे घायल हिरणी, जिस पर सिंह वार करता है। रज्जन उसके पीछे बावलों की तरह भागा, तो राह चलते लोगों ने उसे पकड़ लिया। वे बोले—"क्या पागल हो गए हो, या तुम्हारा दिमाग फिर गया है ? औरत को इतना नहीं पीटना चाहिए कि वह रोकर घर से बाहर भागे और फिर तुमने बुढ़ापे में ब्याह-ही क्यों किया ?"

"चले जाओ, भाग जाओ। मैं तुम सब का खून कर दूँगा। मेरा नाम रज्जन है, रज्जन ! कमीनों, वह मेरी बेटी है। उसे औरत बताते हो ! जाओ, रज्जन आज किसी की नहीं सुनेगा। वह खून कर देगा या खुद मर जायेगा।"

रज्जन यह कहकर हाँफा। उसने कुरते की आस्तीनें चढ़ाईं, तो लोग आपस में हँसते हुए कहकर चल दिए कि निहायत शरीफ हैं आप। जवान लड़की को बीच सड़क पर पीटते हैं। यह आदमी अच्छा नहीं, जरूर जुआरी, शराबी या कबाबी होगा।

और सरोज, उसने जाकर शरण ली जयन्त के घर में। जयन्त उस समय स्टोप पर चाय बना रहा था। पानी खौल रहा था। उससे भाप उठ रही थी और जयन्त सोच रहा था कि पानी का बुलबुला है आदमी। समुद्र में ज्वार-भाटा आता है। वह शान्त होता है। उसमें लहरें उठती हैं। यह भाप कह रही है कि जब जोश उमड़ता है तभी नसों में खून दौड़ता है। यह प्रेरणा दे रही है कि आदमी तभी कुछ कर सकता है जब वह कमर कस लेता है। तो कस ली है कमर मैंने भी कि मैं अपनी जिन्दगी में एक महान काम करूँगा। मैं सरोज का उद्धार करूँगा। उसके सुख और उसकी शान्ति के लिए मैं अपने को बलिदान कर दूँगा। कितना चाहती है मुझे! यही तो कहा जाता है कि प्यार किया नहीं जाता; वह अपने आप हो जाता है। अच्छा है, माटी की गुड़िया जो मेरे गले बँधी, तो मेरी भी जिन्दगी सुधर जायेगी। मुझे रात भर नींद नहीं आई; कल उस पर जो बाप ने अत्याचार किया। चाय पी लूँ, फिर जाऊँ, देखूँ वह कैसी है!

सहसा जयन्त की विचारधारा टूट गई। रोती हुई सरोज उसके कमरे में आकर गिरी। वह रोती, हाँफती और काँपती हुई बोली—मुझे बचाओ जयन्त! आज बापू मुझे मार डालेंगे। वे कहते हैं कि तूने नौकरी क्यों छोड़ दी, किससे पूछ कर? मेरी शराब के पैसे कहाँ से आयेंगे? कल रात को मुझे मारा। तुमसे मिलने को मना करते हैं। वे कहते हैं कि तुम बुरे आदमी हो। आज यह छीछा-लेदर की। देखो, मेरी देह से खून-ही-खून बह रहा है।"

जयन्त ने सरोज को दयनीय स्थिति में देखा, तो वह रो दिया और आर्द्र-कण्ठ से बोला—"तुम्हारे लिए अब बहुत ही जल्दी कुछ करना पड़ेगा सरोज! चोट तुम्हारे लगी है और कलेजा मेरा छिल गया। नालायक है वह बाप। नशेबाज न औरत का होता है और न लड़की का। उसकी नजर में दीन-दुनिया

कुछ नहीं । हाय-हाय । उसने तुम्हारा क्या हाल कर दिया ? उसे रुपये की जरूरत होगी । उसे अभी रुपये लाकर देता हूँ । क्या होगा घड़ी का ! यह किस दिन काम आयेगी । मैं अभी जाकर बेचे देता हूँ और लाए देता हूँ शराब की दो बोतलें । लेकर जाओ, देखो कितना शर्मिन्दा होता है । घबड़ाओ मत, चिन्ता न करो । मैं जल्दी-ही तुम्हें उस नर्क से बाहर निकालूँगा ।"

जयन्त यह कहने के साथ जल्दी से बाहर चला गया । सरोज रोती रही, सिसकती रही । उसे डर था कि बाप यहाँ भी न आ जाय, जो आग में घी का काम बने । उसने जल्दी से कुण्डी बन्द कर ली और जयन्त की प्रतीक्षा करने लगी ।

थोड़ी देर बाद जयन्त लौटा । उसा सरोज को दस रुपये का एक नोट दिया और साथ ही रंगीन शराब की दो बोतलें । सरोज वह सब लेकर घर की ओर चली ।

और रज्जन, आखिर उसे पकड़ ले गए पड़ोसी लोग । घर में जाकर बैठाया । खूब धिक्कारा सबने, थू-थू की । रज्जन रोने लगा । उसने अपनी गलती महसूस की । लोग उसे भविष्य के लिए आगाह कर अपने-अपने घर चले गए । वह रोता रहा और सोचता रहा कि सरोज को क्यों मारा । वह कहाँ गई होगी । ठीक तभी सरोज ने आँगन में प्रवेश किया । आते-ही वह बोली—"नौकरी ढूँढ़ आई बापू । तय भी कर आई । पच्चीस रुपये एडवांस मिले थे, पन्द्रह की शराब खरीद लायी । यह लो दस का नोट है । थोड़ी-सी दारू पी लो और बाजार जाकर आटा दाल ले आओ । तुम गुस्सा क्यों करते हो ? मैं तो तुम्हें खिलाऊँगी किसी तरह । तुम्हारी शराब के पैसे भी दूँगी ।"

यह कहती हुई सरोज बाप के सामने पहुँच गई । उसने दोनों बोतलें उसके सामने रख दीं और नोट देने लगी हाथ में । रज्जन उसकी ओर देखता रह गया । उसने नोट छीनकर फेंक दिया । दोनों बोतलें फोड़ डालीं और फिर रोने लगा फूट-फूटकर । उसने बेटी को गले से लगा लिया । वह रोते-रोते कह रहा था—"आज से मैं तेरी कमाई नहीं खाऊँगा बेटी" मैं शराब नहीं

पीऊँगा। मैंने कसम खा ली है; तेरी ही नहीं भगवान की भी। आह ! मेरे हाथ सड़ क्यों नहीं जाते ? कटकर गिर क्यों नहीं पड़ते ? मैंने तुझे मारा, अपनी लाड़ली बेटी को, सोमा की दुलारी को। मरने वाली कभी मुझे माफ नहीं करेगी; मैंने उसे भी बहुत सताया था।"

सरोज के भी आँसू धार बनकर बह रहे थे। वह समझा रही थी बाप को —"आपसे जो कुछ हुआ उसके लिए दोषी आप नहीं हैं बापू। नशे का भूत होता है न, वही आदमी को शैतान बना देता है। मत पिया करो दारू। दूध पिओ, घी खाओ। तुम्हारी बुढ़ापे की देह है। तुम्हारे नशे ने ही तुम्हारा घर बिगाड़ दिया, माँ की मौत हो गई। अब तो आँखें खोलो बापू। मैं लड़की नहीं, तुम्हारा बेटा हूँ। मैं मेहनत करूँगी, तुम्हारा पेट भरूँगी और बापू लोग भी तुम्हें अच्छी निगाह से नहीं देखते। तनिक दुनियादारी का भी ख्याल करो। मत रोओ बापू, मत रोओ ! मैं अभी जाती हूँ, सामान लाती हूँ।

बाप-बेटी दोनों देर तक रोते-सिसकते रहे। फिर वे शान्त हुए और उसी घर में दोपहर को चूल्हा जला, सरोज ने रोटियाँ सेकीं। उसने बाप को बड़े मन से खिलायीं और उठते-उठते यही आग्रह करती रही कि एक रोटी और, एक रोटी और लो बापू।

५



वह दिन आनन्दपूर्वक बीता। साँझ को खिचड़ी बनी। सरोज ने उसमें घी डाला और दौड़कर बाप के लिए दही ले आई। तभी दृश्य हो गया अनूठा। रज्जन ने जिद की कि वह अकेले नहीं खायेगा, तो विवश होकर सरोज उसी थाली में खाने बैठी। बाप कभी-कभी कौर अपनी बेटी के मुँह में रख देता, वह जैसे छोटी हो, दुधमुँही।

सवेरे सरोज एक पाव गाय का दूध लायी। उसने गरम कर बाप को पिलाया। दोपहर को उसने पूड़ियाँ तलीं और परवल का साग बनाया। फिर जब रज्जन खा-पीकर लेटा, तो वह उस पर पंखा झलने लगी। अवसर पा, बाप का रुख देख उसने बात छेड़ दी। वह बोली—"बापू अब मत पीना कभी। देखो तो तुम्हारी तन्दुरुस्ती कैसी हो गई है। मैंने नियम बना लिया है कि रोज सवेरे तुम्हें पावभर दूध दूँगी और उतना ही सोते समय भी। दही एक बार जरूर खाओ। गर्मियों में वह अमृत होता है। कुछ तोला दो तोला घी पेट में पहुँचेगा, उससे आँखों की रोशनी कायम रहेगी। और बापू पैसे की चिन्ता न करो, मैं जी तोड़कर मेहनत करूँगी। खूब कमाऊँगी। जो लोग तुम्हें बुरा कहते हैं, उनको दिखला दो कि तुमने पीना-पिलाना छोड़ दिया है।"

"हाँ बेटी, वही होगा, यही करूँगा। जब औलाद माँ-बाप को सलाह देने लगे, तो उसकी बात जरूर माननी चाहिए। अब तू सयानी हो गई है। नौकरी न कर, घर पर ही काम कर। मैं भी तेरा हाथ बटाऊँगा। और यही नहीं बेटी, मुझे तेरे हाथ भी पीले करने हैं। कुछ कमाऊँगा नहीं तो कन्यादान कहाँ से लूँगा। वह मुआ मैनेजर! मैं उसकी सूरत भी नहीं देखूँगा। उसकी निगाह तुम पर है, इसीलिए वह मुफ्त पिलाता है। लेकिन नहीं, यह नहीं होगा। मेरे घर में बारात आयेगी, मेरी बिटिया दुलहिन बनेगी। जा, तू भी आराम कर। कितना काम करती है। जा बेटी जा।"

रज्जन ने लेटे-लेटे यह कहा और सरोज के हाथ से पंखा ले लिया। मगर सरोज वहाँ से नहीं हिली। वह प्रसन्नता के अतीव आवेग से अलोड़ित होकर बोली—"बापू, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी। मैं ब्याह नहीं करूँगी। फिर तुम्हें खाना कौन खिलायेगा ? तुम्हारी सेवा कौन करेगा ? मेरे अच्छे बापू ! आज मैं बहुत खुश हूँ। आज जैसे हमारी गरीबी दूर हो गई। और हमारी किस्मत का सितारा बुलन्द हो गया। एक काम करो बापू। कुछ थोड़ा-सा अपने को भजन-पूजन में लगाओ। रोज सबेरे उठकर प्रह्लाद घाट जाया करो। स्नान कर सरवन देवी और हरदोई वाले बाबा के मन्दिर में भी जाया करो। धर्म करो, घर में गीता रामायण पढ़ा करो। हैं नहीं, मैं खरीद लाऊँगी। फिर देखो, तुम्हें कितनी शक्ति मिलती है।"

"हाँ सरोज, कहती तो तू ठीक है। यह सब करूँगा बिटिया। धर्म का आचरण बहुत बड़ा बल देता है आदमी को। और ईश्वर का भजन करने-वाला कभी दु:खी नहीं रहता बेटी। गुटका आता है गीता प्रेस, गोरखपुर का। वही ले आना किसी दिन। जिस घर में नित्य रामचरित मानस का पाठ होता है, वहाँ दरिद्रता दूर ही से हाथ जोड़ती है। सरोज, मैं अपने को ऐसा बना लूँगा कि देखने वाले चौंकें और सुनने वालों के कान खड़े हो जायें।

बाप की लम्बी वार्ता सुनकर सरोज जैसे अपने में फूली न समाई। उसका रोम-रोम खिल उठा। उसकी हर नस में बिजली भर गई। उसकी बातों का अन्त ही नहीं हुआ। वह कुछ-न-कुछ कहती हो रही। तीसरा पहर हुआ, तो वह बाजार जाने लगी। तभी रज्जन ने रोका। वह बोला—"बता क्या लाना है ? मैं ले आऊँ, तू और काम देख।"

सरोज ने बाप के हाथ पर एक रुपया रख दिया और जल्दी-जल्दी व्यस्त-स्वर में कहने लगी—"एक पाव मूँग की दाल, आधा सेर आटा और सब्जी ले आना आलू टमाटर की। लकड़ियाँ हैं, तेल मसाला भी थोड़ा रखा है। जल्दी आओ बापू, तब तक मैं तुम्हारे लिए रात का दूध ले आऊँ।"

इस तरह घर में ताला बन्द हो गया। बाप बाजार गया और लड़की दूध लेने।

रज्जन बाजार पहुँचा। उसने मोती बनिये के यहाँ से एक पाव मूँग की दाल ली। वह उसका हमजोली था, बचपन का साथ खेला। दोनों में राम-राम चला। रज्जन ने कहा कि भाई मोती मुझे कुछ काम बताओ। मुझे कुछ काम करना है। न हो अपने यहाँ ही नौकर रख लो। मैंने कसम खा ली है दोस्त कि अब शराब कभी नहीं पीऊँगा और अपनी बिटिया के सुख के लिए अपनी जिन्दगी तबाह करूँगा।

इस पर मोती ने व्यंग कसा; वह हँसकर बोला—"तीन ही तो भक्त होते हैं दुनियाँ में। पहली भगतिन बिल्ली मौसी, जो सत्तर चूहे खाकर हज को जाती है। दूसरे बगुला मामा, जो राम-नामी ओढ़कर चलते हैं और तीसरे शराबी, जुआरी, घन्धारी तुम्हारी तरह। तुम कुछ नहीं कर पाओगे रज्जन। तुम बड़े नालायक हो। नालायक दोस्त बदनामी का टीका होता है। सरोज को ब्याह दे भले आदमी। सौ-पचास मुझसे ले ले। कन्या का काम है। तू शराब छोड़ेगा? जिन्दगी तुझे छोड़ जायेगी; लेकिन तू दारू नहीं छोड़ेगा। मैंने एक लड़का देखा है, ओवरसियर है। ढाई-सौ तनख्वाह पाता है। उसके आगे-पीछे कोई नहीं, अकेला है। इसीलिए अब तक ब्याह नहीं हुआ। सरोज को ब्याह दे, सब जिम्मेदारी मेरी।"

रज्जन को यह सब अच्छा नहीं लगा। उसने जवाब नहीं दिया, चुपचाप उठकर चल दिया। वह सुबराती कुँजड़े की दुकान पर गया। आधा सेर आलू लिए, आध-पाव टमाटर। सुबराती ने उसे देखा, वह मगन होकर बोला—"आओ रज्जन भइया, आज तो आदमी नजर आते हो। खबरदार, इंशा अल्लाह! अगर जो मेरी भतीजी पर हाथ उठाया। सुना है तुम उसे बहुत मारते हो। लानत है तुम्हारी नशेबाजी को। भाई सुनो, जब उसकी लगन करना हो तो मुझे भी न्यौता देना, आखिर भतीजी है। कुँजड़ा हूँ तो क्या भइया, सौ-पचास की भी दम नहीं रखता हूँ?,

तब रज्जन के आँसू आ गये। वह सुबराती के पास बैठ गया। वह उससे रो-रोकर कहने लगा कि मैं बड़ा नीच हूँ सुबराती। तुम्हें याद है—जब हम

दोनों दर्जा दो में पढ़ते थे। तुम आम के पेड़ पर चढ़कर डाल हिलाते थे। पके-पके आम गिरते ही मैं चूस लेता, जूठा कर देता। नीचे उतर तुम कितने प्रेम से खाते थे। मैं कहता था कि मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान। तब तुम्हीं कहते थे दोस्त कि हम दूध-भाई हैं। हाँ, सरोज को ब्याहना है भाई। मेरी मदद करो। मैं नालायक हूँ सुबराती। मेरे गाल पर थप्पड़ मारो। लो, पैसे ले लो। कितने हुए ? मैं तो भूल ही गया।

यह कहकर रज्जन सुबराती को पैसे देने लगा, तो सुबराती ने उसका हाथ पकड़ा। वह बोला—"रख यार, यह सब्जी मेरी बिटिया के लिए है। सोमा भाभी होली-दिवाली पर मुझे बुलाकर रंग खेलती थी। मिठाई खिलाती थी। मैं उनके पैर छूता, तो कहतीं कि बूढ़े हो। उनकी निशानी है सरोज। लो, ये चार संतरे रख लो। भतीजी से कहना कि ये तुम्हारे चाचा सुबराती ने भेजे हैं।"

यह कहते-कहते सुबराती के आँसू आ गए। उसने संतरे रज्जन को दिए। घूमते ही रज्जन की भी आँखों में आँसू आये और सुबराती की आँखें गीली हो आयीं। उसके मन ने कहा कि यह मेरा कितना प्यारा दोस्त है।

फिर रज्जन गया चम्पा चाची की चक्की पर आधा सेर आटा लेने। चम्पा कलारिन थी। गले में सोने की ठोस हँसुली पहने थी। हाथों में ठोस-सोने के कड़े, और गले में बीस तोले की सोने की पाँच लर की गूँज लटक रही थी। उसके पैर नंगे थे, नाक सूनी। वह विधवा थी। पच्चीस तोले की सोने की आठ-आठ चुड़ियाँ पहने थी। वह बोली—"आओ रज्जन भइया। आज सूरज पच्छिम में तो नहीं निकला था। क्या दूँ, क्या मँगाया है मेरी भतीजी ने ? आज तुम नशे में नहीं; बाजार में कैसे दिखलाई पड़ रहे हो।"

रज्जन चाची के पास जाकर बैठ गया और नतमस्तक होकर बोला—"शर्मिन्दा न करो चाची। मैंने गलतियाँ बहुत की हैं, मुझे माफ कर दो। आधा सेर आटा दे दो। कितने पैसे हुए ? अब मैंने कसम खा ली है, न सरोज को पीटूँगा और न शराब को छुऊँगा।"

"अच्छा अच्छा। यह भी देखना है। तू बड़ा झूठा है रज़्जन। यह मैं अच्छी

तरह जानती हूँ। अरे, आधा सेर नहीं, कहाँ गया मोहन ?—तौल दे पाँच सेर। मेरी सरोज खायेगी। बेचारी भूखों मरती है, रोटियों के लाले हैं। अरे नालायक रज्जन, उसके हाथ तो पीले कर दे। मैं हजार-पाँच सौ खर्च कर दूँगी। सोमा और मैं साथ-साथ पढ़ी थीं; लेकिन रिश्ते में मैं चाची हुई, वह भतीजी। देख तो रहे हो भइया कि बूढ़े को ब्याह आई थी, रांड़पा लिये बैठी हूँ। गफलत मत करो, घर-वर ढूँढ़ो। मैं छाती ठोकती हूँ। सरोज का ब्याह मैं करूँगी।"

अब रज्जन बलर-बलर रोने लगा। वह रोते-रोते बोला—"तुम्हारा-ही सबका सहारा है चाची। माफ कर दो अपने नालायक़ बेटे को। अब रज्जन ज़िन्दगी में पिछली भूलें नहीं करेगा।"

चम्पा चाची रज्जन की पीठ पर हाथ फेरने लगीं। वे उसे सान्त्वना देकर बोलीं—"पूत रज्जन, अब भी संभल जाओ, आँखें खोल दो। सुबह का भूला जब शाम को घर आता है, तो लोग उसके गुनाह पर पर्दा डाल देते हैं और कहते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ। एक लड़का क्षत्री इण्टर कालेज के आफिस में बाबू है। उसके बाप ने मेरा कर्ज खाया है, जो अब तक उऋण नहीं हो सका। सरोज को ब्याह दो उससे, रुपया-पैसा मैं खर्च कर लूँगी। अरे हाँ, आज एकादशी थी। मैंने पिटारी पुन्न की थी, वह लेते जाओ। सरोज को दे देना।"

पिटारी में एक रंगीन मलमल की धोती थी, एक ब्लाउज का कपड़ा और ग्यारह रुपये। फल, मिठाई और एक छोटा-सा चाँदी का पात्र। रज्जन यह सब लेकर चला। वह सदर बाजार के चौराहे पर आया। तभी उसका एक पियक्कड़ दोस्त मिल गया लतीफ। उसने कहा–"वालेकुम सलाम। कल तो मयखाना सूना ही रहा। यार तुम आये नहीं ? कल अंगूरी छनी थी। चलो, आज दावत मेरी तरफ़ से।"

रज्जन असमंजस में पड़ गया। वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया। आखिर उसने कह दिया—"भाई माफ करो। अब मुझे वह राह नहीं चलनी हैं। मेरी जवान लड़की है। मुझे उसका लिहाज है।"

दोनों दर्जा दो में पढ़ते थे। तुम ग्राम के पेड़ पर चढ़कर डाल हिलाते थे। पके-पके ग्राम गिरते ही मैं चूस लेता, जूठा कर देता। नीचे उतर तुम कितने प्रेम से खाते थे। मैं कहता था कि मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान। तब तुम्हीं कहते थे दोस्त कि हम दूध-भाई हैं। हाँ, सरोज को व्याहना है भाई। मेरी मदद करो। मैं नालायक हूँ सुबराती। मेरे गाल पर थप्पड़ मारो। लो, पैसे ले लो। कितने हुए ? मैं तो भूल ही गया।

यह कहकर रज्जन सुबराती को पैसे देने लगा, तो सुब्रराती ने उसका हाथ पकड़ा। वह बोला—"रख यार, यह सब्जी मेरी बिटिया के लिए है। सोमा भाभी होली-दिवाली पर मुझे बुलाकर रंग खेलती थी। मिठाई खिलाती थी। मैं उनके पैर छूता, तो कहतीं कि बूढ़े हो। उनकी निशानी है सरोज। लो, ये चार संतरे रख लो। भतीजी से कहना कि ये तुम्हारे चाचा सुबराती ने भेजे हैं।"

यह कहते-कहते सुबराती के ग्राँसू ग्रा गए। उसने संतरे रज्जन को दिए। घूमते ही रज्जन की भी ग्राँखों में ग्राँसू ग्राये ग्रौर सुबराती की ग्राँखें गीली हो ग्रायीं। उसके मन ने कहा कि यह मेरा कितना प्यारा दोस्त है।

फिर रज्जन गया चम्पा चाची की चक्की पर ग्राधा सेर ग्राटा लेने। चम्पा कलारिन थी। गले में सोने की ठोस हँसुली पहने थी। हाथों में ठोस-सोने के कड़े, ग्रौर गले में बीस तोले की सोने की पाँच लर की गूँज लटक रही थी। उसके पैर नंगे थे, नाक सूनी। वह विधवा थी। पच्चीस तोले की सोने की ग्राठ-ग्राठ चुड़ियाँ पहने थी। वह बोली—"ग्राग्रो रज्जन भइया। ग्राज सूरज पच्छिम में तो नहीं निकला था। क्या दूँ, क्या मँगाया है मेरी भतीजी ने ? ग्राज तुम नशे में नहीं; बाजार में कैसे दिखलाई पड़ रहे हो।"

रज्जन चाची के पास जाकर बैठ गया ग्रौर नतमस्तक होकर बोला—"शर्मिन्दा न करो चाची। मैंने गलतियाँ बहुत की हैं, मुझे माफ कर दो। ग्राधा सेर ग्राटा दे दो। कितने पैसे हुए ? ग्रब मैंने कसम खा ली है, न सरोज को पीटूँगा ग्रौर न शराब को छुऊँगा।"

"ग्रच्छा ग्रच्छा। यह भी देखना है। तू बड़ा झूठा है रज़्जन। यह मैं ग्रच्छी

तरह जानती हूँ। अरे, आधा सेर नहीं, कहाँ गया मोहन?—तौल दे पाँच सेर। मेरी सरोज खायेगी। बेचारी भूखों मरती है, रोटियों के लाले हैं। अरे नालायक रज्जन, उसके हाथ तो पीले कर दे। मैं हजार-पाँच सौ खर्च कर दूँगी। सोमा और में साथ-साथ पढ़ी थीं; लेकिन रिश्ते में मैं चाची हुई, वह भतीजी। देख तो रहे हो भइया कि बूढ़े को ब्याह आई थी, रांड़पा लिये बैठी हूँ। गफलत मत करो, घर-वर ढूँढ़ो। मैं छाती ठोकती हूँ। सरोज का ब्याह मैं करूँगी।"

अब रज्जन बलर-बलर रोने लगा। वह रोते-रोते बोला—"तुम्हारा-ही सबका सहारा है चाची। माफ कर दो अपने नालायक बेटे को। अब रज्जन जिन्दगी में पिछली भूलें नहीं करेगा।"

चम्पा चाची रज्जन की पीठ पर हाथ फेरने लगीं। वे उसे सान्त्वना देकर बोलीं—"पूत रज्जन, अब भी संभल जाओ, आँखें खोल दो। सुबह का भूला जब शाम को घर आता है, तो लोग उसके गुनाह पर पर्दा डाल देते हैं और कहते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ। एक लड़का क्षत्री इण्टर कालेज के आफिस में बाबू है। उसके बाप ने मेरा कर्ज खाया है, जो अब तक उऋण नहीं हो सका। सरोज को ब्याह दो उससे, रुपया-पैसा मैं खर्च कर लूँगी। अरे हाँ, आज एकादशी थी। मैंने पिटारी पुन्न की थी, वह लेते जाओ। सरोज को दे देना।"

पिटारी में एक रंगीन मलमल की धोती थी, एक ब्लाउज का कपड़ा और ग्यारह रुपये। फल, मिठाई और एक छोटा-सा चाँदी का पात्र। रज्जन यह सब लेकर चला। वह सदर बाजार के चौराहे पर आया। तभी उसका एक पियक्कड़ दोस्त मिल गया लतीफ। उसने कहा—"वालेकुम सलाम। कल तो मयखाना सूना ही रहा। यार तुम आये नहीं? कल अंगूरी छनी थी। चलो, आज दावत मेरी तरफ़ से।"

रज्जन असमंजस में पड़ गया। वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया। आखिर उसने कह दिया—"भाई माफ करो। अब मुझे वह राह नहीं चलनी हैं। मेरी जवान लड़की है। मुझे उसका लिहाज है।"

"लिहाज ! लिहाज तो उसी दिन चला गया, जब तुमने दारू ओठों से लगाई। तुम्हें अल्ला-ताला की कसम जो तुमने लतीफ की बात काटी। फिर दोहराओं एक बार शहंशाह जहाँगीर क्या कहता था कि हो आध-सेर कबाबा मुझको, एक-सेर शराब हो। नूरेजहाँ की सल्तनत है कि खूब हो या खराब हो। चल यार, जब जाम हलक से नीचे उतरेगा, तो जन्नत नजर आयेगी। अरे सुन शायरी का नया दौर कि बेलुत्फ जिन्दगी है जिये जा रहा हूँ मैं। खाली है शीशा और पिये जा रहा हूँ मैं।' चल-चल, मैं तेरी एक नहीं सुनूँगा। खींचकर ले चलूँगा।"

इस तरह रज्जन विवश हो गया और सदर बाजार की एक बार में दोनों दोस्त पीने बैठे। जाम पर जाम चले। शुरूर आया; आंखें गुलाबी हुई। दोनों में शेरबाजी हो रही थी। रज्जन कह रहा था कि 'टूट दरिया की कलाई, जुल्फ उलझी बाम में। मुरचये मखमल में देखा, आदमी बादाम में।'

"वल्लाह ! क्या बात है ? क्या मिसाल दी है आँखों की। शायर ने मात कर दिया। और मेरी भी सुनो। एक नाजवीन कहती है कि "कोठे ऊपर उड़ी पतंग, ताकी हवा लगी मोरे अंग। जो न लुक जाती ओट किवाड़, तो सखि उड़ जाती कोस हजार।"

लतीफ का यह शेर सुन रज्जन खिलखिलाकर हँस उठा। वह बोला—"लाओ, और लाओ।" शराब जब अपना कदल जमा लेती है, तो कहती है 'और लाओ।'

इस तरह एक-एक जाम और चला। अब रज्जन गुनगुनाने लगा—"दो दिन की जिन्दगी है, उसे खत्म किये जा। तोबा के साथ-साथ तू और पिये जा। मैं भरके जाम लायी, यह काली घटा छाई। हो राजा ! शीशे की पालकी में तेरी लाल परी आई।"

लतीफ झूमने लगा था। रज्जन भी डांवाडोल हो चला। दोनों लड़खड़ाते पैरों द्वार के बाहर निकले। लतीफ गली में मुड़ा, वह एक नाली में गिर पड़ा। और रज्जन, वह किसी तरह चला आया आलू थोक के चौराहे तक। वहाँ वह भी भरभराकर गिर पड़ा। आटा फैल गया, उसे गायें चाटने

लगीं। मूँग की दाल बकरियाँ चुग गईं। आलू और टमाटर गायों के पेट में गये, सन्तरे उठा ले गए बच्चे। और शराबी अब भी बेहोश चौराहे पर पड़ा था।

घर में सरोज दूध गरम कर, चूल्हा जलाये बैठी बाप की प्रतीक्षा कर रही थी। खबर मिली; वह भागी-भागी चौराहे पर गई। वह खींच लायी बाप को और खूब फूट-फूटकर रोने लगी।

जब रात का पहला पहर समाप्त हो चुका, तो रज्जन ने आँखें खोलीं; वह बोला—"गैरों ने पी और लगे झूमने, हाँ लगे झूमने। मैंने भी पी गर न आया सुरूर। कैसी सजा है यह मेरे हुजूर! दोस्त लतीफ ला एक जाम और। अभी जन्नत नजर नहीं आयी। दे यार जल्दी कर।"

"नालायक, तू मेरा बाप है? फिर पीकर आया? यहाँ लतीफ और करीम नहीं; तुम्हारी इज्जत सामने बैठी हैं सरोज। डूब मर चुल्लू भर पानी में बेशरम। तुझे हया नहीं!"

यह कह सरोज ने बाप का हाथ चबा लिये; उसके चुटकियाँ काटीं; उसकी छाती पर दोनों हथेलियाँ पीटीं। तब नशेबाज अपनी रफ्तार में आ गया। वह जैसे मुरदा से जिन्दा हो गया। वह उठा उठाकर पटकने लगा सरोज को। उसने उसकी छाती पर पैर रखा। गला दाबा। उसने उसे मुँह दाब-दाबऐसा मारा कि मुँह से खून गिरा दिया। फिर वह स्वयं गिर पड़ा बेहोश होकर। सरोज सुबक-सुबककर रो रही थी और सामने शराबी बाप हाथ-पैर पटक-पटककर तड़फ रहा था मछली की तरह। वह अपना दुख भूल गई। बाप को पानी पिलाया। उसका सिर अपने घुटने पर रख कर बैठी और रो-रोकर कहने लगी—"बापू, तुम क्या कर लेते हो? आगे बढ़कर पीछे लौट आते हो। तुम मेरे बाप ही नहीं, मेरी माँ हो। देखो सरोज रो रही है। तुम्हारी लाड़ली, तुम्हारी दुलारी। अगर कल से पियो, तो पहले मुझे लाकर जहर दे दो। तुम खूब मारो बापू, मेरी हत्या कर दो; लेकिन मैं तुम्हें पीने नहीं दूँगी।"

इस तरह आत्मजा विलख-बिलखकर रो रही थी और शराबी था अपनी

दुनिया में मस्त। वह धीरे-धीरे बड़बड़ा रहा था—"शराब, जाम और जवानी; जिन्दगी जिन्दा दिली है। और जिन्दादिली-ही उसका नाम है। मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं। है आज मुझको फिकर ही क्या, तू मजे से पी और मजे से खा।"

सरोज सारी रात रोती रही। उसकी आँखें लाल ही नहीं हो गईं, बल्कि उनमें सूजन आ गई। सवेरे रज्जन अब भी बेसुध सो रहा था। सरोज ने उसे हिलाया-डुलाया और हार कर उस पर पानी डाला; लेकिन शराबी नहीं जगा। तब वह रो दी मुँह फाड़कर। उसके करुण-क्रंदन से चारों दिशायें गूँज उठीं।

६



सरोज अधिक गोरी तो न थी; लेकिन थी गेहूँ के रंग की तरह। उसकी नाक लम्बी थी तोते की तरह। उसके होठ जैसे आम की फाँकें थीं और उन फाँकों के बीच बत्तीस जड़े थे श्वेत अनार दाने। वह दूधिया बत्तीसी ही मार डालती थी देखने वालों को। उसकी भौंहों में लचक थी। उसकी आँखों में हरकत और अदा अनोखी थी—छलकती मदभरी प्याली। उस गुलाबी बाला के केश कुन्तल नहीं, काले नहीं; वे भूरे थे;—घूँघर वाले और झूलते थे इतने लम्बे कि कमर से नीचे तक जाने का प्रयास करते। एक तिल था उसके बायें गाल पर और दूसरा ठुड्डी के बीचों बीच। उसकी कलाइयाँ इतनी कोमल थीं जैसे जूही की डाल। उसकी उँगलियाँ इतनी नाजुक थीं जैसे कमलनाल। उसकी ग्रीवा इतनी पतली थी, इतनी लम्बी जैसे सुराही। उसका कटि प्रदेश था डमरू। उसके उन्नत उरोज इतने संकुचित थे, इतने सीमित जैसे जवानी फूटने जा रही हो, बहार खिलने जा रही हो। उसकी गति थी मराल। वह

हंसिनी थी। वह माटी की गुड़िया थी, हँसती तो फूल झरते, रोती तो मोती। सब कुछ मिलाकर उसकी जवानी गजब ढा रही थी। वह देखने वालों के लिए एक तमाशा थी।

और तमाशा तभी आता है नजर जब इन्सान तमाशाई बन जाता है। हरजाई तभी हँसती है दिल खोल जब उसे नया सवेरा मिलता है। बुलबुल वहीं गाती है, जहाँ रंग और जश्न होता है। करिश्मा वहीं कुछ कर दिखलाता है, जहाँ उल्टी धार बहती है। जवानी जन्नत होती है जवानी दो दिन का नशा। वह एक सपना होती है जिसकी याद बुढ़ापे में शेष रह जाती है। धार बहती है, नाव चलती है, हवा अपना रुख बदलती है। जवानी जोश से इतराती है। तभी वह दब जाती है, घुट जाती है या मिट जाती है। लेकिन बहारें छेड़ती हैं और वह फिर जवान हो जाती है। इस तरह भइर जवान थी सरोज। वह जब सड़क पर चलती, तो उसके गुलाबी गाल हिलते। उसके उठे हुए उरोज धीरे-धीरे चौंकते। देखने वाले देखते, आह भरते और कहते कि यह लड़की नहीं, औरत नहीं, शराब की प्याली है। कैसी छलकती है छलछल। जवानी अपना दावा करती है। किसी जवाँ मर्द में दम हो तो इससे खेले। यह बेजोड़ है। मनचले कहते कि आह प्यारी, आह मेरे गुलाब के फूल। दिलजले देखकर नाक-भौं सिकोड़ते और कहते कि तू बेवफा है; लेकिन प्यार के राही अपना अजीब अन्दाज छोड़ते। वे सिसकियाँ छोड़ते और कहते कि शबनम आ, तू शोले से गले लग जा, जवानी एक लुत्फ है, बहार है। यह अछूता यौवन और तुम अकेली। गुण्डे फब्तियाँ कसते, वे गीत गाते कि मोहब्बत में ऐसे कदम डगमगाये, जमाना यह समझा कि हम पीके आये।

सरोज सब सुनती, सब देखती और सोचने लगती कि जयन्त कुछ नहीं कहता। उसके पास न जवानी है न जोश। ये फालतू लोग गाल क्यों बजाते हैं? क्या इनकी चप्पल से खबर लूं? औरत जब तक अपने को कमजोर समझती है, तभी लोग उस पर हुकूमत करते हैं और जब वह बन जाती है चांद बीबी या झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, तो लोग उसका लोहा मानते हैं। ये लोग जवानी को खिलवाड़ समझते हैं और मैं समझती हूँ कि जवानी ही

जिन्दगी की करामात होती है, जो आदमी को बहुत ऊँचा उठा देती है। अब मैंने तय कर लिया, यदि किसी ने निगाह उठाई तो उसकी आँखें फोड़ दूँगी। किसी ने आवाजकशी की तो उसकी जबान खींच लूँगी और जिसने भरी आह ठंडी-ठंडी, उसके नोचूँगी बाल। मैं जवान हुई हूँ, तो इसलिए नहीं कि जवानी की मौज लूँ, उसके बाद कुत्ते-कौओं की मौत मरूँ। मैं गुनहगार की बेटी हूँ। मैं हर कदम फूँक-फूँककर रखूँगी। देखूँ छेड़े कोई मुझे! मैं प्रलय मचा दूँ, खून-खराबी कर दूँ। उसे मार डालूँ या खुद मर जाऊँ! जवानी का जोश अन्धा नहीं, जब आँखों वाला होता है तभी काम चलता है।

इस तरह सरोज में दिन-पर-दिन साहस का संचार हो रहा था। वह पाती अपने में जीवन। यद्यपि जयन्त उसकी मदद करता था; लेकिन फिर भी वह स्वराज्य आश्रम चली जाती। कच्चे सूत की उलझी हुई लच्छियाँ ले आती, उन्हें सुलझाती। पड़ोसियों के घर जाती और कहती कि कोई काम तो नहीं, आज मैं फुरसत में हूँ। कोई कहता कि अरे इन कपड़ों पर लोहा कर दे, ये दाल-चावल बीन दे। मेरे पापड़ बेल दे सरोज। आ बिटिया, बच्चों को तैयार कर दे, मैं एक ब्याह में जा रही हूँ। सरोज हँस-हँसकर सब का काम करती। वह सब की प्यारी बन गई थी। इस तरह वह गृहस्थी चलती, अपना और बाप का पेट भरती।

और रज्जन की हालत थी यह कि वह जब मण्डी जाता तो सुबराती कुँजड़े से मुँह चुराता। चक्कीवाली चम्पा चाची के सामने जाता भी शरमाता। और मोती बनिये की दूकान तो कभी भूल कर भी नहीं जाता। वह शराब के लिए अब सरोज से पैसे नहीं माँगता; छिपकर पीता। किन्तु चोरी की आस्था ही क्या? चोर के पाँव नहीं होते, वह बुजदिल होता है। पत्ता खड़कता है बन्दा सरक जाता है। और पानी में की हुई भिष्टा ऊपर आकर तैरने लगती है, तभी भेद खुल जाता है। चोर, छिनाल, और जुआरी, इन तीनों से गंगा हारी—यह कहावत है और जिन्दगी में अगर कहीं बुरा व्यसन पल्ले पड़ जाता है, तो वह आदमी को मजबूर कर देता है। एक था शहंशाह बाबर, जिसने हिन्दुस्तान विजय करते ही शराब पीने के सोने-चाँदी के बर्तन

तुड़वा दिये। उसने प्रण किया था कि जब तक देश को मैं एक संगठित सूत्र में नहीं बाँध लूँगा, शराब नहीं छुऊँगा कबाब नहीं खाऊँगा। और दूसरा था जहाँगीर जिसकी सुरा प्रेयसी थी, प्रियतमा थी। शाहआलम को रंगीला बादशाह कहा जाता है। उसकी गति यह हुई कि अब्दुल कादिर गुलाम ने उसे गद्दी से उतार दिया और शहंशाह बन बैठा। उसने शाहआलम की दोनों आंखें अपने हाथों निकाल लीं और पूछता रहा कि बता लाल किले का गुप्त खजाना कहाँ है। ऐसा ही था अवन्ति का वाजिद अलीशाह, जो सुरा में डूबा रहता था। देश इसलिए गोरे फिरंगियों के हाथ लगा और फिर गुलाम हो गया। ऐसा ही गुलाम बन गया था रज्जन। उसने बार के मैनेजर को वचन दे दिया था कि सरोज को उससे ब्याह देगा। उसने सीख लिया था कि दहेज तो दुनिया देती है, लेकिन लड़की भी बेची जाती है आवश्यकता पड़ने पर। वह एक तरह से नीच हो गया था। उसकी मर्यादा मर गई थी। यह जीवन की कुण्ठा का शिकार हो गया था। बदनसीबी उसके सिर पर नाच रही थी।

एक दिन रज्जन कहीं गया हुआ था सरोज आँगन में बैठी एक पड़ोसिन के पापड़ बेल रही थी। तभी उसके दूसरे पड़ोसी इन्जीनियर साहब उसके आँगन में घुस आये। सरोज सहमी, वह आश्चर्य में आ गई। और अगन्तुक महोदय उसकी ओर तीव्र गति से बढ़ते हुए कहने लगे—"वाह, क्या हुस्न है? क्या जवानी? सरोज आज मैं तुम्हें अपनी बनाने आया हूँ। छिःछिः! पराई गुलामी करती हो। यह लो सौ रुपए का नोट। अभी तुमने जवानी की मौज नहीं ली, तभी तो दुनिया को छोटी समझती हो। सामने जब गदरायी और पकी जवानी होती है तो मन नहीं मानता बन्नो। आज मैं तुम्हें वह दुनिया दिखाऊँगा, जो तुमने कभी नहीं देखी है।"

सरोज उठकर भागी, वह पीछे हटी और हटती गई। वह कह रही थी— "तू मुझे दुनिया दिखायेगा?" तू मुझे सौ रुपये का नोट देगा? मैं काढ़ लूँगी तेरी आंखें। लड़की नहीं मैं नाहर हूँ, नाहर। जा चला जा नीच, वर्ना मैं तेरा खून पी लूँगी। कोठे आबाद हैं, किसी भी तवायफ के यहाँ चला जा। वही मुँह काला कर। जानता नहीं चाण्डाल, गरीब की इज्जत ही उसकी दौलत है।"

"औरत का गुस्सा इतना प्यारा लगता है सरोज। और फिर जवानी में ? तब तो उसमें मधु-ही-मधु भरा होता है। देखो गुस्से में तुम्हारे गाल कैसे सुर्ख हो गये हैं। तुम कितनी प्यारी लगती हो ! लो, जल्दी से नोट रख लो। ऐसे मौके बार-बार नहीं आते। आह गुलबदन ! मेरी स्वर्ग की परी ! तू कितनी सुन्दर है। मैं तेरा ताबेदार हूँ। आ, बाँहों में भर जा, मेरे कलेजे की तपन बुझा दे।"

यह कहता हुआ वह युवक निःसंकोच पहुँच गया सरोज के पास। उसने उसे अपनी फौलादी बाँहों में कस लिया। तभी फड़फड़ायी मछली। उसकी पकड़ ढीली हुई। सरौज घूसों-मुक्कों से उसका मुँह फोड़ने लगी। वह उसे बाहर तक खदेड़ लायी। देखने वालों ने तमाशा देखा और सुनने वालों ने आपस में गुफ्तगू की कि सरोज पेशा नहीं करेगी तो और करेगी क्या। आखिर रोटियाँ कहाँ से चलेंगी। अब उसका चलन खराब हो गया है। वह भले घरों में आने योग्य नहीं।

सरोज ने यह कहानी सुनाई जयन्त को। सुनते ही उसका खून खौल उठा। वह हाकी लेकर आया इन्जीनियर साहब के घर पर। उसने न कुछ पूछा, न बतलाया और तोड़ दिये उनके हाथ-पैर। खूब जी भरकर मरम्मत की। पुलिस में रिपोर्ट हुई, जयन्त बन्दी बना। उस पर थाने में खूब मार पड़ी। फिर इस्तगासा दायर हुआ और धारा ३२३ तथा ३२५ के अन्तर्गत उसे दो महीने का कारावास हुआ। किन्तु वह जब लौटकर आया तो उसने इन्जीनियर साहब की फिर कसकर मरम्मत की।

एक बार गुण्डों के दल ने सरोज का पीछा किया और सोचा कि इसके सिर पर चादर डाल दो। मुँह ढाँपकर इसे कहीं ले चलो। गुलाब के फूल जैसी इसकी महकती जवानी है, हजारों में बिकेगी, सैकड़ों में नहीं। वह मजबूर है तो क्या ? इस कलियुग में मजबूर की मदद नहीं की जाती; बल्कि उठाया जाता है उसकी मजबूरी से नाजायज फायदा। आज का धर्म यही कहता है। योजना बनी; सरोज गुण्डों की गिरिपत में आ गई। दैवयोग की बात, रास्ते में मिल गया जयन्त। उसने यह दृश्य देखा। उसकी गुण्डों से हाथापाई हुई। वह

घायल हो गया । किसी तरह सरोज को उसके घर भेज, वह अधमरा-सा अपने घर आया । घर आकर सोचने लगा कि अब सरोज का घर में अकेले रहना ठीक नहीं । उसकी मांग भर जानी चाहिए । उसके हाथ पीले होने हैं । मैं किस बूते पर व्याहूँ उसे । मैं आवारा हूँ, बस्ती के लोगों की निगाह में गुमराह । व्याह के लिए घर चाहिये, खानदान और इज्जत । जब तक भात खाने वाले बेशुमार नहीं होते, कहा जाता है कि खानदान छोटा है । मेरी कौन बिरादरी है, मेरा कौन घराना । ऐसे ही मौकों पर मालूम होता है मनुष्य को कि परिवार क्या है, कुनबा क्या है, उसका महत्व क्या है । अकेला ढोल कुछ नहीं कर सकता, चाहे वह सोने का ही क्यों न हो । उसे बजाने वाले हाथ चाहिये, उसे टाँगनेवाला गला । एक अकेला कुछ भी नहीं कर सकता दुनिया में । प्यार के रास्ते हों, उन पर मोह और स्नेह के चिराग जल रहे हों । सहयोग की छोटी-बड़ी, दुबली-पतली बाहें हों । सुहागिनें हों युवती से लेकर बूढ़ी तक । सो मंगल गीत गा रही हों, और सौभाग्य हो उस सिन्दूरी सूरज की तरह जो अपनी मां की कोख से जन्म लेता है । सितारा हो जैसे ध्रुवतारा जो एक टक स्थिर । जिसकी मर्यादा हो और जिसका महत्व दुनिया मानती हो । आवारा जिन्दगी मनुष्य के जीवन का अभिशाप होती है । परिवार वह आभूषण है, जो माँगलिक प्रतीक है । गृहस्थी वह किला है जिसे सत्य और धर्म भी गिरा नहीं सकता । ईमान बाप है, कर्त्तव्य साथी । सत्य माँ है । एक षोडषी बाला है सरोज । क्या मैं उसके उत्तरदायित्व का पालन कर सकता हूँ ? मुझमें इतनी क्षमता है ? किसी घायल शायर ने कहा है 'जो बिगड़ते जिन्दगी भर, वे सुधरते एक दिन । जबकि उनके सिर पर दीवाल खड़ी हो जाती है जिम्मेदारी की । मैंने कभी प्यार नहीं किया सरोज को । लेकिन आज लगता है कि वह मुझे जान से भी ज्यादा प्यारी है ।

निष्कर्ष यह निकला, जयन्त इस तथ्य पर पहुँचा कि कुछ भी हो मैं अपनी जान की बाजी लगा दूंगा और सरोज को सुखी बनाकर रहूँगा । वह मेरी प्रेयसी है, मेरी प्रियतमा, मेरी आत्मा । लोग तरसते हैं प्यार को, लेकिन अनूठा प्यार बिरलों को ही मिलता है । आह सरोज ! तू कितनी भोली है मेरी माटी

की गड़िया। जी चाहता हैं तुझे पलकों में छिपा लूं, हृदय में बैठा लूं। खबरदार दुनियावालो ! यह माटी की गड़िया जयन्त की हैं। यह मेरी जिन्दगी है, इसे न छुओ। सरोज ही जयन्त के जीवन की वह कहानी हैं, जो दुःख दर्द से भरी हैं। आह माटी की गड़िया ! मेरी सरोज ! मेरी जीवन-रेखा ! ! !

७



सवेरे-ही-सवेरे जयन्त जा पहुँचा अपनी माटी की गड़िया को देखने। रास्ते में रज्जन चाचा मिले। उसने उनके पैर छूए। वे बोले—"क्यों रे कमीन, तू क्यों आता हैं मेरे घर ? तेरी मरजाद नहीं, तेरी हिम्मत नहीं। सरोज को भूल जा और अभी चला जा, वर्ना मैं तेरा गला घोंट दूंगा। मैं बाप हूँ सरोज का। प्यार कुछ नहीं, स्नेह का भी मूल्य नहीं। मोह और ममता तो उसकी चेरी हैं। अवकात देख भले आदमी। तू गरीब की इज्जत से खेल रहा हैं।"

"चाचाजी गला हाजिर हैं, गुनाहगार सामने हैं। जो चाहे सजा दीजिये। मैं सरोज को पथ-भ्रष्ट करनेवाला नहीं; उसे नेकी की राह सुझानेवाला हूँ। एक काम कीजिये आप। उसका ब्याह मुझसे कर दीजिये। मैं···"

"नालायक ! बदतमीज ! ! तेरी यह हिम्मत ! ! ! चल पहले अपनी शक्ल शीशे में देख, तू कितना काला हैं। आवारा लोग समाज के ही नहीं, जनजागरण के भी दुश्मन होते हैं। खींच लूंगा तेरी जबान, अब जो ऐसी बात कही। तू चला जा इसी में भलाई हैं, वर्ना मैं धक्के मारकर बाहर निकाल दूंगा।"

यह कहकर रज्जन ठुमका। वह जयन्त को मारने दौड़ा। तब जयन्त

मुस्कराया। उसने आततायी के चरण छू लिए और धीरे-से कहा—"चाचाजी, जमाना देखिये, अपने को परखिये। अपने में कमियाँ ढूँढ़िये, जो बाप स्वयं गुनाहगार है, वह गुनाहों से अपनी औलाद की रक्षा कैसे कर सकता है ? मैं बुरा ही सही, लेकिन आपसे अधिक नहीं, क्योंकि आपने तो मर्यादा को जेब में डाल लिया है। उसका तिलक किया जाता है, वह माथे पर विराजती है। और जिस चोर की दाढ़ी में तिनका होता है, वह उसे छिपाये-छिपाये घूमता है।"

"तेरी यह हिम्मत बदतमीज। तू मुझे चोर कहता है !! मेरी दाढ़ी में तिनका बतलाता है !! चल निकल यहाँ से, नहीं तो तेरी हड्डी-पसली सब चूर कर दूँगा।"

यह कहने के साथ ही रज्जन टूट पड़ा जयन्त पर। वह उसे दोनों हाथों पीटने लगा। सरोज ने पहले सब सुना और अब आँखों देख रही थी। लेकिन खूब बड़प्पन निभाया जयन्त ने। उसने मार खा ली और उफ तक नहीं किया। जब रज्जन थक गया और हाँफकर गिर पड़ा, तो उसने उसका सिर उठाकर अपने घुटने पर रखा। फिर श्रद्धापूर्वक पूछने लगा—"आपके चोट तो नहीं लगी चाचाजी। मेरी देह बड़ी सख्त है, फौलाद।"

रज्जन शर्मिन्दा हो गया था, इसलिए निरुत्तर रहा और जयन्त चला आया। साँझ के समय उसके घर सरोज पहुँची। उसने आते ही कहा—"कहीं से मुझे जहर की एक पुड़िया ला दो जयन्त, मैं अब जीना नहीं चाहती। एक तुम्हारा सहारा था, सो तुम भी कुछ समझ में नहीं आए। मैं किस बल-बूते पर जीऊँ, मुझे बता दो। मैं ऐसे बाप के साथ नहीं रह सकती, जो झूठा हो, शराबी हो।"

जयन्त मुस्कराया; उसने सरोज का सिर अपने वक्ष से लगा लिया और फिर उसके बालों पर उँगलियाँ फेरता हुआ अनुराग-भरे स्वर में बोला—"जब लगन एक ओर से लगती है, तो दूसरा दूर नहीं जा सकता सरोज। मैं जिन्दगी हूँ और तुम चिराग। मेरा जहाँ तुम्हीं से रोशन है। जयन्त तुम्हें कितना कितना प्यार करता है यह कहने की जरूरत नहीं। सहो, और सहो सरोज।

जो सहता है वही कुछ बन पाता है, वही कुछ कर लेता है। प्यार एक कसौटी है, जो मन से मन को मिला देती है।''

इस तरह खूब समझाता रहा जयन्त सरोज को। साँझ के समय जब वह घर पहुँची, तो बाप डंडा लिए बैठा था। देखते ही वह जुट गया उस मासूम कली पर। उसे ऐसा पीटा कि उसकी देह काली-नीली हो गई।

सरोज की मनःस्थिति जब ठीक हुई तो वह सोचने लगी कि यह बाप नहीं, मेरा दुश्मन है। जयन्त चुप क्यों है ? वह मेरी बाँह क्यों नहीं पकड़ लेता और सब के सामने कह देता कि मैं उसकी जीवन-नैया हूँ और वह मेरा खेवनहार है। वह मुझे अंगीकार कर ले तो मेरा लोक-परलोक बन जाये। पूँछूगी उससे और कहूँगी भी, जोर दूँगी। अगर उसने कुछ और बतलाया, तो जान दे दूँगी। मेरा एक यही है दुखिया का सहारा। वह कितना सुन्दर है। कैसा खिलता नौजवान। उसके कलेजे में पीर भरी है और हृदय में दया। उसकी साँसों में मोहब्बत है, लेकिन बेजबान। वह चिराग है, मैं रोशनी। वह दुनिया है, मैं दौलत। वह जिन्दगी है और मैं ख्वाब और रंगीन सपने कितने अच्छे लगते हैं। तसवीर तभी अच्छी लगती है, जब उसमें सब रंग भरे होते हैं। आह, जयन्त। तू अगर जिन्दगी का सहारा न बना, तो सरोज जहर खा लेगी, जान दे देगी ! आह, मेरे प्यारे बसन्त !

इस तरह सरोज को जयन्त में ही अपनी दुनिया नजर आती थी। वह खाना बनाती, बाप को खिलाकर स्वयं पानी पीती। मन में सोचती कि वे भूखे होंगे, मैं कैसे खा लूँ। जब सारी दुनिया रात को तारों की छाँव में सोती, तो वह एक-एक सितारा गिनती और मन-ही-मन कहती कि छोटी-सी बात मोहब्बत की और वह भी कही नहीं जाती। कुछ वो शरमाये रहते हैं, कुछ मैं शरमाये रहती हूँ। या कोई बता दे आज मुझे क्या प्यार इसी को कहते हैं ?

इस तरह सरोज पूर्णतया आसक्त थी जयन्त पर। वह दिन में चौंकती; सारी रात जागती और कहती दुनिया के मालिक से कि मेरा प्यार अमर कर दे भगवान। जयन्त और सरोज की जोड़ी बना। जो जिसको प्यार करता है,

वही उसका अधिकारी होता है। आह मेरी जीवन-मरन समस्या ! मेरी जवानी को बुला दे। लोग कहते हैं कि जवानी वह जोश है, जो जिन्दगी में रंग ला देती हैं। जवानी मर के फिर नहीं जीती, यह उसकी बेवफाई है।

ऐसे ही मन-ही-मन सपने देखती सरोज कि जब मेरा जयन्त से ब्याह हो जायेगा, तो मैं उसे इतने करीने से लगा दूँगी कि देखने वाले दाँतों के बीच उँगली दाबेंगे। वह सरोज का हो जायेगा, तो उसकी दुनिया भी बदल जायेगी।

८



एक रात आधी हो गई, अँधेरा आतंक से भर गया। गली-सड़कें सुनसान हो गईं जैसे किसी ने उन पर मसान डाल दी हो। तारे चमकते ऐसे जैसे शैतान की आँखें हों। हवा सरकती इस तरह मानो जिन्दगी करवट ले रही हो उजाले से अँधेरे की तरफ। वातावरण वीभत्स बन गया, मानो यह जिन्दगी का नहीं मौत का मातम हो। रात का पहला पहर बीता, दूसरा भी जवान होकर बूढ़ा हुआ और तीसरे की जब हुई अगवानी, तब सरोज घर से बाहर निकली। बाप अभी तक घर नहीं आया था। वह उसे लेने शराबखाने चल दी। उसकी मदभरी प्याली जैसी जवानी छलकी जाकर उस मदिरालय में, जहाँ आरकेस्ट्रा बज रहा था। सोसायटी गर्ल नृत्य करती हुई यह गा रही थी—'मोहब्बत में ऐसे कदम डगमगाये, ज़माना यह समझा कि हम पीकर आये।'

शराब के दौर-पर दौर चल रहे थे, जाम भर रहे थे और खिच रहे थे सिगरेटों के भरपूर कश। कोई मजनू बन रहा था, कोई लैला और कोई फरहाद शीरी के लिए दूध की नहर खोद रहा था। रज्जन औंधे मुँह एक मेज

पर लेटा था। वह नशें में धुत्त था। सरोज जब पहुँची, तो लोगों ने कहा—"कम हियर डार्लिंग, जिन्दगी के नूर, यहाँ यह कुर्सी खाली है। मडम। हियर यू आर, हियर यू आर। हाफ कोर्स ब्रान्डो!"

किन्तु सरोज की निगाहें झुकी थीं। वह बाप के पास पहुँची। वह हिला-डुला किसी तरह उसे अपने साथ लेकर चली, तो आरकेस्ट्रा बन्द हो गया और सोसाइटी-गर्ल ने खुद कहा कि अगर यह जवानी बार में आ जाय, तो एक बार इसकी किस्मत ही बदल जाय। जवानी इसमें फूटी पड़ती है। वह वे अन्दाज है और मनचले लोग साथ हो लिये। किसी ने कहा अरे, यह दुश्मन और यह अकेलापन। जवानी बर्बाद क्यों कर रही हो मेरी जान। किसी के भी गले में बाहें डाल दो। सभी में कलेजा है, सभी में दम, जवानी में खूब खेलों, जवानी यही कहती है।

लफंगे लोगों में से सरोज से किसी ने कहा जानेमन। किसी ने कहा लाल परी। किसी ने बाप को कन्धे से लगा लिया और कसकर बाहों में भर लिया सरोज को तो वह चीखी-चिल्लाई। इस पर गुण्डों ने कहा छोड़ दो इसके बाप को। ले चलो साली को। आज हम सब इसकी मस्ती उतारेंगे, तब काबू में आयेगी।

सरोज सिसकी। उसने खूब हल्ला मचाया। तभी उधर से आ गया जयन्त। उसने गुण्डों के हाथों की मार खायी और सरोज को बचाया। तब सरोज उससे बोली—"मुझे औरत बनाओ, मैं बच्चा पैदा करूँ। फिर दुनिया मेरा कुछ नहीं कर सकेगी। मेरी जवानी बेहाल है। तभी लोग दौड़ते हैं। मुझे दुलहिन बनाओ जयन्त, वर्ना मैं मर जाऊँगी।"

जयन्त पशोपेश में पड़ गया। वह धीर-गम्भीर होकर बोला—"सरोज मुझे इस बन्धन में मत बाँधो। मैं अवारा हूँ, बदचलन और सब की निगाह में खराब। तुम विश्वास न करो, मुझे झूठा समझो। मुझे ठुकरा दो। मैं..."

"तुम! तुम यह कहते हो? गुण्डे मेरी इज्जत से खेलें, बदमाश मुझे हरजाई बनायें। डूब मरो जयन्त चुल्लू भर पानी में। जब तुममें दम नहीं था, तब मुझसे प्यार क्यों किया था? खबरदार! जो मुझे सरोज कहा। मेरी देह

को छुआ ! तू डरपोप है, तू कायर है तू बुजदिल है । औरत को रखने के लिए हाथ भर का कलेजा चाहिए । चले जाओ, दूर हो जाओ जयन्त । मैंने दाजी हारी है । मैंने मात खाई, मुझे बख्श दो ।"

और जयन्त चला आया सरोज के साथ । कटे वृक्ष की तरह जमीन पर गिर पड़ा । उसने आँखें खोलीं, तो अन्धकार था । वह सजग हुआ; उसने सरोज को बाहों में भरा और लोगों से कहा कि यह मेरी मंगेतर है ।

जयन्त के पीछे-पीछे एक छोटी-सी भीड़ आई थी । उसमें बच्चे नहीं, बुजुर्ग थे, जो कह रहे थे कि खोटा पैसा और खोटा आदमी एक दिन काम आता है । यारो अपनी आँखों से देख लो, दुनिया बड़ी पाखंडी है । बद को अच्छा और बदनाम को बुरा कहती है । जयन्त ने कितनी मार खायी । उसने अपनी जान की बाजी लगा दी । अच्छा है अगर वह सरोज को ब्याह ले, तो एक नहीं, दो बिगड़े हुए घर सुधर जायेंगे । जयन्त समाज मे इज्जत पायेगा । एक गृहस्थ का समाज पर उतना ही हक होता है, जितना राज्य में युवराज का । और उधर रज्जन भी पीना छोड़ देगा । अगर पैसे नहीं मिलेंगे ।

रात की धुँधली और मैली चादर अब पूरी-पूरी सिक्त हो चुकी थी असित रंग से । सन्नाटे ने भी अपना कुनबा जोड़ा । साँय-साँय का मृतक साज बजा भयावना, जिसमें शय काँपती थी और रोयें खड़े हो जाते थे । सरोज जयन्त के पीछे-पीछे गई थी । जाते ही वह गिर पड़ा था कमरे में और लोगों से अपना दावा किया था कि सरोज मेरी मँगेतर है एक उदार मोमबत्ती ले आया, दूसरे बीड़ी पीने वाले सज्जन ने दियासलाई निकालकर जला दी । उसकी देह तवा-सो जल रही थी । सरोज को चिन्ता हुई । लोगों ने कहा कि बेटी इसके घावों का खून तो पोंछ दे ।

सरोज ने अपनी धोती का आँचल गीला किया । उससे जयन्त का खून पोंछा । लोग एक-एक करके चले गये । वह अकेली रह गई । जयन्त बड़-बढ़ाया—"सरोज ! ओ सरोज !! तुम कहाँ हो ? तनिक पानी, मेरा गला सूख रहा है, पानी दो ! मैं गुण्डों को बहुत मारूँगा ! हाँ, तो आज ही मैं तुमसे ब्याह कर लूंगा !"

सरोज सुनती और बलर-बलर रोती। रात आगे बढ़ रही थी। सन्नाटा सनसनीखेज दृश्य उभाड़ने में व्यस्त था और जयन्त पड़ा था बुखार में बेसुध। जब रात ज्यादा हो गई, तो सरोज ने उठकर किवाड़ों की कुण्डी अन्दर से बन्द कर ली। उसने एक लोटे में पानी पास रख लिया, साथ ही एक कटोरी और चम्मच। जयन्त का सिर उठा उसने अपने दाहिने घुटने पर रखा। वह उस पर पंखा झलती और माँगने पर ही चम्मच से पानी मुँह में डाल देती।

सरोज सोचती कि जयन्त ही मेरा सर्वस्व है। बापू मेरा व्याह इससे कर दें मैं बहुत सुखी हो जाऊँगी। यह आदमी है, जवाँमर्द। मैं इसकी जनम-जनम की दासी हूँ। ईश्वर टेर सुन ले। भगवान पुकार सुन ले। जयन्त को मुझे दे दे; यही मेरा सुहाग है, यही मेरा सिन्दूर और यही मेरा जीवन-देवता।

इधर सरोज अपनी परिस्थिति में थी और उधर रज्जन चेत होने पर आ गया था घर। उसने बन्द ताला तोड़ डाला और अब बौखलाया-सा आँगन में घूम रहा था कि कहाँ मर गई चुड़ैल, अब तक नहीं आई। मुझे लगता है कि अब इस लड़की के पर निकल आये हैं, यह उड़ जायेगी, रहेगी नहीं।

रात की निस्तब्धता बढ़ती गई। रज्जन को नींद नहीं आई। उसके माथे की नसें तड़क रही थीं। उसके कलेजे में हो रहा था मीठा-मीठा दर्द। उसकी देह इठी जा रही थी। अँतड़ियाँ सुरा की माँग करतीं। वे गतिशील न हो, पेट को भारी बना रही थीं। आखिर उसने किवाड़ खोले। सोते हुए बार के मैनेजर को जाकर जगाया। वहाँ उसने जी भरकर पी और वहीं बेहोश होकर फैल गया।

यहाँ सारी रात घर के किवाड़ खुले रहे। सरोज जब आई, तो उसे कोई नहीं मिला।



सवेरे गिरता-पड़ता रज्जन घर आया। आते ही वह रुई की तरह धुनने लगा सरोज के कोमल शरीर को। वह कह रहा था—"बोल कहाँ गई थी तू ? कहाँ रही रातभर ? अब तू आवारा हो रही है। मुझे ऐसी कमाई नहीं चाहिए।"

"शरम खाओ बापू। अपनी सफेदी को देखो। मैं आधी रात तक घर में रही। फिर तुम्हें खोजने शराबखाने गई। वहाँ रास्ते में लौटते समय गुण्डों ने मुझे घेरा। तुम नशे में थे, तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम। जयन्त ने आकर मुझे बचाया। वह बुरी तरह घायल हुआ। बस मैं उसी के साथ रही, उसके घर चली गई। अपनी देखिये जो घर में ताला तोड़ा और उसके बाद भी नहीं रह सके। घर खुला पड़ा रहा। कोई लोटा-थाली उड़ा ले जाता, तो क्या हम लोग पत्तलों में खाते ?"

हिम्मत करके सरोज ने यह कहा। वह उठकर खड़ी हो गई। उसने पकड़ लिए बाप के दोनों हाथ। फिर तेज गले से उग्र होकर बोली—"जब अपनी चादर काली है तभी दूसरे की वैसी नजर आती है बापू। तुम मुझे जलील नहीं कर सकते। मुझ पर लाँछन नहीं लगा सकते। मैं रोज-रोज तुम्हारी मार नहीं खाऊँगी। तुम बाप हो, तुम्हारा कोई फर्ज नहीं। और मैं लड़की होकर तुम्हें कमाकर खिलाऊँ, तुम्हारी मार खाऊँ। तनिक शरम खाओ सारा जमाना थूकता है। क्या जिन्दगीभर मैं तुम्हारे ही घर में बनी रहूँगी। दुनियावालों को जवाब दो ; खबरदार, अब जो मुझसे कुछ कहा। मैंने तय कर लिया है कि मैं अब जयन्त से ब्याह कर लूँगी।"

"तू जयन्त से ब्याह करेगी। मैं तुझे जिन्दा ही मार डालूँगा। तू गुण्डे के चक्कर में आ गई है। उसी का रंग तुझ पर चढ़ रहा है। छोड़ मेरे हाथ, नालायक मैं अभी तेरी हड्डी-पसली एक किये देता हूँ।"

न जाने रज्जन में कहाँ से ताकत आ गई। उसने सरोज को ढकेल

दिया। सरोज पिटती गई ; रोती गई। तब पड़ोसी आये, किसी तरह झगड़ा समाप्त हुआ। लोगों ने अपने-अपने घर में जाकर कहा कि रज्जन की लड़की अब रहेगी नहीं। आज तो बाप-बेटी में गुत्थमगुत्था हो रही थी। अच्छा है, जयन्त का उससे ब्याह हो जाय। दुष्ट रज्जन तभी सँभलेगा।

दिन किसी तरह बीता ; रात चाँदी की आँखें लेकर आई जो एक नहीं करोड़ों थीं और नीले अम्बर के सागर में तैर रही थीं। सरोज दिनभर मुँह ढाँपे लेटी रही। वह रोती और सिसकती रही। लेकिन रज्जन पहुँच गया बार में। वहाँ उसे एक रईस युवक ने खूब गहरी छनाई। और फिर उसको उसी हालत में वहाँ छोड़ वह सरोज के पास आया। उसने कहा कि जल्दी चलो, तुम्हारे पिता का एक्सीडेण्ट हो गया है।

युवक की एमबेस्डर कार बाहर सड़क पर खड़ी थी। सरोज रोकर भागी, तो उसने कहा कि मोटर में बैठ जाओ। नुमायश के चौराहे पर तुम्हारे पिता एक लारी से टकरा गये हैं। सरोज भयभीत-सी कार में बैठ गई। नुमायश के चौराहे पर एक कोने में आकर गाड़ी रुकी। युवक ने सरोज का हाथ पकड़ा और बोला जल्दी आओ मेरे साथ। वह जो सामने अस्पताल है, वहीं भरती हुए हैं। देखो रोना मत, चिल्लाना मत ; नहीं तो लोग तुम्हें अन्दर नहीं घुसने देंगे।

जब अस्पताल पीछे छूट गया और कम्पनी बाग के अँधेरे में वह युवक सरोज को खींचता ले चला, तो वह चौंकी और ठहरकर बोली—"कहाँ, कहाँ लिए जा रहे हो मुझे ? छोड़ो मेरा हाथ। अस्पताल तो पीछे रहा, जैसे मैं कुछ जानती ही नहीं।"

यह कह सरोज बलात् अपना हाथ छुड़ाने लगी, तो युवक ने मसल दी उसकी कलाई। वह अपनी पकड़ को और भी अधिक मजबूत करता हुआ बोला—"कैसा अस्पताल ? किसका बाप ? कौन-सा एक्सीडेन्ट। सरोज छोड़ दो शराबी बाप को। तुम मेरी बन जाओ। मेरे यहाँ तमाम दौलत है। मेरा बाप डाक्टर है, मेरा चाचा जौहरी। तुम इतनी भोली। तुम्हें नहीं पता कि मैं तुम्हें यहाँ क्यों लाया।"

यह कहकर युवक ने जैसे ही सरोज को आलिंगन के पाश में बाँधना चाहा, उसने तड़ाक से खींचकर दूसरे हाथ से उसके मुँह पर एक थप्पड़ दिया और दाँत पीसकर बोली—"इसीलिए सुअर इसीलिए। ले और ले खूब गरम-गरम। मेरे चाँटे कोई भूलता नहीं। तेरी बदजात की ऐसी-तैसी, मुँह लाल करके ही छोड़ूँगी। ले पाजी, ले कमीने, ले···"

युवक सँभल नहीं पाया और सरोज दोनों हाथों से उसके गाल खुजाने लगी। वह जोर-जोर से गड़बड़ा रही थी। और उधर से आ रहा था जयन्त धीरे-धीरे टहलता हुआ कचहरी रोड पर। उसने जो सरोज की आवाज सुनी तो दौड़ा आया। फिर दोनों ने मिलकर उस युवक की इतनी मरम्मत की, इतनी कि बेचारा औंधेमुँह गिर पड़ा।

जब जयन्त सरोज को उसके घर लाया, तो रञ्जन वहाँ नहीं था। उसने कहा कि तुमसे कहा न कि अब तुम जवान हो गई हो सरोज। घर से मत निकला करो; लेकिन तुम मानती ही नहीं।

तब सरोज ने मुँह बना लिया। वह उलाहना देती हुई सी बोली—"मैं गई कहाँ थी, वह बेईमान मुझे धोखा देकर ले गया था। यह सब तुम्हारी कमजोरी है, तुम्हारी गलती; क्योंकि तुम आगे नहीं बढ़ते, सोचते हो मेरा बाप अभी नहीं आया गया करके। आज मैं उस बूढ़े की भी खबर लूँगी। वह है किस हवा में। जाओ जयन्त, जाओ, रात ज्यादा हो रही है, शराबी आता ही होगा।"

जयन्त चला गया; वह रास्तेभर सोचता गया और घर में भी सारी रात करवटें बदलता रहा कि सरोज के सिर पर आये दिन बलायें सवार रहती हैं। उसके बाप की कमजोरी से लोग उसे सताते हैं। क्या करूँ? मेरे पास तो छोटी-मोटी पूँजी नहीं और बिना पैसे के शादी-व्याह जैसे महा काम नहीं होते हैं। ईश्वर मुझे शक्ति दे, मुझमें सामर्थ्य भर दे। मैं अपनी नयी दुनिया बसा कर जो बाग लगाऊँ वह फूले-फले।

और सरोज रही जागती सारी रात। उसका बाप घर नहीं आया। वह सोचती रही कि अब मेरा घर ने निकलना ठीक नहीं है; लोग मेरे

दुश्मन हो रहे हैं। जवानी की जंजीर कहती हूँ कि पैरों में बेड़ियाँ डाल लो। गरीबी अलग खाल नोचती है। वह गिन-गिन कर चाबुक लगाती है दुख-दर्द को। आह! मेरा जैसा भाग्य किसी भी बदनसीब का न हो। मैं गुस्से में भरी बैठी थी कि आते ही बूढ़े की खबर लूँगी और अब सोचती हूँ यह कि उस बिगड़े हुए आदमी पर कोई भी असर नहीं होगा। वह रोज कसम खायेगा और रोज वही राह चलेगा। बिगड़े हुए लोग जिन्दगी में सुधरते नहीं, वे बिगड़ते ही चले जाते हैं।

सरोज ने कोरी आँखों सवेरा कर दिया। जब दिन अच्छी तरह चढ़ आया तो, लड़खड़ाता हुआ रज्जन घर आया। सरोज उससे नहीं बोली, उसने मुँह घुमा लिया। रज्जन भूखा था; उसने रसोई में जाकर देखा, दो बासी रोटियाँ रखी थीं। वह उन्हें रूखी ही खा गया और खींचकर पानी पिया। फिर वह सो गया चारपाई डाल। सरोज ने मकान में बाहर से ताला बन्द किया और वह जयन्त के घर की ओर चल दी।

१०



आज जयन्त दूध लाया था; उसने खीर बनाई। खीर पक रही थी फुदुर-फुदुर। उसमें उसने काश्मीरी केशर के कुछ लच्छे डाल दिए थे। छोटी इलायची भी डाली थी पीसकर। चिरौंजी के दाने, किशमिस। तभी तो खीर सुगन्धित और सोंधी-सोंधी बास दे रही थी। उसने बड़े चम्मच से उसे चलाया। उसके मन में एक कल्पना चित्र बना कि खीर पक रही है, सरोज उसे करछुल से चला रही है। उसकी गोरी कलाइयों में काली नागिन-सी झूलती चूड़ियाँ टुनटुना रही हैं। उसकी एक लट बार-बार कपोल पर आ जाती है। वह बड़ी ढीठ है। वह उसे मना करती, बार-बार हटा देती; लेकिन

शोख लट नहीं मानती, उसका चुम्बन ले लेती। उसकी आँखें नीची हैं। वह कनखियों से उसे देख लेती। वह खीर परोस रही है। अरे, कितनी सुन्दर है वह। वह शराबी बाप की बेटी नहीं; कुल वधू है कुल-भामिनी। उसने गोटा लगा लहँगा पहना है, जो पीतवर्ण है। उसकी लाल चूनर सलमे-सितारों से जड़ी है। तो रूपसी है वह! आह! सचमुच बड़ी सुन्दर है सरोज। उसे तो रानी बनना चाहिए था।

अभी जयन्त कल्पना-लोक में विचर ही रहा था कि तब तक उसकी माटी की गुड़िया सामने आ गई, और खूब आँसू बहा-बहाकर रोने लगी। वह रोते-रोते बोली—"एक काम करो जयन्त, मैं इसीलिए आई हूँ। तुम बदनाम हो, आवारा। तुममें हिम्मत नहीं, ताकत नहीं जो तुम मुझसे ब्याह करो। जहर मिलेगा कहीं? वह मुझे ला दो। इतना उपकार करो। मैं मर जाऊँ तुम्हारे ही सामने। मुझसे जिया नहीं जाता, रोना आता है। तुम्हें नहीं मालूम भले आदमी कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ। तुम पर बलि-बलि जाती हूँ। तुम मेरी माँग में सिन्दूर नहीं भर सकते, तो मुझे जहर दे दो और अपने हाथों जला आओ। आह जयन्त! मेरे जीवन!! मेरे प्राण!!! सरोज तुम्हारी है और जनम-जनम की दासी है।"

"कैसी बातें करती है माटी की गुड़िया। तू मर जाएगी और जयन्त जिन्दा रहेगा। अन्धेर महा अन्धेर। आ पगली, आज बहुत दिनों की इच्छा पूरी कर लूँ। देख खीर पक रही है। आ परोस और मुझे खिला। जयन्त मर जाएगा सरोज अगर तू जिन्दा न रही।"

जयन्त रोने लगा शिशु की भाँति अधीर होकर। तब सरोज ने अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे। दोनों खूब रोये जी भरकर। उभय-पक्ष लता की भाँति लिपटे रहे। सरोज बोली अपने प्रियतम के काले-घुँघराले बालों पर उँगलियाँ फेरती हुई—"तुम मुझे यहाँ से दूर ले चलो जयन्त। तुम आत्मा हो, मैं जिन्दगी। तुम जीवन हो, मैं ज्योति। भाग चलो जयन्त; यह बस्ती हम लोगों के काबिल नहीं।"

"अरे पगली यह प्यार बहुत महँगा पड़ेगा, दुनिया हँसेगी, तूने सोचा

नहीं। मैं............।"

अभी जयन्त इतना ही वोल पाया था कि माटी की गुड़िया बोल उठी—"हँसे दुनिया रोये जमाना, मुझे मतलब नहीं। मैंने खूब सोचा है और अब तुम इधर-से-उधर नहीं जा सकते। चलो अभी भाग चलो; सरोज तुम्हारे चरणों की दासी है।"

"लेकिन सरोज यह कायरता है, बुजदिली और चोरी है। तुम हिम्मत क्यों नहीं करती? घर में क्यों नहीं रहतीं? मैं सोचूँगा, विचारूँगा फिर बताऊँगा।"

जयन्त के मुँह से यह सुनकर सरोज तीर की भाँति वहाँ से चल दी। वह जाते-जाते बोली—"तो सोचो और खूब विचार करो जयन्त, मैं जाती हूँ। तुम्हें कसम है कि मेरी लाश को मत छूना। तुम कितने कायर हो कितने बुजदिल! तुम आदमी नहीं, उससे वहुत पीछे......।"

यह कहकर सरोज उठकर भागी, तो जयन्त उसके पीछे दौड़ा। उसने उस की चोटी पकड़ी और जोर से हिलाता हुआ बोला—"अच्छा, तू नाराज क्यों हो गई माटी की गुड़िया। चल, जो तू कहेगी, मैं वही करूँगा। चल, खीर परोस। तू मुझे खिलाये और मैं तुझे। चल, कहाँ चलेगी किस शहर? मैं तेरे लिए जान की बाजी लगा दूँगा।"

अब सरोज हँसकर जयन्त के साथ लौटी। उसने खीर परोसी। भावी-दम्पति ने एक-दूसरे को मीठे-मीठे कौर खिलाये। और आज वह पहला अवसर था जब जाते-जाते जयन्त ने सरोज को बाहों में भर लिया और उसका चुम्बन लिया।

सरोज जब घर आई, तो रज्जन खूब फूट-फूटकर रो रहा था। वह कह रहा था—"नालायक होता है वह बाप, जो औलाद के लिए कुछ कर नहीं सकता। जवान लड़की है, पैसे के लिए इधर-उधर भटक रही है। मुझे बता भगवान क्या शराब जिन्दगी से ज्यादा प्यारी है? सोमा तू कहती थी न कि मेरी सरोज को फ्राक ला दे। तू ही कहती थी कि वह माटी की गुड़िया है, इसमें जितने चाहे रंग भर दो। तू चली गई बेरहम और अपनी थाती

मुझे सौंप गई। आह ! लतें मेरी दुश्मन हो गईं; आदतें व्यवहार बन गईं। जहाँ भी जायगी मेरी बिटिया, लोग कहेंगे कि यह शराबी की बेटी है। होगा यही कि एक दिन मैं फाँसी लगाऊँगा। जब जवान बेटी घर में होती है, तो न भूख लगती है न प्यास। ऐसे ही सारी रात बीत जाती है। मैं बाप हूँ, लेकिन ऐसा बाप जो अपनी बेटी का ही दुश्मन है। मैंने उधार शराब पी है और सौदा किया है सरोज का ! मौत दे दे भगवान्। यह सब क्या हो रहा है।"

"कुछ भी नहीं बापू, कुछ भी नहीं। जिसके पास जागीर होती है वह तो हीरे-मोतियों से खेलता ही है। लड़की तुम्हारी दौलत है चाहे बार के मैनेजर को दो, चाहे पेशा करवाओ और चाहे कोठे पर बैठा दो। अरे नीच ! तू मरता क्यों नहीं, बेशरमी की जिन्दगी जी रहा है। जहाँ, माँ गई वहाँ तू भी जा। जिनके माँ-बाप नहीं होते क्या वे लोग जीते नहीं, जिन्दा नहीं रहते ? सरोज यह कहकर बाप के पास आकर बैठ गई।

अब रज्जन चुप हो गया; क्योंकि सरोज की सफेद पुतलियों में गुलाबी डोरे थे। उसकी भौंहें तन रही थीं कमान की तरह। वह जैसे जिन्दगी से होड़ लेने आई थी। वह क्रोध से हुमक रही थी और रज्जन धीरे-धीरे सुबक रहा था।

११



सरोज अपने में खोई थी, ऐसी कि वह तय नहीं कर पा रही थी कि उसे क्या करना चाहिए। बाप अयोग्य था; लेकिन फिर भी उसके मन में उसके प्रति दया थी। जयन्त उसका संरक्षक था; तभी उसके हृदय में उसके प्रति अपार श्रद्धा थी। जमाना दुश्मन था उसका। इसलिए उसे दुनिया से घृणा

थी। वह सोचती कि अगर जयन्त मुझे यहाँ से ले चले; वह मुझे अपनी चूड़ियाँ पहना दे; तो मैं लोगों की घूरती निगाहों से बच जाऊँगी। जब दिन-रात कलह मचती है, घर में हाय-हाय होती है, तब होता यही है कि या तो घर से कोई लाश निकलती है या घर बिगड़कर बरबाद हो जाता है। जब घर का बुजुर्ग अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारता है तो वह तो अपंग बनता ही है; उसका परिवार भी मिट्टी के मोल बिकने लगता है। लड़की कहीं जाती है, लड़का कहीं। बदनाम बाप मेरे लिए जिन्दगी का तपेदिक है। ऐसे ही तो लड़कियाँ और औरतें तंग आकर ऊबकर जान दे देती हैं। लेकिन मुझे जान बहुत प्यारी है, मुझे मरने से डर लगता है।

दिन आधे से ज्यादा बीत गया। सरोज का मन नहीं लगा; वह जयन्त के घर पहुँची। तब जयन्त बैठा फ्रायड की एक मनोवैज्ञानिक पुस्तक पढ़ रहा था जिसका विज्ञान जिज्ञासा और जागृति से सम्बन्धित था। उसमें इच्छा की परिभाषा थी, लालसा की विवेचना। और सब कुछ मिलाकर कर्त्तव्य को प्रमुख बतलाया गया था। नारी को जननी माना गया और पुरुष को जन। उसने किताब रख दी और दर्शनशास्त्र के पहलू पर उतर आया कि पुरुष और नारी, ये ही तो हैं दोनों शक्तियाँ। एक आदि है, एक अन्त। तो नारी जीवन संज्ञा होती है मनुष्य की? कितने-कितने उसके नाम हैं—अर्धांगिनी, जीवनसंगिनी, कुलवधू, गृह-स्वामिनी और गृहणी। हँसता-खेलता परिवार मनुष्य के जीवन का सच्चा स्वर्ग होता है। जहाँ शान्ति होती है, सन्तोष होता है, वहीं पर ऋद्धि और सिद्धि दोनों आकार गले में जयमालायें डालती हैं। और मेरी एक धारणा और है कि अमीर की अपेक्षा गरीब बहुत सुखी होता है। तो पकड़ लूँ सरोज का हाथ? अब मेरा भी मन दुनिया बसाने को चाहता है।

"आह सरोज! तुम जादूगरनी हो। आखिर तुमने अपना जादू मुझ पर डाल हीं दिया।"

जयन्त ने यह कहकर एक दीर्घोच्छ्वास ली ही थी कि सरोज वहाँ पहुँच गई। जाते ही वह उसके कन्धे से लग, बैठ, ढीठ स्वर में कहने लगी—"यह

सरोज कौन है जिसकी पूजा हो रही थी ? तनिक मैं भी तो सुनूं।"

अब जयन्त को भी हँसी आ गई। उसने नहले पर दहला जमाया। और बोला—"अरे न सुनो, वह एक आँख की कानी है, एक पैर की लँगड़ी। और काली है आबनुस जैसी। उसका बापू पुजारी है। दिन-रात पूजा किया करता है।"

सरोज झेंप गई; वह तनिक रूठ, मुँह पाँच कोने का बना आँखों में झूठे आँसू लाकर कहने लगी—"यह तुम मेरी बखिया उधेल रहे हो तो। मुझे उल्लू बना रहे हो। अब नहीं आऊँगी कभी। अभी चली जाती हूँ।"

"हाँ-हाँ, जाने वाली गई और लौटकर फिर आ भी गई। अरे पगली, जो जीवन में एक बार हृदय में बस जाता है, क्या वह दूर होता है—कभी नहीं"

यह कहकर जयन्त ने सरोज की एक उलझी लट ठीक की। फिर उसके भूरे बालों को कोमल स्पर्श कर प्यार से सराबोर अपनत्वपूर्ण शब्दों में बोला —'अरे पगली, तूने तो आँखें मींच लीं। तू मुस्करा क्यों रही है ? जयन्त तेरा है और जिन्दगी भर तेरा ही रहेगा।"

'सच ! तो रखो मेरे कलेजे पर हाथ और यह आशीर्वाद दो कि तुम्हारे साथ भाँवरें घूमूँ। तुम्हारी सेवा करते-करते बूढ़ी हो जाऊँ और तुम्हारे सामने ही मरूँ, हाथी की सवारी पर जाऊ। तुम्हीं मेरी चिता में आग लगाओ। मैं तुम्हारी माटी की गुड़िया हूँ न। गुड़िया तुम्हारे सामने खेले, तुम्हारे ही सामने टूटे और फूटे। मेरे जीवन ! मेरे प्राण !! मेरी दुनिया तुम्हीं हो।"

यह कहते-कहते सरोज ने जयन्त के गले में अपनी झूलती हुई बाँहें डाल दीं और वह रोने लगी सुबक-सुबक कर, तो जयन्त ने अपनी भावी पत्नी को वक्ष से लगा लिया। उसके आसू पोंछे। वह बोला—"रोती क्यों हो सरोज, तुम्हारा बाप नहीं मानेगा, न माने। लोग हम दोनों को बदनाम करें, इसकी चिन्ता नहीं। बस चल दो सरोज मेरे साथ। एक यही रास्ता है। हम लोग इस शहर को ही छोड़ दें। देखो, तीसरा पहर हो रहा है। तुम घर जाओ। साँझ को जब शराबी घर से चला जाय, तो मुझे स्टेशन पर मिलो। लखनऊ-देहली ऐक्सप्रेस दिल्ली जाने को आठ बजे छूटती है। हिम्मत बाँध,

माटी की गुड़िया। अगर नसीब जगा, तो मैं तुम्हें सोने की बना दूँगा। मैं इमारत हूँ तू छाया। मैं जिन्दगी हूँ, तू काया। जा पगली, जा भोली। तू बहुत सीधी है तभी दुनिया ठग लेती है।"

सरोज घर आ गई। बाप सो रहा था। उसने हँस-हँसकर शृंगार किया। विरासत में मिली माँ की गुलाबी मलमल की धोती उसने खूब सँवारकर पहनी। दो पैसे का नारियल का तेल लाई थी। उसने टूटी कंघी से बाल सँवारे। पुरानी चूड़ियाँ रखी थीं, उसने हाथों में चार-चार डाल लीं। साबुन नहीं था बेचारी के घर में। उसने बेसन से हाथ-पैर धोये। आज वह इतनी मगन थी जितनी बसन्त बहार में कोयल। वह धीरे-धीरे गुनगुना रही थी—
"राजा की आयेगी बारात, रंगीली होगी रात, मगन मैं नाचूँगी।"

आकाश की नीली छतरी सलमे-सितारों से टँक गई। आकाश-गंगा नभ के बीच ऐसी निकली जैसे कामिनी के हाथ में हीरे की पहुँची। हवा ससुराल से विदा होकर आई, तभी घूँघट काढ़कर चली। उसके पैरों में मेंहदी थी। वह मराल गति से चल रही थी। रज्जन नहीं उठा, नहीं उठा। आखिर सरोज व्याकुल हो गई। सात बजे; आठ की भी सूचना पड़ोसी की घड़ी ने दी। सरोज अपने में बुझ गई उस बाती की तरह जो आँधी का ग्रास बन गई थी।

आखिर शराबी नहीं उठा; बारह बज रहा था बैण्ड। वह मस्त ध्वनि आलाप रहा था—"ले के डोलिया कहार, पिया आये हैं दुआर। जारी, जारी, दुलहिनियाँ जा।"

सरोज चौंकी; वही फटी-फटी आँखों से घर और बाहर देखने लगी। बार का मैनेजर दूल्हा बना था। उसके सिर पर फूलों का सेहरा पड़ा था। बारात गमगमाती आ रही थी उसी के सामने। वह बुत बन गई; दूल्हा लग्नमण्डप में आ गया और रज्जन अब भी सो रहा था।

अधेड़ मैनेजर बोला—"तू रो क्यों रही है मेरी जिन्दगी की कीमत। तुझ पर सोना-चाँदी निछावर है। तू नाच, ऐसी नाच कि सारा जहाँ तेरी दाद दे।"

लेकिन सरोज़ बुझ गई थी दिये की तरह। उसे गश आ गया। वह बेहोश हो गई। जब मैनेजर उसे अपने हाथों पर टाँगकर ले चला, तो जयन्त आया, उसने कहा कि यह आपकी गुस्ताखी है।

किसी तरह वह रात व्यतीत हुई। जयन्त ने बार के मैनेजर की खूब मरम्मत की। वह खड़ा रहा था हरदोई स्टेशन के प्लेटफार्म पर। उसने सरोज की प्रतीक्षा की। लखनऊ-देहली एक्सप्रेस आकर छूट गई। तब जयन्त घबड़ाया; वह सरोज के घर आया।

रज्जन अब भी नशे में बेसुध था। बारात आई, लौट गई। जयन्त छोड़ गया सरोज को उसके घर में। उसने कहा—"सरोज कल का सबेरा हमारा-तुम्हारा जिन्दगी का मिलन होगा। अब भी सोच लो, मैं बुरा आदमी हूँ। तुम्हें इससे प्यार क्यों?"

"प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है जयन्त। मैं तुम्हारी दासी हूँ जनम-जनम की। मुझे शरण दो। मेरी माँ नहीं है, बाप शराबी है। एक आसरा तुम्हारा ही है। जयन्त मुझे ले चलो, मैं अब इस घर में नहीं रह सकती।"

जयन्त जैसे पहले से ही सतर्क था। वह बोला—"सरोज जिन्दगी आदमी से नहीं पूछती कि मेरी क्या कीमत है। वह दासी बन जाती है, जबकि जिन्दगी स्वयं करवट लेती है। तुम मेरी हो, जिन्दगी-भर मेरी ही रहोगी। छोड़ो, रात ज्यादा हो रही है। मैं जा रहा हूँ। आज का मौका हम लोग चूके, कल चलकर ही रहेंगे।"

इस तरह जयन्त चला गया। सरोज सोचती रही, विचारती रही। वह मन-ही-मन मगन होती रही। आखिर गुनगुना उठी वह—"राजा की आयेगी बारात, रंगीली होगी रात, मगन मैं नाचूँगी।"

जब सरोज सो गई, तो उसने एक सुन्दर सपना देखा कि वह भाँवरें घूम रही है जयन्त के साथ। शहनाई बज रही है। मंगल-गीत गाये जा रहे हैं और वह दुलहिन बनी मुस्करा रही है, उस कली की तरह जो मुद्दत में माँग में सिन्दूर भरती है, और खूब विहंसती है। वह सोचने लगी कि जयन्त

देवता है, मेरा जीवन-दर्शक । वही तो राही है मेरी मंजिल का । वही तो मुझे लोक से परलोक ले जायेगा, जिसे दुनिया स्वर्ग कहती है । स्वर्ग क्या है—मन का संतोष । संसार क्या है—प्राणी-मात्र का दुख, कर्म क्या है—सबसे प्रधान । दुनिया क्या है—एक मायाजाल । आदमी कीड़ा-मकोड़ा है । वह जीता है, मरता है और फिर जन्म लेता है । क्या मेरी ही तरह हर औरत खूबसूरत लगती है जवानी में । जवानी कुछ नहीं, जिन्दगी का एक छोटा-सा नशा है । और जब नशा उतर जाता है, तो पिछली बातें याद आती हैं कि हम क्या थे, क्या हो गये और जिन्दगी क्या कह रही है । नशा नसीब का कोढ़ होता है, जो आदमी की जिन्दगी के साथ जुड़ जाता है । नसीब होता है पराया पूत । वह कभी जग जाता है, कभी सो जाता है और जब चौंकता है, तो सोने-चाँदी का मेह बरसने लगता है इन्सान के घर में । दुनिया कुछ नहीं; उसके नाम में केवल तीन अक्षर हैं, तभी वह शुभ नहीं । दुनिया वही है जो जिन्दगी आराम से हँसे, आराम से खाये और आराम से सोये ।

इस तरह सरोज अपने में व्यस्त रही । रजनी आई; वह पहले से ही थी । उसने काली साड़ी पर काला शाल ओढ़ लिया । वह सरोज के कानों में बोली कि देखो यह मौत का मातम है, हँसो नहीं, आँसू बहाओ । अरे-अरे, पगली, दुनिया किसीकी नहीं । वह बड़ी बेरहम है । तू साज कर, शृंगार कर, तू माँग में सिन्दूर भर । तू विधवा हो गई है न । मैं तेरी चूड़ियाँ तोड़ूँगी, तेरा सिन्दूर धोऊँगी । तू खोटा नसीब लेकर आई है । तुझे सुख कहाँ से मिलेगा ।

१२



जयन्त था जिन्दगी का वह खिलौना जो दुनिया के लिए बेमोल था, माटी। जो दुनिया की हकीकत था और जिन्दगी की गाथा। जो शरीफ था आवारा और बदचलन भी। जो युवक था पूरे बाईस साल का। जिसकी छोटी-सी शुरमई मूँछें ऐसी लगतीं जैसे बेले के सफेद फूल पर बैठा हो गुन-गुनाता भौंरा। जिसकी भौंहें ऐसी थीं जैसे धरती और आकाश। जिसकी आँखें थीं जैसे श्वेत कमल। पुतलियाँ बड़ी-बड़ी। जिसके गाल ऐसे थे सुहागिन की पायजेब, जिसके कण्ठ में मिसरी थी और जिसकी जबान में मधुरिया। जिसका उन्नत ललाट था, भाग्यपोदय का प्रतीक। वह चमकता शीशे की तरह। ऐसा था जयन्त। दुनिया उसे बुरा कहती थी, लेकिन दुनिया खुद बुरी थी।

जयन्त ने कभी किसी की चोरी नहीं की, कभी किसी को सताया नहीं। माँगकर नहीं खाया; चाहे भूखा रह गया। उसने दूसरे को खिलाकर स्वयं तृप्ति की डकार ली। वह परोपकार की वेदी पर बलि होता चला आया, चला आया। उसने दुनिया से नाता नहीं जोड़ा और न दुनिया के लोगों से। वह अपने विश्वास पर चलता आया कि जो कुछ है परमार्थ। जो लोकसेवा नहीं करते, जो क्रोध और नफरत करते हैं, उन्हें ईश्वर का लोक नहीं मिलता जिसे बैकुण्ठ कहा जाता है।

जयन्त ने अब तक व्यभिचार की परिभाषा भी नहीं सीखी थी। वह अब भी अनभिज्ञ था कि औरत क्यों झुकती है और आदमी उसे प्यार क्यों करता है। लेकिन आजकल उसकी जवानी में एक उमंग आ गई थी, एक छोटी-सी तरंग। वह सोचता कि जब आदमी के गले में हँसली सदृश औरत लटक जाती है, तो वह कहता है कि कलेजा तुम हो, प्राण तुम हो, जिन्दगी तुम हो और उसकी रोशनी भी। रोशनी राह दिखलाती है, गुमराह को घर पहुँचाती है। आह जिन्दगी! तू कितनी प्यारी है? हर इन्सान मरने से डरता है।

एक बात और थी कि जयन्त नास्तिक नहीं, आस्तिक था। उसकी धर्म

पर आस्था थी। वह धर्मपरायण ही नहीं, बल्कि धर्म-सेवा-रत था। उसकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ उसे खींच ले जातीं शहर से दूर। वह प्रहलादघाट पर पौ-शाला खोलता, लोगों को शरबत पिलाता। शीतल जल से उनकी तृष्णा शान्त करता। वह सरबन देवी के मन्दिर में जाकर बैठता। कन्याओं को भोजन कराता, भिक्षुओं को दान करता, फिर आता वह हरहोई वाले बाबा के मंदिर में। साधु-संन्यासियों को सब दे जाता, जो कुछ उसकी जेब में होता। वह उपकारी ही नहीं, मनन-शील था। उसका विवेक जागृत था राका की चाँदनी की तरह। यह स्वयं पथ निर्दिष्ट था अपने विचारों के बल पर। वह आदमी नहीं, हीरा था। लेकिन दुनिया उसकी कदर नहीं करती थी।

एक बात और थी। जयन्त खुशामदी नहीं था, दूसरे पर निर्भर रहने वाला भी नहीं। वह आदमी था जीवट का, अपने कमाल का। तभी दुनिया उस पर ताज्जुब करती। और ताज्जुब ही नहीं, उस पर सन्देह करती कि जयन्त समाज की दाल के अन्दर वह काला दाना है जिससे दाल पकती ही नहीं, कच्ची ही रह जाती है। और जयन्त कहता मन-ही-मन कि दुनिया वह दोजख है, जो जिन्दगी में ही आदमी को मजबूर कर देती है नर्क में डुबकियाँ लेने के लिए। वह सोचता कि इन्सान वह परिन्दा है, जो जहाज के पंछी की भाँति जहाज से उड़कर फिर जहाज पर ही आता है। दुनिया वह दौलत है, जिसमें इन्सानियत है और सच्चाई है। और यही धरती उसी के लिए झूठी है, जो हृदय का कमजोर है। दुनिया नर्क नहीं, लोगो सोचो, यह एक जन्नत है।

ऐसी थी जिन्दगी जयंत की। ऐसे थे उसके विचार और कार्यक्रलाप। वह दुनिया में रहकर भी दुनिया का नहीं था। वह कभी-कभी सोचता कि जो लोग आवारा होते हैं अकेले और बदनसीब, मैं भी तो उसी श्रेणी में हूँ। दुनिया के पारिवारिक महल में उनके लिए जगह नहीं। वे गोला-गोली होते हैं, राजस्थानी मर्यादा की तरह। वे उपकार ही करते हैं, लेकिन बदले में उन्हें अप्रतिष्ठा मिलती है। वे दुनिया को अपनी आँखों से देखते हैं, लेकिन दुनिया परायी आँखों से। जब बाबर आया, तो इस धरती ने कहा कि मुगल-सल्तनत

जिन्दाबाद। और जब औरंगजेब के सामने ही मुगलवंश का दिया बुझा तो इसी माटी की काया ने कहा नाश, महानाश। युग परिवर्तनशील होता है, इसलिए आदमी दोषी नहीं। युग जब करवट लेता है, तभी काल होता है—महाकाल। तभी प्रलय की सृष्टि होती है और खण्ड-प्रलय का जन्म। तभी शान्ति की शहनाई बजती है और तभी युद्ध के नक्कारे।

जयन्त सोचता कि मेरा क्या अस्तित्व है दुनिया में। लोग मुझे अच्छी निगाह से नहीं देखते। उनके लिए मैं बहिष्कृत हूँ, निर्वासित। वाह री आडम्बर की दुनिया, तू कितनी रंग-रंगीली है! तू कितनी झूठी है, कितनी निर्दयी! तू दुनिया नहीं, आदमी की एक कसौटी है। खरा भी तेरी कसौटी पर कसता है, मुलम्मा मात खाता है और दागी सोना कहता है कि मेरा भेद न खोलो। मैं ही तो छल-प्रपंच हूँ, मैं ही मनुष्य को नचाता हूँ। सोचो तो अगर संसार में झूठ न होता, तो सच्चाई बड़े-बड़े आँसुओं रोती। अधर्म न होता, तो धर्म कभी जिन्दा नहीं रहता। पाप न होता, तो प्रलय का जन्म नहीं होता। ऐसे ही अगर दुनिया में दौलत न होती, तो आदमी आदमी का दुश्मन न होता। संघर्ष नहीं होता। दुनिया भी एक पहेली है। हर आदमी के बूझने के बस की नहीं।

जयन्त अपने प्रति बहुत-ही उदासीन था। उसकी उमगें जैसे मर गई थीं। उसकी आकाँक्षायें सो गई थीं। उसमें जो कुछ था एकाकीपन। वह सोचता कि जो लोग सौभाग्यशाली होते हैं, समाज उनके लिए स्वयं अपने हाथों मन्दिर बनाता है। उस मन्दिर में प्रतिष्ठा की पूजा होती है जिसे मनुष्य का यश कहा जाता है। और यश संसार में मिलता है उन लोगों को, जो रंगे सियार होते हैं, छिपे रुस्तम निकलते हैं, आज का मनुष्य गहराई में नहीं उतरता यही उसकी दुर्बलता है। यह बीसवीं सदी नहीं, विज्ञान का युग नहीं, यह युग धोखा देगा। ऐसा लगता है कि सारा विश्व प्रलय के महाद्वार पर खड़ा है। यहाँ अब सरोज जैसी युवतियाँ मिलेंगी धर्म-संकट में पड़ी। रज्जन जैसे बाप मिलेंगे जो परिस्थितियों से जूझ रहे हैं। मेरे जैसे बदनाम मिलेंगे। आखिर नेकनाम है कौन?

जयन्त जब अपने को कसौटी पर कसता, तो दुनिया को बहुत ही बुरा पाता। वह दुनिया पर यकीन नहीं करता। वह कहता कि जो कुछ है आत्म-विश्वास, आत्मबल। आत्मनिर्भरता ही अस्तित्व है और आत्मसंयम ही इन्सानियत। जो अपने प्रति जगरूक नहीं, दुनिया उसी को छल लेती है, ठग लेती है। अरे इसी दुनिया के तो दो बड़े-बड़े दरवाजे हैं। एक पर लिखा है नेकी, एक पर बदी। इस कलियुग में बदी का दरवाजा हमेशा गुलजार रहता है और नेकी के दरवाजे पर आदमी पूछ-पूछ कर जाता है। उससे कहा जाता है कि नेक बनने के लिए सफेद चोला पहनो जिसके नीचे काली चादर छिपी हो। बदी खूब करो, तभी नेकी का दरवाजा खुलेगा, बदनाम मत हो। वकील घासीराम जी भरकर पीते हैं, सारी रात जुआ खेलते हैं और इस अधेड़ावस्था में भी करते हैं ऐयासी। लेकिन वे गरामान्य हैं, शहर के प्रतिष्ठित नागरिक। सरघौवन साहब परायी बहू-बेटी नहीं छोड़ते, वे आदर्श के प्रतीक हैं। चौधरी हीरामल के यहाँ प्राइवेट हाउस खुला है। युवतियाँ आती हैं, युवक जाते हैं। क्या यह लोग पापी नहीं! यह पाप नहीं! चिराग तले अँधेरा, अफसोस! महा अफ़सोस!! सरोज मेरी दुनिया है और मैं दुनिया में रौनक लाना चाहता हूँ। आने दो माटी की दुनिया को। उससे कहूँगा कि तू मेरे साथ भाग चल, इसी में भलाई है।

इस तरह सोचता रहा जयन्त। उसे दुनिया दुश्मन नजर आई और इन्सान शैतान। सरोज की उपमा उसने मन-ही-मन काल कोठरी से दी और सहानुभूति-भरे हाथों को समझा बिच्छू का डंक। प्रियजन उसे ऐसे लगे जैसे काले विषधर। पानी को उसने कहा तेजाब और भोजन को विष। वह कुढ़ता रहा, दुनिया के प्रति सोचता रहा। आखिर उसने संकल्प किया कि मैं एक सच्चा इन्सान बनूँगा।

एक दिन तरंग आ गई; साँझ समय रज्जन पहुँच गया बार में। वहाँ आरकेस्ट्रा बज रहा था और एक एँग्लो इन्डियन बाला मंच पर नाच रही थी। वह गा रही थी—"आना मेरी जान, मेरी जान सडे की संडे।"

सुरा के दौर पर दौर चल रहे थे। कौड़ियाँ खनक रही थीं। ताश-पत्ते सरकते और नोटों के बंडल खुल खुलकर हँसते। जुए के नए खेल हो रहे थे। रज्जन पहुँचा; वह एक कुर्सी पर जाकर बैठा। उसने कहा—"बाय, हाफ कोर्स ब्रांडी। जल्दी कर, मेरा दम निकल रहा है।"

"तुम्हारा दम निकले—तुम दुनिया से चले जाओ। यहाँ एक कतरा भी नहीं मिलेगा शराब का! तुम झूठे हो, बेईमान आदमी, घर पर बुलाकर बे-इज्जती करता है। यह कहाँ की इन्सानियत है। चले जाओ बार के बाहर, शराफत इसी में है।"

यह कहता हुआ बार का मैनेजर रज्जन के पास आ गया। वह रज्जन को हाथ पकड़ कर उठाने लगा। उसने कहा—"जाइये हुजूर, गुस्ताखी माफ कीजिये। मैंने खूब सेवा की आपकी; लेकिन आप शराबी ही निकले इसके अलावा और कुछ नहीं।"

"अरे मैनेजर, अरे मालिक, मैंने अपनी खून-पसीने की कमाई तेरे शराब-खाने में सौंप दी और तू बेवफा हो गया ऐसा जैसे कोठे की वेश्या। वह किसी की नहीं होती, हर आदमी उसका यार होता है। रहम कर, दो पैग पिला दे, फिर कभी नहीं आऊँगा।"

मैनेजर क्रोध से भड़क उठा। उसकी आँखें लाल-पीली हुईं। वह रज्जन को कुर्सी से ढकेलता हुआ बोला—"सरकार का शुक्र मनाओ, सड़क के दोनों तरफ नालियाँ हैं। दोनों में गहरा पानी भरा है, खूब जी भरकर पियो। यहाँ मत आया करो, वर्ना मैं तुम्हें पुलिस में दे दूँगा, बन्द करवा दूँगा। तुम क्यों व्याहोगे अपनी सरोज। वह पेशा करेगी, तुम खाओगे। तुम……"

अभी मैनेजर इतना ही कह पाया था कि रज्जन उठकर खड़ा हो गया। उसने खींच कर मैनेजर के गाल पर थप्पड़ दिया और हाँफता हुआ बोला—"जो लोग अच्छे नहीं होते, वे दूसरों को भी बुरी निगाह से देखते हैं। सरोज पेशा करेगी और मैं खाऊँगा। थू है तेरे मुँह पर नालायक। खबरदार, अब जो ऐसी बात कही।"

मैनेजर तिलमिला गया। उसने ताव में आकर कहा—"अरे मैं क्या कहूँगा, कहेगा जर्रा-जर्रा। भला शराबी बाप की बेटी भी इज्जत पा सकती है, कुलबधू बन सकती है। असम्भव, गैर असम्भव, बिल्कुल असम्भव। कहाँ हो गोपी? अरे ओ भइया शंकर, जल्दी दौड़ो और इस शराबी को बार के बाहर निकालो। सीधे न जाय तो धक्के मारकर निकाल दो। यह कुत्ता यहाँ रोज-रोज आकर दुम हिलाता है।"

अब रज्जन पर मार पड़ी। वह धक्के देकर बार के बाहर निकाल दिया गया। तब झल्लाया हुआ शराबी आया घर। आते ही उसने सरोज को आड़े हाथों लिया। वह बाल पकड़, उसकी पीठ पर घूँसे और लातें जमा खिसिया-खिसिया कहने लगा—"बोल, तू बार के मैनेजर से ब्याह नहीं करेगी? मेरी शराब के पैसे कहाँ से आयेंगे। उतार दे अपने सिर से जयन्त का नशा। जवानी का नशा थोड़ी ही देर रहता है पगली।"

"अब मैं तेरी मार नहीं खाऊँगी शराबी। तू है किस हवा में। यह कहाँ का कानून है कि माँ-बाप की गलतियों की सजा औलाद भुगते। मैं नहीं रहूँगी तेरे घर। मेरे लिए तमाम दुनिया पड़ी है।" यह कह सरोज क्रुद्धा सर्पिणी की भाँति उठकर खड़ी हो गई। उसने बाप की कलाइयाँ पकड़ीं और इस तरह मसल दी जैसे गीले कपड़े से पानी निचोड़ा जाता है।

रज्जन तैश में भर गया। वह बोला—"तो निकल जा, चली जा यहाँ से, न तू मेरी बेटी न मैं तेरा बाप। जमाने की हवा लगती है, तो आदमी इसी तरह बदल जाता है। तेरा कुसूर नहीं लड़की। गुनाहगार तो हूँ मैं, जो तू मेरी बेटी कहलाती है। चल निकल वर्ना, मैं तेरी हत्या कर दूँगा। तू······"

और यह कहते-कहते रज्जन उठा लाया रसोई से एक चैला। उसने

मार-मार कर सरोज को घर से बाहर निकाल दिया ।

रज्जन ने अन्दर से कुंडी बन्द कर ली थी । सरोज रोती हुई बाहर जा रही थी । रास्ते में लोग पूँछते कि क्यों रो रही हो, तो वह कुछ जवाब नहीं देती । गुण्डे कहते कि ये इतने कीमती आँसू हैं फिजूल में क्यों वहा रही हो । मनचले कहते कि किसी एक की होकर न रह । देख दुनिया में सुख-ही-सुख है । सरोज किसी की नहीं सुनती, किसी को नहीं देखती । वह चुपचाप चली जा रही थी । किन्तु ऐसा हो नहीं पाया । दो-तीन गुण्डों ने उसे पकड़ लिया । वे बोले—"चल, हम तुम्हें वह दुनिया दिखलायेंगे जहाँ रात में रोशनी नजर आती है और दिन में सूरज । अब तू जा नहीं सकती कहीं । तू मेरी अमानत है । चल, तुझे चलना पड़ेगा । राजी से जायेगी तो, नाराजी से तो ।"

इस तरह किसी ने सरोज की कलाई पकड़ी, किसी ने उसे धक्का दिया और किसी ने कहे कटु वचन । वह सुन नहीं पाई, सह नहीं पाई, तो जोर-जोर से रोने लगी ।

संयोग की बात, जयंत मंडी से घर आ रहा था । सदर बाजार के पास उसने यह दृश्य देखा, तो उसने फौरन ही सिर पर बाँध लिया कफन । गुण्डों के साथ खूब उसका मल्लयुद्ध हुआ । उसने मार भी खाई, मारा भी ।

किसी तरह गुण्डों से पीछा छूटा; सरोज मुक्त हुई । उसने बतलाया कि आज बापू ने घर से निकाल दिया है । अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी । मुझे अपने चरणों में जगह दो या मिट जाने दो । मैं दुख सह सकती हूँ, कष्ट झेल सकती हूँ; लेकिन धर्म के लिए; अधर्म के लिए नहीं, पाप के लिए नहीं ।

और जयन्त खामोश था । वह सोच रहा था कि सरोज को क्या जवाब दे । जवाब देने और समझाने से ही मनुष्य-मात्र का कल्याण नहीं हो जाता । मुझे उसके साथ चलना है कंधे से कंधा मिलाकर । बिना स्त्री के सहयोग के मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता । उसने धीरे-से सरोज का हाथ पकड़ा और दुखी स्वर में बोला—"आओ सरोज, मेरे साथ चलो । प्रह्लादघाट चलें, बड़ी शान्ति की जगह है । वहीं चलकर बातें करेंगे और तय करेंगे कि हम लोगों

को क्या करना है।"

सरोज जयन्त के साथ-साथ चल दी। सदर बाजार से सीधे वे लोग सरवन देवी रोड पर आये। हिरण्यकश्यपु के किले के पास से गुजरे। रास्ते भर दोनों मौन रहे। दोनों ही कुछ-न-कुछ सोचते रहे और जब दिखलाई दिया प्रहलादघाट का वह सुरम्य तालाब तो सरोज बोली—"आ गया प्रहलाद-घाट। मैं बहुत थक गई हूँ। चलकर अभी दो चुल्लू पानी पियूँगी।"

जयन्त मुस्करा दिया। उसने एक संतोष की साँस ली। तभी बज उठा घंटा मन्दिर में टन-टन। दोनों का ध्यान उसी ओर केन्द्रित हो गया।

१४



जेठ की चिलकती धूप अपना तांडव नृत्य कर रही थी। चक्रवात कह रहे थे कि मैं लू हूँ और झकोरे दम भरते कि आँधी मेरी सगी नानी है। दोपहर का सन्नाटा कहता कि यह रात की साँय-साँय नहीं, यही दिन है, यही जिन्दगी है आदमी की। जिन्दगी रोशनी चाहती है, अंधेरा नहीं, और अब अंधेरा हो जाता है, तो दशों दिशायें एक हो जाती हैं। भूख लगी थी जयन्त को भी, भूखी थी उसकी प्रेयसी भी। दोनों ने कुएँ से भरकर जल पिया, प्यास बुझ गई, लेकिन वे भूखे के भूखे ही रहे। तभी उनमें प्रवृत्ति जागी। वे उठकर भागे एक खरबूजे के खेत पर जाकर भर पेट खाये। फिर दोनों के दोनों लौट आये प्रहलादघाट के मन्दिर में। वहाँ इस तरह परस्पर बातें हुई। जयन्त बोला —"तू आज ही रात को मेरे साथ चल दे मेरी माटी की गुड़िया। मैं जिन्दगी को वसन्त बनाऊंगा और साँसों को बहार। जहाँ साँसों के सरगम नहीं बोलेंगे, वहाँ कोयल कुहु-कुहु पुकार करेगी। तू रानी होगी, मैं राजा। तू देवी

होगी, मैं देवता। तू जिन्दगी होगी और मैं मौत। मेरे लिये सरोज ही सब कुछ है—मेरी जिन्दगी, मेरी दुनिया, मेरी कीमत।"

"लेकिन जयन्त तुम लड़की को भगाकर ले जाओगे, लोग क्या कहेंगे। सीना-जोरी तो होती है वह, जहाँ ख्वाब जिन्दगी के सच्चे गहने बन जाते हैं। बस भाग चलो सरोज, एक यही रास्ता है। तुम जाओ और उस शराबी बाप से मत बोलो। जो अधिक मौन रहते हैं विजय उन्हीं की होती है। मैं तो तैयार बैठा हूँ कमर कसे, कब मेरी माटी की गुड़िया यहाँ से चले और मैं उसे गले का हार बनाऊँ। पगली, आँखें खोल, मुझको देख। दुनिया तेरी ही नहीं, हर बसर की है। दुःख-सुख जिन्दगी के मोड़ नहीं, दोनों में व्यस्तता है, दोनों ही कार्यरत हैं। जिन्दगी धरोहर नहीं, बल्कि इन्सान की मदभरी प्याली है। आह जिन्दगी, आह जवानी और ओह छोटी बहन शराब! मुझे यह तो बतलाओ कि क्या केवल पूँजीपति ही भाग्य से ठेका करते हैं? क्या औद्योगिक लोग भी सरकार से सहायता की प्रार्थना करते हैं?"

सरोज ने अब निगाह ऊपर उठाई। वह धीरे-धीरे बोली—"तुम चले जाओ यहाँ से। सरोज ने एक को बसाया है अपने मन में और उसी की पूजा करेगी।"

"तो अच्छा है, मैं चला जाऊँ, तुम्हें संतोष है। लेकिन······"

"लेकिन क्या? कुछ नहीं। तुम बतलाते बहुत हो, करते कुछ भी नहीं। जिसका प्यार इस तरह दल-दल में फँसा हो, वह रंगरेलियाँ ले, मौज मनाये। पीछे की छोड़ो और आज की सोचो कि हम लोगों को क्या करना है?"

जयन्त मुस्कराया, उसने धीरे-से कहा—"तुम लोग पुरानी पद्धति के शिकार हो, तभी तरक्की नहीं कर पाये। सरोज तुम सौ साल पहले की हो तभी प्यार का मूल्य नहीं जानतीं। तुम जयन्त को बुरा समझती हो, मुँह पर उपड़-चुपड़ करती हो। यह सब चलने का नहीं। आओ, मुझे मिलो हरदोई स्टेशन के एक नम्बर प्लेटफार्म पर। वहाँ से ट्रेन राजधानी जाती है जिसका नाम देहली है। हम लोग वहीं चलें। वहाँ जिन्दगी करवट ही नहीं लेती बल्कि कदम-कदम पर मोड़ भरती है।"

सरोज कुछ नहीं बोली। वह धीरे-धीरे उटकर वहाँ से चल दी। वह रास्तेभर सोचती रही कि जयन्त से जिन्दगी का गठबन्धन कर लूँ, अच्छा तो रहेगा। यही मौका है और मौका बार-बार नहीं मिलता, आदमी पछताकर रह जाता है।

जयन्त ने कहा—"सुन सरोज, हरदोई कोई बड़ा शहर नहीं। छोटे की भी संख्या में नहीं आता लेकिन यहाँ का जोश नया है। आप भी लिखवा दें अपनी मातृभूमि का नाम जिसे मल्लावाँ कहते हैं। जो छोटी काशी है, जहाँ मन्दिर-ही-मन्दिर हैं। वाह रे मनुष्य के भाग्यचक्र ! तू बाहर नहीं निकलता, परिस्थितियों के साथ-ही-साथ नाचा करता है। तेरी महिमा निराली है। तू भाग्य के खेल खेलता है। कभी तू हार जाता है और कभी मनुष्य। भाग्य तू प्रबल है, इन्सान कुछ नहीं।"

सरोज और जयन्त दोनों बैठे देर तक बातों में व्यस्त रहे। जब सरोज चली, तो दिन की आभा को पी गया था अंधेरा। रात ने काली चादर ओढ़, खोल दी थीं अपनी नेक आँखें जो रुपहली थीं चाँद की तरह चमकती। सरोज आ गई थी अपने घर और वह सोच रही थी कि क्या बाप को छोड़ दूँ। उससे दूर चली जाऊँ। आह, माँ की आत्मा क्या कहेगी जब मैं चली जाऊँगी यहाँ से। लेकिन अब बाप को देखूँ या अपनी इज़्ज़त को। इज्जत किस्मत का वह मोती है जिसकी आब कभी नहीं मिलती। तो चली जाऊँ जयन्त के साथ ? क्या मेरी जिन्दगी का यही एकमात्र उपाय है ? अच्छा, सोचूँगी, विचार करूँगी। मैं तो किसी भी कार्य में परिपक्व नहीं। मेरे आगे-पीछे बरबादियाँ हैं, तबाहियाँ हैं, लेकिन फिर भी मैं जाऊँगी जयन्त के साथ और यह दुनिया छोड़ दूँगी। जयन्त मेरा जीवन-देवता है। वह आज भी मेरी राह देख रहा होगा स्टेशन पर। वह व्याकुल होगा अपनी माटी की गुड़िया के लिए। मैं जाऊँगी, जरूर जाऊँगी और उसके हाथों में अपना हाथ दे दूँगी।

रज्जन आजकल बाहर नहीं जाता, वह कच्ची शराब पीने लगा था। उसकी जेब में पैसे नहीं थे। यार लोग उसे मुफ्त पिलाते। वह पी-पीकर जब

घर आता, तो बाप-बेटी में झड़प होती, लोग सुनते। वह आज आया था मैदान साफ कर। लेकिन घर की कुण्डी बाहर से बन्द थी। सरोज गायब थी। वह सोचता रहा, खड़ा रहा। उसने किवाड़ों की कुण्डी खोली। तब उसे सरोज का पत्र दिया गया सरोज के पलंग द्वारा। उसमें लिखा था कि जा रही हूँ पिता जी। मेरी तलाश मत करना। मैं और जयन्त कहाँ जायँगे, यह मालूम नहीं। बस अपने लिए समझ लो कि तुम्हारी सरोज मर गई।

रज्जन रो दिया, वह उठकर भागा। किसी तरह गिरता-पड़ता स्टेशन आया। मालूम हुआ कि लखनऊ-देहली ऐक्सप्रेस अभी-अभी देहली के लिए छूट गई है। वह वहीं गिर पड़ा भड़-भड़ाकर। देर बाद उसे होश आया, तो लोगों ने उसे उठाया और उससे पूछा कि क्या हुआ था, तो रज्जन रो-रोकर कहने लगा—"मेरी जवान लड़की को ले गया एक बदमाश। उसका नाम जयन्त है। मैं मिट्टी में मिल गया, मैं जिन्दा ही मर गया। आह सरोज ! मेरी माटी की गुड़िया ! तेरी माँ हर महीने शिकायत करती थी कि क्या सरोज को नई फिराक नहीं बनेगी। आज उस बचपन के पंछी के पर उग आये हैं जवानी वाले। जवानी कहीं जुल्म न ढा देना, सितम न करना, मेरी औलाद की रक्षा करना। आह सरोज। तूने जयन्त पर विश्वास कर लिया, जो दुनिया भर का खोटा आदमी था।"

इधर रज्जन अपनी धुन में व्यस्त था, उधर ट्रेन भागती चली जा रही थी। हरदोई के बाद शाहजहाँपुर, सहारनपुर, मेरठ, बरेली और मुजफ्फर-नगर। हापुड़ के स्टेशन पर जयन्त ने दो पापड़ खरीदे। जब सरोज ने खाया तो उसके आँसू आ गये। वह बोली—"और बापू !"

"बापू भूखा नहीं रहेगा सरोज। शराबी अन्न नहीं खाता, जहर पीता है। उस बाप को भूल ही जाओ। वह तुम्हारी जिन्दगी का बहुत बड़ा अभि-शाप था।"

जयन्त की यह बात सुन, सरोज की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। पापड़ उसके हाथ से गिर गया। गाड़ी छकपक-छकपक करती हुई हवा की गति में बह रही थी। परदेशी हवाएँ कह रही थीं कि सरोज रज्जन को भूल

जाओ। जिसने तुमको जन्म दिया, तुमने उसको त्याग दिया, तुमने उसी को त्याग दिया। यह तुम्हारी निरी कायरता है।

अब सरोज रोने लगी सुबक-सुबक कर। यात्री उसकी ओर देखने लगे। तभी आ गया स्टेशन जंकशन गाजियाबाद का। जयन्त ने पूछा कि समोसा और चाय लोगी। उत्तर में सरोज दूने वेग से रोने लगी। तभी ट्रेन चल दी विसिल देकर और जयन्त ठगा-सा खड़ा रह गया।

१५



यद्यपि ट्रेन का स्टॉप गाजियाबाद के बाद शाहदरा स्टेशन था; लेकिन बीच में रुक गई वह एक छोटे-से स्टेशन पर। वह डेढ़ घण्टा लेट थी, इसीलिए उसे मार्ग स्पष्ट नहीं मिल रहा था। दो गाड़ियाँ उससे मेल करने वाली थीं। दोनों के निकल जाने के बाद ही उसे छूटना था। यात्री भड़भड़ाये; वे गाड़ी से नीचे उतर गये और वे इर्द-गिर्द पत्थर की रोड़ियों पर बैठे प्रतीक्षा करने लगे कि कब आने वाली गाड़ियाँ गुजर जायें और हमारी गाड़ी चले। सरोज अब भी सुबक रही थी। जयन्त उसके सामने बैठा था। उसने कहा—"तुम इतना रो क्यों रही हो सरोज? हमें बताओ कि क्या सुख था तुम्हें बाप के यहाँ। देखो, गाड़ी रुक गई है। यहाँ आओ मेरे साथ। बेसिन में चलकर मुँह धो लो। कुछ खाना चाहो तो खा लो। यहाँ हरी ककड़ियाँ बिक रही हैं। अन्डखरबूजे भी जहाँ-तहाँ हैं। दुख न करो सरोज, जयन्त तुम्हें अपने बल-बूते पर लाया है। उठो, आओ मेरे साथ। पहले मुँह धोओ।"

यह कहकर जयन्त सरोज को बोगी के संडास में लाया, जहां सारी सुविधा उपलब्ध थीं। मल-मूत्र त्यागने की जगह तो थी ही वह, उसमें तीन-

तीन नल लगे थे। एक शौच के लिए, एक सफाई के लिए और एक आइने के नीचे लगा था बेसिने में जहाँ लोग मुँह धोते, कुल्ला करते, बाल काढ़ते। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे रेल-विभाग का यह सहयोग सराहनीय है। शौचालय, मूत्रालय और गुसलखाने का भी काम देती है यह छोटी-सी कोठरी। सफाई इतनी स्वच्छ कि जिसका नाम नहीं। युग-युग जिये हमारी प्रजातंत्र सरकार, जिसने तृतीय श्रेणी के रेलवे डिब्बों में भी पंखे लगवा दिये।

सरोज ने मुँह धोया; उसने आँचल से उसे पोंछा। फिर जब वह आकर बैठी अपनी बर्थ पर, तो जयन्त से एकाएक पूछ बैठी—"बापू ढूँढेंगे, वे हैरान होंगे। हालांकि उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया था। उनका बुढ़ापा मिट्टी में मिल जायेगा जयन्त। यह मैंने अच्छा नहीं किया। बदनाम तो वे वैसे भी हैं गली-गली में; लेकिन जिसकी जवान लड़की घर से निकल जाय, भाग जाय, तो उसी के लिए लोग कहते हैं कि गली-गली में नहीं, बदनाम हूँ बीच बजरिया मे। अब मर जायेगा बुड्ढा। कौन उसकी परवरिस करेगा, कौन देखभाल। इंसान को औलाद भगवान इसी दिन के लिए देता है। बापू मुझे साफ कर देना, मैंने तुम्हें दगा दी। बापू! ओ बापू!!"

यह कहकर सरोज फिर रोने लगी। वह धीर-अधीर हो रही थी। बोगी के सभी यात्री पुरुष नीचे उतर गये थे। महिलाओं के नाम पर केवल वहाँ सरोज थी। वह रो रही थी बाप की याद कर-कर और जयन्त उसे समझा रहा था—"रो मत पगली, हिम्मत कर। मेरी सोने की डाल, तू माटी की गुड़िया नहीं, अब तू मेरी जीवन-संगिनी बन गई है। तू अब अकेली नहीं; मैं तेरे साथ हूँ। बाप ही अगर तुम्हारा सही मार्ग पर होता, तो भगवान तुमसे माँ का सुख क्यों छीनता? तो दुनिया तुम्हारी ओर ऊँगलियाँ क्यों उठाती? हिम्मत से काम लो सरोज। हम लोग नई दुनिया बसाने जा रहे हैं।"

"एक बात कहूँ जयन्त कि तुम लौट चलो हरदोई और मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो। तुम किस-किस का दुःख बटाओगे; दुनिया दुःख से भरी पड़ी है। सुख तो यहाँ एक सपना हैं, जो हर एक को नहीं मिलता। मैं नहीं जाऊँगी दिल्ली। मुझे अपना वही घर प्यारा है, जिसमें मेरी माँ मरी। लौटो जयन्त,

इस गाड़ी से नीचे उतर पड़ो।"

जयन्त सरोज का मुँह देखने लगा। वह आश्चर्य में डूब गया। वह कई क्षण तक तो बोल ही नहीं पाया। फिर धीरे-से कहने लगा—"अब दिल्ली दूर नहीं सरोज। खिड़की के बाहर सिर निकालो और देखो सामने शाहदरा की बस्ती है। अरे, वह देखो यू० पी० और देहली के वार्डर पर दिलसाद गार्डेन की कितनी बढ़िया कालोनी बसी है। बस इसके बाद आयेगा शाहदरा जंकशन, फिर जमुना का पुल। उसके बाद देखना लालकिला। यह कितना सुन्दर लगता है देखने में। देहली वह जगह है पगली, जहाँ हर एक बहल जाता है। यही तो राजधानी है, यही देश की माँग का सिंदूर।"

अभी जयन्त की बात पूरी हुई ही थी कि शोर मचाती हुई एक एक्सप्रेस-ट्रेन बगल से गुजर गई। दोनों स्तब्ध रहे, दोनों ही देखते रहे। इसके बाद लाईन क्लीयर के चपरासी ने प्लेटफार्म पर घंटा बजाया। दूसरी मेल ट्रेन के लिए सिगल हुआ। यह था कालिकामेल, जो देहली से हावड़ा जा रहा था।

सरोज गुम-सुम बैठी रही। उसकी आँखों से टपटप आँसू चू रहे थे और ट्रेन ने दी चलने की सूचना। उसकी सीटी बजी और देर तक बजती रही। वह हिली, धीरे से रेंगी फिर छकछक का शब्द हुआ। उसके एक ओर ग्रांडट्रंक रोड की चौड़ी सड़क साथ-साथ चल रही थी। यह थी शेरशाह सूरी की निशानी, जिसने कभी देहली पर शासन किया था। शाहदरा आया। सरोज कभी सुबक जाती, कभी आँसू पोंछ लेती। जयन्त खामोश था और अब रेल जमुना के पुल पर से गुजर रही थी। हहर मचा था। नीचे ईंटों के भारी खम्भे काँपते। बीच में पुल पर बनी सड़क पर बसें दौड़तीं, कारें रपटतीं और सूअर की तरह करते स्क्यूटर रिक्शे तथा स्क्यूटर गुर्गुर्। ताँगे चलते, घोड़ों की टापें बजतीं। साइकिलों की घंटियाँ बजतीं और जमुना मैया के लोहे के भारी पुल पर लोहे की रेल दौड़ रही थी। सरोज को कुछ ध्यान आ गया। उसने कहा—"अरे जयन्त, ताँबे के दो पैसे तो दो। मैं निछावर कर दूँ तुम पर जमुना जी में कि मेरा सुहाग हमेशा अमर रहे।"

जमुना का पुल लगभग एक मील लम्बा था। जयन्त ने ताबे के दो पैसे

दिये, सरोज ने उस पर न्यौछावर किये और जमुनाजी में फेंक दिये। तभी जयन्त ने निकाली एक चवन्नी। उसने सरोज पर उतार जमुना जल में फेंकी और हँसकर कहा—"जमुना मैया, यह तुम्हारा घटवारा है। हमारी माटी की गुड़िया परदेश आई है। इसकी रक्षा करना माँ।"

अब रोती हुई सरोज मुस्करा दी। उसे अपने पर गर्व हो आया। और तभी ट्रेन गुजरने लगी लालकिले के निकट से। जयन्त ने सरोज का ध्यान उधर आकृष्ट किया कि यह आलीशान किला दुनिया में बेजोड़ है। लाल पत्थर का, लाल किला जब देखोगी, तो खुश हो जाओगी। उधर वह देखो कशमीरी गेट है, शहर का बहुत ही धनी और रईस मौहल्ला।

सरोज चकाचौंध में पड़ गई। और तभी थोड़ी देर बाद ही ट्रेन जाकर खड़ी हो गई चाँदनीचौक के बृहत् तथा अति सुन्दर स्टेशन पर। सरोज ने देखा कि वाकई में यह देहली है और इसकी चमक निराली है।

१६



देहली दुल्हिन है; वह विधवा होते ही फौरन पुर्नविवाह करती है। उसने पृथ्वीराज चौहान के तिलक लगाया। फिर परदेशी के हाथ बिकी, मुहम्मद गोरी ने उसकी माँग में सिन्दूर लगाया। उसके अधिकारी दिल्ली के सम्राट बने। तभी गुलामवंश की नींव पड़ी। कुतुबुद्दीन ऐबक, रजिया बेगम, मोहम्मद तुगलक और फिर आ गये खिल्जी, जलालुद्दीन खिलजी। इनका ही गुलाम बलबन सम्राट हुआ। फिर आया इब्राहीम लोदी, जिसे बाबर ने पानीपत के मैदान में अपनी दस हजार सेना लेकर उसकी एक लाख सेना को मात दी। मुगलों का झंडा फहराया भारत की रानी देहली पर। बाबर ने कायर जन्मा, जिसका नाम हुमायूँ था और कायर ने दिया जन्म शेरदिल को, जो

शहंशाह अकबर था । वह दुनिया में महान था । अकबर की हिन्दू रानी जोधाबाई ने जन्म दिया शेखू को, जो शाहजादा सलीम था और बाद में शहंशाह जहांगीर हुआ । और जहाँगीर की राजपूत बेगम ने एक ऐसा रत्न दिया, जिसका नाम शाहजहाँ था । जिसने करोड़ों नहीं, अरबों रुपये खर्च किये और स्थापत्य कला का चिन्ह छोड़ गया । उसका लालकिला दुनिया में एक बेजोड़ नमूना है । उसकी जामा-मस्जिद मिस्र के पिरामिडों को चुनौती देती है । उसका ताजमहल अब भी ताल ठोककर कहता है सातों लोकों से कि पूर्णिमा की चाँदनी में दूध से नहाओ मेरी तरह । यह ताजमहल युग-युग तक कायम रहेगा, जब-तक जर्रा-जर्रा है । उसका मयूर सिंहासन इन्द्र से ऊंचा था । वह भाग्यशाली बादशाह था; लेकिन अभागा पिता था । उसने स्वयं कहा था अपनी बड़ी लड़की जहाँनारा से, जो आगरे के लालकिले की कैद में उसे कुरानशरीफ पढ़कर सुनाया करती थी कि औरंगजेब जैसा नालायक बेटा खुदा दुश्मन को भी न दे । आह शाहजहाँ, आह जहाँगीर, अदले जहाँगीर और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक शहंशाह अकबर ! यह कहाँ से आ गया औरंगजेब, जिसने जाटों को उकसाया, मराठों को भड़काया । जिसने सिक्खों के सिर की पगड़ी उतारी, गुरु तेगबहादुर को कत्ल कराया । हत्यारा था बेदर्द वह । उसने गुरु गोविंदसिंह के लड़कों को दीवाल में चिनवाया । मर गया जालिम और मुगलवंश का नाश कर गया । जब घर में फूट पड़ी, तो म्लेच्छ आये सात-समुन्दर पार से । वे सोना-चाँदी, हीरे-मोती सब ढो ले गये । आखिर अंग्रेज भी हार गये और भारती माँ को नमस्कार कर चले गये; तब देहली ने पाँवों में मेंहदी रची, हाथों में हीरे-मोती के हथफूल पहने । उसने माँग में सिन्दूर भरा स्वतंत्रता का । उसने ओढ़नी ओढ़ी तिरंगे की और वह ऐसी जवान हुई कि उसकी जवानी छलक-छलक पड़ी । देश-विदेश के लोग आये; सबने उसकी सराहना की और अपने देश के लोगों का तो वह बन गई तीर्थ । उसने सब राष्ट्रों को न्योता दिया । सभी दुश्मन दोस्त बन गये और सभी ने कहा कि भारती तू मेरी बहन है । हाँ, नास्तिक राष्ट्र दूर रहे । और देहली उनका नाम भी भूलने का प्रयत्न करने लगी ।

ज़यन्त ने अपना सब कुछ बेच डाला था। वह'कॉरोनेशन होटल में आकर रहा। वह नित्य सवेरे होटल से निकलता, सरोज को देहली घुमाता। एक दिन वह उसे ले गया लालकिला। उसने पच्चीस नये पैसे के दो टिकट खरीदे। वह लाहौरी गेट के लाल फाटक से अन्दर घूसा। उसने लालकिले का बाजार देखा। फिर आया वह मैदान में। नौबतखाने में आ उसने सरोज को बतलाया कि देखो यह बादशाह का नौबतखाना है। यहाँ दिन-रात नौबत बजती थी, शहनाई गूँजती थी। लेकिन आज भाग्य फूट गया इसका। यह हिन्दुस्तान की दौलत थी सरोज, अब मिट्टी हो गई। जब दरबार आम आया, तो जयन्त ने बतलाया कि देखो सरोज वह सिंहासन है। वहीं बादशाह बैठता था। शाहजहाँ ने बनवाया था तख्ते-ताऊस—मयूर-सिंहासन। वह सोने-चाँदी, हीरे-मोतियों का था। ईरान का एक भेड़ों को चरानेवाला बादशाह नादिरशाह उसे ले गया। वही उठा ले गया हीरा-कोहनूर, जो आजकल अंग्रेजों की रियासत में है। फिर आया रंगमहल जिसे देखकर सरोज चकाचौंध रह गई। आह दरबारे खास ! जयन्त के आँसू आ गये। अदले जहाँगीर; यही तो इन्साफ का तराजू टाँगा है। अब न वह रैय्यत होगी और न वह राजा। जमाना भुखमरी का है। हरम देखा सरोज ने जहाँ बेगमें नहाती थीं। जयन्त ने एक लम्बी आह भरी। वह धीरे-से बोला कि न आती खूनी हुकूमत बादशाह आलमगीर की, तो हिन्दू-मुस्लिम एक हो जाते जैसे दूध और पानी। आह, सोने की चिड़िया आज माटी की गुड़िया बन गई है, जैसी सरोज। विदेशी कर्ज देते हैं और गर्व से कहते हैं कि हमने भारत को ऋण दिया।

फिर देखी सरोज ने मोती-मस्जिद, जिसे जल्लाद बादशाह ने बनवाया था। जिसके हीरे-जवाहरात गोरी चमड़ी वाले निकाल ले गये थे और सावन-भादों के महल ध्वंस कर दिये थे, गुलाम अब्दुल कादिर ने। उसने बादशाह शाह आलम की आंखें निकाल ली थीं और उसे नौबतखाने में कैद कर दिया था। फिर सरोज ने देखा बेगम मुमताज का महल जिसमें जीनत महल बेगम के कपड़े, अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह की पोशाक, मुगलों के बरतन, मुगलों के सिक्के और मुगलों की पांडुलिपियाँ। आंख मूंदों तो यही

लगता कि यह अजायबघर नहीं, मुगलों का लालकिला है। गज़र बज रही है, शहनाई मधु घोल रही है और शाहंशाह की आँखें शबनम के पानी में धोयी जा रही हैं। इसी वंश में तो हुई थी साम्राज्ञी नूरशहाँ जिसने इनका आविष्कार किया था।

इस तरह मुगल कुछ ले नहीं गये; बल्कि हमें दे गये जबकि अँग्रेज हम से हमारी जिन्दगी छीन ले गये। सरोज ने जब लालकिले को भर आँखों देखा, उसकी कहानी सुनी, तो उसके भी आँसू आ गये। वह देहली दरवाजे से बाहर निकली जहाँ भीतर के फाटक पर दो बड़े-बड़े हाथी खड़े थे। उसने खुद कहा जयन्त से कि वह इमारत इन्सान की कहानी है। यह किला ही नहीं, हमारी रईसत की निशानी है।

जामा-मस्जिद जब सरोज ने देखी, तो उसकी आँखें फट गईं—इतनी ऊँची! इतनी बड़ी!! क्या कहना है शाही हुकूमत का। आजकल तो अँधे पीसते हैं, कुत्ते खाते हैं। कोई किसी की सुनता ही नहीं। लगभग दो फुट की ऊँचाई पर खड़ी लाल पत्थर की जामा-मस्जिद जब भी ललकार रही थी कि है कोई शाहजहाँ, जो मेरी माँग में आकर सिन्दूर भरे। उसकी तीन तरफ की सढ़ियों पर हजारों नहीं, लाखों आदमी दिन सोये-रात सोये। आह शाहजहां! तू ईश्वर का पूत था और धरती एक सन्देश।

इसके बाद सरोज ने कुदेशिया बेगम की भी मस्जिद देखी जहाँ एक मौलवी पड़ा था। भीतर सन्नाटा साँसें ले रहा था। हाँ मीनारों पर सोने के गुम्मद अब भी लगे थे। अंग्रेज उन्हें नहीं ले जा पाये। दरियागंज के बाद आया राजघाट जहाँ महात्मा गांधी ने अपनी अन्त्येष्टि पायी थी। यह राजघाट था, और दुनिया का स्वर्ग। देशदेशान्तर के लोग आते और अपनी श्रद्धांजलि उस महामना को अर्पित करते। उसकी समाधि पर लिखा था 'हे राम' जिसे भक्त लोग रंगीन-पुष्पों से भर देते। वहाँ की दूब, वहाँ की घास पाश्चात्य-प्रणाली को चुनौती देती। वहाँ के पुष्प ऐसे महकते जैसे सोना। वहाँ के कुंजो में नाचते राधा-मोहन। संसार के प्रत्येक देश का व्यक्ति उस स्थल पर बैठकर देखा जा सकता था। वह समाधि थी गाँधी की, हमारे

मोहनदास कर्मचन्द की जो जगत-बापू, महात्मा और जो 'अहिंसा परमो धर्मः, का एकमात्र पुजारी था।

कनाट प्लेस का जन्तर-मन्तर यह बतलाता कि आज का विज्ञान कुछ नहीं वैज्ञानिक एक भुलावा हैं। यह विज्ञान की वह घड़ी है जो पुरातन में मनुष्य की रग-रग में चलती थी। इसके बाद आया वेला का सतखण्ड-कुतुबमीनार। यहीं तो था पृथ्वीराज का किला, जहाँ अगमा रानी शासन से प्यार करती थीं। अजा उसकी पुत्र थी; किन्तु दासी-पुत्री संयोगियता ने आकर बूढ़े सम्राट चौहान को राग-रंग में डुबो दिया। यहीं थी अशोक की लाट। सचमुच देहली एक खजाना है; बहुत पुराना, बहुत नया। बिड़ला मन्दिर में बीसवीं सदी बोल रही थी कि अब स्थापत्यकाल का वह जादू नहीं, अब केवल एक दिखावा है।

चिड़ियाघर देखा सरोज ने। उसने खूँख्वार पशु देखे और विहंगम पक्षी। उसने अजगर देखे, साँप देखे। उसने देखी जलपरी जो आजकल की चर्चा का मुख्य विषय है। उसने देखा राष्ट्रपति भवन और मुगल-उद्यान, हिन्दुस्तान की वह विरासत, जो बेजोड़ हैं। उसने दूर से ही देखा अशोका होटल; क्योंकि धनी-मानी ही वहाँ जा सकते हैं।

सरोज ने देहली खूब घूमी जब तक थक नहीं गई। फिर जयन्त ने लिया एक कमरा चावड़ी बाजार के कूचा मीर-आशिक की गली में। यह पहला दिन था जब जयन्त ने सरोज को छुआ और उसकी देह से खेला। सरोज को दुनिया स्वर्ग नजर आने लगी। वह पत्नी बन गई जयन्त की और सोचने लगी कि कितना प्यार करता है मुझे जयन्त। क्या हर पुरुष स्त्री को इतना चाहता है—नहीं कभी नहीं। मेरा घर बसेगा, मैं माँ बनूंगी। स्त्री जब पति का सहारा पा जाती है तो उसकी शक्ति चौगुनी बढ़ जाती है।

सरोज रात को देर तक जयन्त के पैर दबाती। सवेरे उठते ही उसकी सेवा में लग जाती। वह भोजन बनाती, पति को आग्रह कर करके खिलाती। जब वह हँस के मिस कहता कि मेरी माटी की गुड़िया, तो वह उसके पैरों पर सिर टेक देती और कहती कि नहीं, चरणों की दासी।

एक सुन्दर संसार बसा था, जिसमें एक हंस का जोड़ा आकर अपनी

दुनिया आबाद कर रहा था। दो मजदूर मिल गये थे न, इसीलिए तो संगम हुआ था गंगा-यमुना का। वहाँ अलौकिक सुख बरसता। दुनिया उस पर अपना सौभाग्य न्यौछावर करती और परिस्थितियाँ कहतीं कि नई जिन्दगी, नया मोड़, नई करवट। सरोज बाहें फैलाओ और दुनिया के सुख से अपनी झोलियाँ भर लो। जवानी जिन्दगी है और बुढ़ापा एक अधूरी मौत। जिन्हें युवावस्था में प्यार नहीं मिलता, वे ही तो अभागे होते हैं। जो सोते रहते हैं दिन-रात, करवट नहीं बदलते, वे ही तो आलसी होते हैं। जो बकते हैं दिन-रात और करते कुछ नहीं, वही निकम्मे कहलाते हैं।

हाँ, तो सरोज के जीवन में बसंत था, बहार थी, कोयल कूक रही थी उसकी गदरायी जवानी की डाल पर। वह मदिरा की एक प्याली थी, जो गुलाबी थी जिसे होठों से लगाते ही जयन्त को नशा आ जाता और नशा जवानी का मित्र हैं। जवानी एक तोहफा है, जो सबको मिलता है, लेकिन बदनसीब अलग बैठ जाते हैं और खुशनसीब दोनों हाथों होलियाँ खेलते हैं। वे जिन्दगी को जादू समझते हैं जो एक करामात होती है।

इस तरह सरोज थी रत अपने जीवन-यापन के क्षेत्र में। लग रहा था कि जयन्त उसकी जिन्दगी में एक अनोखी चमक ला देगा। वह फूल की तरह मुस्करायेगी और बहारो की तरह जयन्त। वह सरोज का बन जाएगा; क्योंकि मैं ही तो उसकी सबसे बड़ी थाती हूँ।

जहाँ सुख की त्रिवेणी लहराती है, वहाँ सन्तोष का समुद्र सदैव शान्त रहता है, उसमें कभी ज्वार-भाटा नहीं आता। जहाँ जिन्दगी तृप्ति की साँसें लेती है, वहाँ अतृप्ति संज्ञाशून्य-सी हो जाती है। जहाँ प्यार अपने अंगों में भाँति-भाँति के रंग भरता है, वहीं रंगीन दिवाली होती है। जहाँ एक का विश्वास दूसरे पर होता है, वहीं इन्सानियत दाद देती है। जहाँ प्यार का मोती अनमोल होता है, वहीं उसकी आब आ जाती है। वहीं चमक आती है, व्यक्तित्व में, वहीं निखार चरित्र में।

सरोज सोचती कि भाई दुनिया में जीते तो हैं सब लोग, क्या गरीब क्या अमीर। जो जिस हालत में है खुश है। परिस्थितियों में फँसा हुआ आदमी

एक बार मुस्कराने की कोशिश करता है और मेरी तरह मजबूर जिन्दगी पाकर भी तो हंसी आ ही जाती है। सही है, हँसती है दुनिया, हंसाने वाला चाहिए।

आज जयन्त मेरा भाग्य है और मैं उसकी प्रियतमा। काश! हम दोनों की जिन्दगी इसी तरह खिलती रहे, फलती रहे, फूलती रहे। भगवान बसंत को सदा-बहार कर दे और सदा-सुहागिन के फूलों से कह दे कि जाओ तुम सरोज की माँग भरो; सरोज अखण्ड सौभाग्यवती है, उसने जयन्त से ब्याह कर लिया है।

१७



जयन्त की जेब में अब लगभग पचास रुपये बचे थे। वह नौकरी की तलाश में निकलता, तो उसे निराशा-ही नजर आती। वह मजदूरी करने की सोचता तो उसे शरम लगती। वह सोचता कि कोई छोटा-मोटा धन्धा करूं किन्तु पूंजी नहीं, लेकिन फिर भी वह रहता खुश सरोज को सुखी बनाने के लिए, हँसती हुई देखने के लिए। पुरुष चाहे जितना असमर्थ हो, लेकिन वह स्त्री को उसका आभास तक नहीं होने देता। हर व्यक्ति अपने में ईमानदार होता है, लेकिन परिस्थितियाँ उसे विवश और मजबूर कर पतन की ओर ले जाती हैं, तभी वह पतित कहा जाता है। आदमी बुरा नहीं होता, होती हैं बुरी सामयिक परिस्थितियाँ।

जयन्त जब यह सोचकर घर से निकलने लगा कि आज कुछ-न-कुछ करके अवश्य रहूँगा तो सरोज कहती कि नहा-धो लिए, नाश्ता कर लो। मैंने मूली के लच्छे भरकर परावठे बनाए हैं। खाओ ऊपर से गरम-गरम चाय पियो। इससे पहले जाना मत, तुम्हें मेरी कसम है।

सो जयन्त कसम की डोर में बँध जाता। वह नाश्ता करता तब तक बजते। फिर जब वह चलने को उद्यत होता, तो सरोज उसकी राह रोक लेती। वह कहती—"वाह ! ऐसे नहीं जाने दूँगी मैं। दाल चूल्हे पर चढ़ी है, भात पक गया है, सब्जी छौंकते ही चुर जायेगी, आटा सना रखा है; खाना खा लो, तब जाओ। सरोज तुम्हें ऐसे नहीं जाने देगी जयन्त।"

तब जयन्त आग्रह के उस पवित्र बन्धन में बँध जाता। वह कहता—"जो-जो यह माटी की गुड़िया कहेगी, मैं करूँगा। स्त्री कितनी प्यारी लगती है, जब हाथ में पैसा रहता है। गृहस्थी कितना सुख देती है, जब भीतर-बाहर सब भरा होता है। सरोज प्यार करो, लेकिन उतना नहीं कि तसवीर बना मुझे सामने ही बिठाये रहो। आखिर सोचो तो खाने को कहाँ से आएगा। अभी तक कोई काम नहीं मिला, मैं ढंग से नहीं लगा, तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं।"

"चिन्ता का नाम न लो जयन्त। वह तो मेरी दुश्मन है। वह मेरे साथ ही जन्मी थी। हम लोग भूखे रह लेंगे। एक कपड़े से तन ढक लेंगे, लेकिन चिन्ता न करो जयन्त। अपनी सरोज की दुनिया आबाद होने दो। हमें सोना-चाँदी और रुपया नहीं चाहिए। हमें चाहिए जिन्दगी की खुशी।"

लेकिन जयन्त सोचता कि धिक्कार है उस आदमी को, जो अपनी गृहस्थी न चला सके, अपनी स्त्री को सुखी न रख सके, जो ईमानदारी की रोजी न कमा सके। क्या इन्सान बुराइयों का चोला छोड़, अच्छाई का चोला नहीं पहन सकता ? क्या आवारा शरीफ नहीं बन सकता। इतने बड़े शहर में मुझे कोई जानता नहीं। यहाँ के समाज पर पंजाबी सभ्यता की पूरी-पूरी छाप है और हर जाति, हर वर्ग अपना ही पक्षपात करता है। जब रुपये खर्च हो जाएंगे, तो क्या करूँगा मैं ? सरोज को यह सब बतलाने की जरूरत नहीं। बिल्कुल भोली है, बहुत नादान। आखिर माटी की गुड़िया है अपने जयन्त की।

सरोज अपने में अत्यधिक प्रफुल्लित थी उस जुही कली की तरह जो छिटक-छिटक कर खिलती है और जिसके किंजल्क का भ्रमर पान करते हैं। उसी कली का तो पराग था जयन्त। वह फूल थी, तो जयन्त उसकी धूल। वह दुनिया थी तो जयन्त दौलत। वह जिन्दगी थी, तो जयन्त आत्मा। वह

सोचती कि जो सुख प्यार में है, वह कहीं नहीं। स्त्री को जब कोई चाहता है, तो उसे कितना दर्द होता है। जी चाहता है कि जयन्त को आँखों में बैठा लूँ और उसी की रोशनी से देखूँ। जो दुनिया की निगाहों में खराब था, वही मेरा भगवान बन गया है। जो दुनिया के लिए कोढ़ और खाज था, मैंने माला समझकर उसे गले में पहन लिया। जो जिन्दगी के सितार का एक टूटा हुआ तार था, मैंने उस तार को अपने हृदय से जोड़ दिया। दिल दो हो गये लेकिन धड़कनें एक। शरीर दो कहे जायेंगे, परन्तु मन एक।

और जयन्त, वह अहर्निश मन-ही-मन विनय करता ईश्वर से कि भगवान सुख दिया है, तो छीन मत लेना। धूल में नाव कब तक चलेगी। मुझे रोजी दे, रोजगार दे, मुझे मेरे हाथों में बरकत दे कि मेरी माटी की गुड़िया को ऐसा सजाऊँ कि उसके अंग-अंग पर सोना हो, उसकी रग-रग में उमंग। उसकी साँसें सान के गीत गायें। उसके कदम धरती पर झंकार करें। वह किसी में हो जाये लय और मैं उस प्रणय-पीयूष को पान कर लूँ। आज जाना मैंने कि स्त्री कितनी बड़ी जिम्मेदारी होती है पुरुष की। वह राग रंग की पहेली ही नहीं, समस्याओं की एक बहुत बड़ी कसौटी होती है। जिसकी दुर्बलता खुल जाती है, उसका कोई भी अस्तित्व नहीं रह जाता दुनिया में। ऐसे ही लोग पराङ्मुखी हो जाते हैं जीवन से। उन्हें खोजने से भी अपना कर्मक्षेत्र नहीं मिलता। किसी अनुभवी ने कहा है कि 'कर्मक्षेत्र है यह पृथ्वी तल, व्यर्थ यहाँ आलस-आराम। निर्भय आगे बढ़े चलो, किये चलो नित अपना काम।

परोक्ष में तो जयन्त इस तरह व्याकुल और परेशान रहता, लेकिन प्रगट में वह सरोज के सम्मुख मुस्कराता। साँझ होते ही वह कहता कि चलो घूमने नहीं चलोगी। कहाँ चलोगी, बतलाओ। लालकिले के मैदान या महात्मा गाँधी मैदान। अरी चल, आज तुझे कनाट-सर्किल घुमाऊँ। वह नयी देहली की नयी दुनिया है।

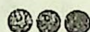
तब सरोज हँसकर अपने प्रियतम के गले में बाहें डाल देती। वह कहती धीरे-धीरे सकुचाकर कि मेरी दुनिया तुम हो मेरी जिन्दगी के मालिक। अरे

यह सरोज तो तुम्हारे चरणों की दासी है जनम-जनम की। आज मैं कहीं नहीं जाऊँगी। आज मैं अपने जयन्त से खूब बातें करूँगी। बोलो, खीर बनाऊँ या हलुआ, तुम्हें क्या अच्छा लगता है।

"मुझे मिट्टी भी अच्छी लगती है जो माटी की गुड़िया दे दे। अच्छा नहीं जाऊंगी कहीं भी। लो आसन जमा दिया, तुम पकवान बनाओ।"

जयन्त की इस बात पर सरोज खिल-खिलकर हँस पड़ती। नवदम्पति खूब हँसते और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। यह था उनकी जिन्दगी का आरम्भ और उनकी नयी-नवेली दुनिया।

१८



गृहस्थ जब घर जाता है और गृहणी उसे मुस्कराती हुई उसकी प्रतीक्षा में रत मिलती है, तो उसका श्रम सार्थक हो जाता है। उसकी थकान स्फूर्ति में परिवर्तित हो जाती है। वह अपने में पाता है एक उमंग, जिन्दगी का नया दौर। नहीं जानते लोग कि गृहस्थ ही तो एक दुनिया है। नारी ही एक सृष्टि। पुरुष सृष्टि का निर्माता है। नारी और पुरुष, पुरुष और नारी ये ही तो दोनों धरती-आकाश हैं। ये ही जीवन है, ये ही माया। जहाँ पुरुष नहीं, नारी का कोई मूल्य नहीं, जहाँ नारी नहीं, वहाँ पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं। नारी की दुनियाँ एक छोटी-सी बस्ती होती है। जिसमें पुरुष सूत्रधार होता है और जब तक यवनिका-पतन नहीं होता, वह अभिनय करता रहता है।

आदमी की ताकत होती है दौलत से; तभी वह हाथ-पैर मारता रहता है। और औरत की तकत होती है पति। जब वह असफल हो जाता है, तभी नारी तिल-तिल करके घुटने लगती है। आदमी दुनियाभर की ढोंग-विद्या करे, दिन

भर खून-पसीना बहाये; लेकिन उसकी यही इच्छा रहती है कि जब मैं घर पहुँचूँ, जेबें भरी हों मेरे हाथों में तोहफा हो, और कोई लता सदृश आये और मेरी तो मेरी बाहों में भर जाये। जिस स्त्री का पति सम्पन्न होता है वह अपना अहोभाग्य समझती है। यह है समाज के दर्पण की एक झलक। परछाइयाँ बहुत हैं, इन्सान अनेक। दुनिया एक है और उसके पल विशेष। क्या सुखमय जिन्दगी हमेशा नहीं बितायी जा सकती? यही सोचता रहता जयन्त। उसने ईमानदारी का चोला पहना, दुनिया ने उसका साथ नहीं दिया। न नौकरी मिली, न ईमानदारी। देहली ने लाहौर को गोद ले लिया है, इसीलिए वह बदल गई। वहाँ का सारे का सारा समाज पंजाब का कायल है। वहाँ दूसरा समाज सहज ही नहीं पनप सकता। जयन्त के पास केवल पाँच रुपए बचे थे। वह सब्जीमण्डी गया। उसने केले खरीदे, फेरी में बेचे। लाभ कुछ नहीं हुआ; एक रुपया पास से चला गया।

जयन्त बुझा हुआ-सा घर पहुँचा। सरोज हँसती हुई चौखट पर खड़ी थी। आते ही बोली—"कहाँ चले जाते हो तुम? बहुत देर कर देते हो? देखो, साँझ हो रही है। आज मैं चाँदनीचौक चलूँगी। मलाई की बरफ खाऊँगी। और हाँ, वहाँ बैठता है दही-बड़े की गुजियावाला। बहुत लम्बी लाइन लगती है। आठ आने की एक देता है। रोज तुम पूछते थे। आज मेरा मन है। देखूँ आज तुम कितना खर्च करते हो। रुपये ज्यादा हों, तो बक्स में रख दूँ, तुम जेब में ही डाले रहते हो। लाओ मैं देखूँ तुम्हारी जेब में क्या है?

जयन्त को चक्कर-सा आने लगा। उसे धरती और आसमान नजर आने लगा। वह दबी जबान से बोला—"सरोज आज मेरी जेब खाली है मण्डी में किसी ने सफाई का काम दिखला दिया। आज तुम्हारी इच्छा घूमने और खाने की थी; लेकिन अफसोस, मैं आज कहीं नहीं जा सकता। मुझे माफ कर दो सरोज। मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ मैं........."

"हूँ। जेब खाली हो गई!! सरोज की चिन्ता न करो। तबीयत तो ठीक है न? पैर दबा दूँ। मैं माँग लाऊँ पड़ोस से कुछ रुपये। तुम हो तो जहान

है, यों दुनिया बरबाद है। जयन्त, सरोज बुजदिल नहीं; वह शेरदिल औरत है।"

यह कह सरोज जयन्त के वक्ष से लग गई। तब वह आँसू बहाने लगा। उसने कहा—"आह ! मेरी माटी की गुड़िया, तू जिन्दगी-ही नहीं, तू सोना ही नहीं, तू एक सार्थक तथ्य है। तू जयन्त की प्रेयसी; उसकी आत्मा है।"

उस दिन कुछ थोड़े-से चावल बचे थे; सरोज ने भात बनाया। वह दूध और चीनी ले आई उधार। उसने जयन्त को खिलाया। सवेरा हुआ, जयन्त उठा और वह सोचने लगा कि क्या करूँ, पैसा कहाँ से लाऊँ। सरोज मेरी जिन्दगी है मेरी साँस। अगर साँस थक गई और जिन्दगी बुझ गई, तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा।

जामा-मस्जिद के मैदान में एक सरकस लगा था। दिन में लोग देख-सुन रहे थे हाथी-घोड़े, शेर-चीते। तभी वह पहुँचा उस समाज में। एक मारवाड़ी सज्जन की जेब में सौ-सौ के नोट झाँक रहे थे। जयन्त ने कहा कि ईमान को रखो ताख में। ये नोट लो और अपनी सरोज की दुनिया आबाद करो। उसने जेब साफ कर दी मारवाड़ी की। सौ-सौ के ग्यारह नोट थे। वह घर आया। तीन-सौ रुपए की जरी की एक साड़ी लाया और लाया पाँच सौ के कंगन। उसने आते ही कहा—'चल मेरी माटी की गुड़िया। आज हम लोग होटल नरूला में खाना खायेंगे।"

सरोज ने त्रिया-चरित्र दिखलाया। वह हटकर के बोली—"बहुत कमाते हो तुम, लाओ, सौ-दो-सौ मुझे दो। दाना-दाना जोड़ने से राशि होती है। औरत गृहस्थी चलाती है, तो बरक्कत ही बरक्कत नजर आती है। जयन्त ने अपनी नवोदिता पत्नी के हाथ पर सौ-सौ के दो नोट रख दिये। सरोज फूली न समायी। जब जयन्त बाहर चला आया, तो वह गाने लगी पुराना गीत—"राजा की आयेगी बरात, रंगीली होगी रात, मगन मैं नाचूँगी।"

और दूसरे दिन जयन्त ने बस में बैठे-बैठे कंडक्टर का बैग गायब कर दिया। उसमें साठ रुपए की रेजगारी थी। वह गया सिनेमा-हाल। वहाँ उसने एक मारवाड़ी महिला की सौ तोले की तगड़ी काट ली। उसने

झूमर बनवाया सरोज को। गले में सात तोले की सीतारामी ढाली। वह उसे ले गया होटल गेलार्ड, जहाँ प्रवेश की फीस साढ़े ग्यार रुपये थी।

सरोज पूछती कि तुम इतने रुपये कहाँ से लाते हो, कौन-सा धन्धा करते हो? तो जयन्त कहता कि कहना मत किसी से। मैं सट्टा खेलता हूँ सोने-चाँदी का। बिना पैसे का सौदा। देख लेना, एक दिन तुम्हें सोने-चाँदी से लाद दूँगा। सरोज, भाग्य बदलता है, तो बहुत जल्दी। आदमी जब तक कोशिश नहीं करता, कुछ भी नहीं होता। कहो, तुम खुश तो हो?

उत्तर में सरोज पति के वक्ष से लग जाती। वह कहती कि खुश, ऐसी खुश कि जिसका नाम नहीं। तुम बहुत देर लगा देते हो बाहर, मेरी जान सूख जाती है। हम लोग सबेरे रोज नियम से जमुनाजी चला करें। वहाँ से लौट मैं तुम्हारे लिये नाश्ता बनाऊँ। तुम जब-तक साग-सब्जी ले आओ। फिर मैं जल्दी-जल्दी खाना बनाऊँ। भोजन कर पान चबा, तुम घर से निकलो, तो लोग कहें कि हाँ, कोई गृहस्थी जा रहा है। सायं को जल्दी-से-जल्दी घर आ जाओ। मैं तुम्हारे कपड़े उतारूँ, तुम्हारे जूतों के फीते खोलूँ। फिर जो कुछ नमक-भूसी दिया है भगवान ने, जलपान कर मैं तुम्हारे साथ घूमने निकलूँ। आकर फिर खाना बनाऊँ और जब तुम सोने चलो तो तुम्हें मीठा-मीठ गुनगुना दूध पिलाऊँ। अन्त में दाबने बैठूँ पैर तो सवेरा कर दूँ। हमारी दुनिया बहुत तेजी के साथ बदल रही है जयन्त। हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं।

लेकिन जयन्त सोचता अकेले में कि भुलावा एक ऐसा तीर है जो हवा में उड़ा करता है और फिर जिसके चुभ जाता है, उसके हृदय के दो टुकड़े कर देता है। नफरत-ही नहीं हो जाती इन्सास को, एक-दूसरे को छोड़ देता है। मेरी कृति सरोज क्या जाने? मेरी परिस्थितियों को वह क्या पहचाने? आज मैं राजा हूँ बिना छत्र का उसकी दृष्टि में। कल को मैं उसी की निगाहों में पतित हो सकता हूँ। भगवान तू सुख के सपने क्यों दिखलाता है? उन्हें सार्थक क्यों नहीं करता? खैर, कुछ भी हो, जब तक मेरी अन्तिम श्वांस बाकी है, मैं सरोज के लिये सब कुछ करूँगा और अगर मौका आया तो उसके

निमित्त मैं हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ जाऊँगा। सरोज मेरी दुनिया ! मेरी जिन्दगी !! मेरी माटी की गुड़िया !!!

१६



साँझ का समय; नयी देहली जवान हो रही थी। रीगल टाकीज के पोर्टिको में एक भारी भीड़ जुड़ रही थी। टेलीविजन का एक बड़ा-सा केस रक्खा था। उसमें स्क्रीन पर चलचित्र की ही भाँति अभिनय चल रहा था। पात्र सजीव जैसे थे। ग्राम पंचायत का बड़ा ही सुन्दर दृश्य था। लोकई काका बड़ा-सा साफा बाँधे झुनिया जमादारिन से कह रहे थे कि क्योंरी बाल्मीकि की बेटी तूने मनोहर पांडे के कुयें से पानी क्यों भरा। मनोहर पांडे आग-बबूला हो रहे थे और पंचायत के सभासद हँस रहे थे। वे कह रहे थे कि वह जाति-पाँति का भेद अब इस देश में चलने का नहीं। यह जग रहा है और बहुत जल्दी आगे आ रहा है संसार के। भारत के रहने वाले सभी भारतीय हैं। हम अछूतों की संज्ञा देकर अपने भाइयों को हतोत्साहित नहीं करेंगे। उन्हें आगे बढ़ायेंगे, उन्हें सिर आँखों पर उठायेंगे। कनाट-सर्किल में दीवाली का त्यौहार मनाया जा रहा। वहाँ साल में तीन-सौ-पैंसठ दिन दीवाली रहती। वहाँ की रौनक आदमी को वेकाबू कर देती। वहाँ चहल-पहल ही नहीं, एक अजीब नजारा होता है, जो देखते-ही बनता है। जयन्त देर तक वहाँ बैठा रहा। फिर आया रीगल टाकीज के पोर्टिको में, तब टेलीविजन पर एक ग्रामीण-सुन्दरी नृत्य कर रही थी। वह गा रही अपने समाज का एक प्रणय-पूर्ण गीत—"तेरी जरि जाय लम्बरदारी, मोहे कुरती सिलादे ट्यूड की।"

जयन्त भीड़ में घुसा और घुसता-ही चला गया। आज के आधुनिकतम फैशन ने गिरहकटों की राह बहुत कर दी है। वाबू लोग उस पैंट को

अच्छा नहीं समझते जिसमें पीछे जेब नहीं होती। उनका पर्स, मनीबैग उसी में रहता। उसमें सुन्दर-सा बटन लगा रहता था खींचने और बन्द करने की जंजीर। एक महोदय चुपचाप खड़े थे। उनकी जेब से पर्स बाहर झाँक रही थी। जयन्त की निगाह उसी पर लगी थी। मौका-पा उसने पर्स जेब से निकाल अपने कब्जे में कर ली और जल्दी से भीड़ के बाहर आने लगा, तो एक कांस्टेबिल ने पकड़ा उसका हाथ। बोला—"चलो मेरे साथ थाने। शरीफ होकर यह काम करते हो? मैंने अपनी आँखों देखा, तुमने उस आदमी की जेब से मनीबैग निकाला है और वह तुम्हारे पास है।"

जयन्त हक्का-बक्का रह गया। उसके काटो तो बदन में लोहू नहीं। वह निरुत्तर रहा और उसकी उस दुर्बलता का लाभ उठाया सिपाही ने। वह बोला—"लाओ, पर्स मुझे दो, नहीं तो अभी मैं तुम्हें पुलिस की हिरासत में देता हूँ।"

मरता क्या न करता; जयन्त ने पर्स सिपाही को दे दिया। दोनों कनाट-सर्किल के हरी घास वाले मखमली बिछौने पर आये, सिपाही ने पूछा कि कहाँ रहते हो। इस फन में कब से उस्ताद हुए। तुम्हें मालूम नहीं बिना पुलिस से सिरकत किये गिरहकट अकेले बाजी नहीं मार सकता। पर्स को दो फंक, इसमें अस्सी रुपये हैं। फिफ्टी-फिफ्टी पार्टनर, कल फिर आना।

जयन्त को जैसे जान मिल गई और एक सहारा भी कि हाँ जब मैं पुलिस से मिलकर काम करूँगा, तो मेरा बाल भी बाँका नहीं होगा। खूब रिश्वत चलती है हर विभाग में। भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। रिश्वत दो और चाहे जो कर उठाओ।

अब जयन्त नित्य कनाट प्लेस जाता। वह कभी ओडियन टाकीज के क्यू में लगा नज़र आता तो कभी रीगल टाकीज के हाल में। स्टेडियम में भी वह प्राय: देखा जाता और कनाट-सर्किल तो चिड़िया परखने की खास जगह थी। उसकी पुलिस से पटती थी और रिश्वत के नाम पर भारत की पुलिस जितनी बदनाम है, उतनी अन्य देश की नहीं।

इस तरह जयन्त लोगों की जेबें साफ करता। वह सरोज के लिये साड़ी

ले जाता और कभी छोटा-मोटा जेवर। वह निश्चिन्त-सा हो गया था; क्योंकि बुराई उसका साथ दे रही थी और वह बुरा-भला बना था।

भारत की जो ख्याति देश-विदेशों में है, वह उसकी उन्नति की परिचायक है; लेकिन गृह-मन्त्रालय उस व्यवस्था से बहुत पीछे है। देश की अन्त:स्थिति अच्छी नहीं। अंग्रेजों के जाने के बाद भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है। घूसखोरी एक आम-प्रथा बन गई है और पुलिस विभाग निकम्मा। इस तरह जो पेड़ ऊपर से हरा-भरा और फाला-फूला नजर आता हैं, उसकी जड़ों में पड़ रहा है आलस्य और अनीति का तेजाब। पेड़ खोखला नहीं होगा, एक दिन उसकी जड़ें ही उसका साथ छोड़ जायेंगी। अत: यह अत्यावश्यक है और गणतन्त्रीय भारत के प्रत्येक बच्चे-बच्चे का फर्ज है कि वह प्रजातन्त्र के पवित्र पौधे को अपने खून-पसीने से सींचे। वह माटी को सोना बना दे और पानी अमृत। सोने की चिड़िया के ऋद्धि-सिद्धि के पंख लगा दे। देश को अपनी देह समझ ले और धरती को माँ। भारत माता अब भी पुकार-पुकार कर कहती हैं राम कहाँ गये, कृष्ण, क्या तुम सो गये और महात्मा गाँधी तुम्हारी अहिंसा कार्य में कहाँ बदली। वह उपमा और उदाहरण की वस्तु रह गई।

जयन्त जब सड़क पर चलता, तो उसकी निगाहें सतर्क रहतीं। वह बस अथवा स्कूटर-रिक्शे पर यात्रा करता, तो हमेशा यही सोचा करता कि आज कोई मोटी मुर्गी फँसे। वह सोचता कि परिस्थितियाँ किस तरह सज्जन को दुर्जन बना देती हैं। समस्यायें किस तरह साँसों से नाता जोड़ लेती हैं और अनहोनी होनी का चोला पहन कहती है कि मैं मांगलिक प्रतीक हूँ। सहयोग किसे मिलता दुनिया में और सहकारिता का तो नाम ही केवल शेष रह गया है। मैंने अच्छाई की ओर कदम उठाने की कोशिश की। परिणाम यह हुआ कि भूखों मरने की नौबत आ गई। इसका मतलब इस कलयुग में नेकी कुछ नहीं, बदी का ही बोलबाला है।

आदमी जब एक बार गलत कदम उठाता है, तो पाप उसके सिर पर चढ़ कर बोलने लगता है। वह कहता हैं कि दो कदम और ऐसे ही जब व्यक्ति एक बार झूठ बोला लेता है, तो सौ-सौ झूठ और सफेद झूठ बोलने का वह अभ्यस्त

हो जाता है। आदमी जब गुनाह कर लेता है, तो उसके अन्दर का इन्सान मर जाता है। ऐसे ही जयन्त हो गया था परिपक्व। वह परिणाम नहीं सोचता और मंजिल पर मंजिल तय किये चला जा रहा था। संगति समाज की कसौटी है। आदमी के उत्थान और पतन की टेढ़ी-सीधी राह। वह संगति ही जयन्त को ले जाती बार में। जब वह पीकर आता, तो सरोज से झगड़ा होता। वह हैरान थी कि जयन्त पर वह कौन-सा भूत सवार हो गया। वह उससे कुछ पूँछती और समझाने की कोशिश करती, तो जयन्त जाता चिढ़। वह उस पर हाथ छोड़ देता।

इस प्रकार दाम्पत्य जीवन एक विषमता का प्रतीक बन गया था। सरोज अपनी मन:स्थिति से ले परेशान थी कि क्या सोचा था, क्या हो गया। जयन्त आदमी नहीं हैवान निकला।

और जयन्त सोचता कि कहाँ से मैंने बैठे-बैठाये सिर पर बला मोल ले ली। औरत वह परीक्षा है जो दिन-रात देनी पड़ती है सरोज वह कहानी है जो हमेशा ताजी रखनी पड़ती है।

और सरोज सोचती कि जयन्त मेरी जिन्दगी का सहारा ही नहीं, वह एक ऐसी मसाल है जो तेल से नहीं, घी से नहीं मर्यादा के पानी से बनती है। जयन्त मेरा लोक है, मेरा परलोक जिन्दगी एक आभा है और आदमी एक झूठी काया। काया-माया को लेकर इन्सान जिन्दा नहीं रहता। ओह जिन्दगी ! तू किसी की नहीं। न दोस्त की न दुश्मन की। तू उसकी जो तेरा नहीं। तू एक मृग-मारीचिका है। तू क्षितिज की कहानी है। तू रौनक और रंग नहीं, केवल एक भ्रम है।

इस तरह सोचा करता जयन्त। अब उसे क्रोध बहुत आने लगा था। उसकी गुस्सा चरम-सीमा पर पहुँच गई थी।



मृत्यु के बाद व्यक्ति का जो मूल्यांकन किया जाता है वह अक्षरसः सत्य होता है। जो हँसते-हँसते मिट जाता है उसी की पीर युग-युग तक पुकारी जाती है। जो अपने को उत्सर्ग कर देता है समाज की बलिवेदी पर, उसी का परीक्षण होता है और वह अधिकारी बनता है ऐसे वर्ग का जो समाज के लिये एक कहानी है नई और पुरानी।

गाँधी मेले का आयोजन दो अक्टूबर को महात्मा गाँधी-पार्क में होने जा रहा था। लाऊड-स्पीकर निरन्तर बज रहा था। वह गा रहा था—"इस धरती को तिलक करो, यह धरती है बलिदान की, आओ बच्चो तुम्हें दिखायें झाँकी हिन्दुस्तान की।

जयन्त सब देखता; वह गहरी चिन्ता धारा में डूब जाता। वह सोचने लगा कि जब तक जिन्दगी किसी के काम नहीं आती वह असफल-ही रहती है। जिन्दगी जिन्दा का दम भरती है। वह जोर-जोर से कहती कि जो कुछ हूँ सो मैं। भला कहीं दूध और घी भी नदियों में बहाया जाता है, पहाड़ों पर चढ़ाया जाता है।

वह दिन बीता, रात ने भी करवट बदली और सवेरे की जब छोटी-छोटी आँखें खुलीं ठंडी तो जयन्त नीम के पेड़ के नीचे बैठ यह सोचने लगा कि आज गाँधी-जयन्ती है, गाँधी पार्क में बहुत बड़ा मेला लगेगा। उस मेले में धनिकों का-ही नहीं, गरीबों का भी समाज जुड़ेगा। क्या यह मेला सुख का प्रतीक नहीं? क्या हजार-पाँच-सौ की आमदनी नहीं? दो अक्टूबर का दिन हिन्दुस्तान में ऐसी आभा लेकर आता जिससे दिन नहीं रात भी आलोकित हो उठती है। लाउडस्पीकर ठीक चाँदनी चौक के चौराहे पर अपनी धुनि गा रहा था, "सुनो-सुनो ऐ दुनिया वाले बापू की यह अमर कहानी। वह बापू भी पूज्य है इतना, जितना गंगा माँ का पानी।"

और चाँदनी चौक स्टेशन के भव्य हाल में जो स्वर लहरी गूँज रही थी

वह थी इस प्रकार—"रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम।"

बच्चे अलग मगन थे; जवान झूम-झूम रहे थे और बूढ़े कह रहे थे कि इस राग में कितना दर्द है और जब एक जिन्दगी में दर्द नहीं मिलता, वह अधूरी-ही रहती है।

जयन्त सरोज के साथ मेले में आया। यह मेला साधारण नहीं राजधानी देहली का था। यह अद्वितीय था। सारे-का-सारा गाँधी-पार्क भीड़ से भर रहा था। एक तो इतना बड़ा पार्क कि मीलों लम्बा। दूसरे बेमिसाल। वहाँ एक ओर ताजमहल के कुंजों की झाँकी मिलती थीं, तो दूसरी ओर छूट रहे थे। फौव्वारे शालीमार या विशाल बाग के जो जहाँगीर ने बनवाये थे लाहौर और काश्मीर में। मुगलों की बागवानी की स्पष्ट छाप थी इस बाग में; क्योंकि रईसत उनको विरासत में मिली थी। जनपथ-रोड पर कैम्प लगे थे मैटिनी शो चल रहे थे। नगर पालिका के विशाल हाल में जगह-जगह स्वांग और तमाशे हो रहे थे। हार्डिंग-लायब्रेरी तक मेला देखते ही बनता था। होटल इण्डिया इस तरह सजा था मानो रात की दुलहिन। सामने स्टेशन अपनी भव्य इमारत लिए दर्शकों से यह कह रही थी कि यह मुगलों की देहली नहीं अंग्रेजों की भी रानी नहीं, यह है प्रजातंत्र की प्यारी पुत्री। इसका नाम जंक-शन देहली है।

सरोज और जयन्त दोनों मेले की भीड़ में घुस रहे थे। सहसा भीड़ का एक रेला आया दम्पत्ति पृथक-पृथक हो गये तभी एक रईस-जादे की जेब साफ कर दी जयन्त ने। यह नौरंग प्लासटिक-मिल का मैनेजर था। इसका नाम कुमार माधव था। वह अपनी पत्नी सुनीता के साथ मेला देखने आया था। उसने फौरन ही पकड़ लिया जयन्त का हाथ और जोर से चिल्लाया—"पुलिस ! पुलिस !!"

अवसरवादी पुलिस ऐसे मोके नहीं चूकती। वह फौरन ही मौके पर आ गई। सरोज ने देखा, उसकी आँखें फट गईं जब जयन्त को हथकड़ियाँ पहनायी जा रही थीं लेकिन खूब हथकड़ियाँ बन्द भी नहीं हो पायी थीं कि उसने दोनों हाथ दे मारे सिपाही के सिर पर। उसका सिर फूट गया। वह

भागा, दूसरे कांस्टेबिल ने उसका पीछा किया, तो खिसियाकर जयन्त ने उसके छुरा भोंक दिया, वह भाग गया सरोज रोने लगी यह सब देखकर, तो कुमार-माधव उसके पास आये। वे बोले—"रो मत बहन। बुरा आदमी जब पल्ले पड़ जाता है।" तो जिन्दगी भर ऐसे-ही देखना पड़ता है। वह पति नहीं, तुम्हारा दुश्मन है।

सरोज सुनती रही, वह सिसकती रही और मेला अपनी भरपूर जवानी पर था। उसमें रंगत आ रही थी, रौनक निखार पा रही थी और जन कोलाहल था इतना तीव्र कि एक-दूसरे की बात नहीं सुन पड़ती। लोग आते, बापू की काँसे की मूर्ती पर श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते। वे उस मनोरम उद्यान को देखते जो राष्ट्रपिता के निमित्त लाखों की पूँजी व्यय करके बनाया गया था। सरोज जैसे बहरी हो गई थी। वह गूँगी भी हो गई थी। उसके मन में हूक उठती। वह भीतर-ही-भीतर कहती कि तो क्या ये लोगों की जेबें काटते थे। वे मुझसे झूठ बोलते थे। अपनी सरोज से झूठ। उन्होंने इस आदमी की जेब काटी। वे पकड़े गये। एक सिपाही का हथकड़ियों से सिर फोड़ दिया। दूसरे के छुरा भोंक कर भाग गए। अगर वे गलत नहीं थे, तो ऐसा क्यों किया। गलत आदमी-ही बदला लेने की कोशिश करता है।

कुमार माधव सरोज के पास खड़े थे और उसकी सिसकियाँ थम ही नहीं रही थीं। वह बोलती कुछ भी नहीं, बड़े-बड़े आँसू बहा रही थी।

२१



पुलिस-इन्स्पेक्टर ने कुमार माधव के बयान लिख लिये। उनका पता-ठिकाना भी। इसके बाद रेडियो-पेट्रोल-कार चली गई। वह भागे हुए मुलज़िम का पीछा करने लगी। कुमार माधव ने जब आश्वासन पर आश्वासन

दिया, तो सरोज ने बतलाया कि वह एक शराबी बाप की बेटी है। जयन्त उसका एक मात्र सहारा था वह उसे बहुत प्यार करता था। तभी वह तंग आकर उसके साथ देहली चली आई। यहाँ वे दोनों पति-पत्नी के रूप में रहने लगे। दोनों बहुत सुखी थे। वे गरीबी से अमीरी की ओर बढ़े। लेकिन वह यह नहीं जानती थी कि उसका पति गिरहकटी करता है। उसे इस छल प्रपंच का कुछ भी पता नहीं था। वह तो सीधी-साधी थी।

कुमार माधव ने सरोज को बहुत समझाया। उसे सांत्वना दी और कहा कि बुरे आदमी की पत्नी बुरी नहीं कही जा सकती। बुराई एक में होती है, परिवार के प्रत्येक प्राणी में नहीं। बाल्मीकि की पत्नी भी तो थी। वह कितनी धर्मपरायण थी जब कि पति हिंसक था और खूँखार। कोई बात नहीं तुम बेफिक्र रहो। जयन्त पकड़ में आ जाये, मैं उसकी जमानत कर लूँगा। उसकी बुराई के दो ही कारण हो सकते हैं—गरीबी या मजबूरी।

सरोज को कुमार माधव की बातों से कुछ-कुछ तसल्ली मिली वे उसे अपनी कार पर बैठा उसके घर तक छोड़ने आये। तब मेले की उस विशाल भीड़ ने कहा कि आदमी देवता है देवता। यह दोस्त और दुश्मन में कोई फर्क नहीं समझता।

जब कुमार माधव चले गये, तो सरोज सोचने लगी कि सपने में भी यकीन नहीं था कि वे मुझसे झूठ बोलेंगे। मैं यह जानती भी नहीं थी कि लोगों कि जेबें कैसे साफ की जाती हैं। दूसरे को धोखा कैसे दिया जाता, उसे ठगा और छला जाता है। क्या इतने कायर और इतने बुझदिल थे वे कि रोटी और कपड़े भर को कमा नहीं सकते। सरोज उनके साथ रानी बनकर नहीं, दासी बनकर आई थी, यह बात वे क्यों भूल गये।

दिन के बाद रात हो आई। तारों की आकाश में जमात जुड़ी और सरोज के घर में रहा अँधेरा। उसने बत्ती नहीं जलाई। वह रोती रही सिसकती रही और मन-ही-मन अपने पर खीझती रही। उसे रह-रहकर लग रहा था कि घर छोड़कर उसने गलती की। जो लोग बिना सोचे, बिना बिचारे कदम निकाल देते हैं, उनकी यही गति होती है।

सोचते-सोचते सरोज कभी-कभी उठकर बैठ जाती। वह माथे पर हाथ दे मारती और कहती कि हाय री तक़दीर तू किसी की साथिन नहीं। जो विधाता लिख देता है, तू वहीं करके दिखलाती है। कैसा होगा बाप ? मैं उसे छोड़ कर चली आई। जयन्त पर विश्वास किया, लेकिन वह पानी का बुल-बुला आज मेरे सामने ही बैठ गया। इसका मतलब तो यह हुआ कि जो लोग बिगड़ जाते हैं, वे कभी सुधरते नहीं। उसने सोना पहिनाया मुझे, साड़ियों से लाद दिया। उसी का नतीजा निकला यह कि आज मेरे सामने जेब काटी भले आदमी की। रंगे हाथों पकड़ा गया। उसमें तनिक भी दया नहीं। उसने सिपाही के पेट में छुरा भोंक दिया। वह भाग गया मुँह छिपा और मुझे दीन दुनिया के सहारे छोड़ गया। वह जिन्दगी ले गया, मौत दे गया। वह तारा शुक्र की तरह चमकता हुआ निकलता था, अपने आप ही अस्त हो गया। वह पकड़ा जायगा, उस पर मुकदमा चलेगा, सजा जरूर होगी। तब तक क्या मैं यह सोना बेच-बेचकर खाऊँगी। यह चोरी का धन है। मैं इसे छुऊँगी भी नहीं। मैं गरीब की बेटी हूँ। मेरी नीयत खराब नहीं। जो लोग बेईमानी का धन्धा करते हैं, वे मिनटों में राजा और रंक बनते हैं। पुन्य की जड़ पाताल के चरण चूमती है और पाप का पौधा है बिना जड़ का, उसमें फल लगते हैं लेकिन फल खट्टे और कडुवे होते हैं, फूलों में दुर्गन्ध आती है। हाय-हाय पापी जयन्त तूने यह क्या किया ? मुझे नहीं मालूम कि परदेश में ईमान ही आदमी का साथ देता है। वही उसका बाप होता है, वही भाई और वही उसका परि-वार बनता है।

सहानुभूति हो आई थी इसीलिए सरोज के साथ साथ रात भी रो रही थी। उसके नयन दुखने लगे थे जब कि सरोज की आँखें लाल ही नहीं वह सूज गई थीं। वह रोती रही, जागती रही। जब कि कमरे के किवाड़े रात भर खुले पड़े रहे इस आशा पर कि आदमी जब नेक-बद करता है, तो उसको अपना ही घर सूझता है। हो सकता है जयन्त आए और वह मुझे यहाँ से लेकर दूर चला जाय। रास्ते में अगर कोई पुलिस का सिपाही मिला या पीछा किया तो मैं अपने सब गहने दे दूँगी और जयन्त से कहूँगी मजदूरी करो। चोरी

करना हराम है महा पाप ।

लेकिन रात चली गई, सवेरे के भी शिशु कदम उठने लगे प्रभाती के गीत गाये पक्षियों ने । हवा ने उन पर डोल-डोल अपनी मन-भावन शहनाई बजायी, तब सरोज ने मूंद ली आंखें । उसने सेज बिछाई थी अपने पिया के लिये उसी तकिए पर सिर गड़ा, फूट-फूट कर रोने लगी ।

तभी सहसा उसके कानों में आवाज पड़ी—"जयन्त है घर में ?"

और जब सरोज उठकर चौखट पर गई, तो देखा पुलिस के दो सिपाही खड़े थे । वे पूछ रहे थे कि वह घर आया या नहीं ? सरोज ने कहा कि नहीं और वह फिर बिलख-बिलख रोने लगी ।

इस तरह घर पर पुलिस का पहरा लग गया और फरार मुलजिम की तलास बड़ी सरगर्मी से होने लगी ।

२२



गांधी-जयन्ती के मेले से जिस समय जयन्त सिर पर पैर रख कर भागा पैदल सिपाहियों ने उसका पीछा किया । उसके बाद जीप गाड़ियाँ छोड़ीं जबकि मुलज़िम अदृश्य हो चुका था । पैदलों में सिपाही थे चीफ सब-इन्स-पेक्टर भी । वह भागा, लालकिले के मैदान में आया । जैसे-ही वह क़िले की गहरी खाई में कूदा, उस पर गोलियों की बौछार होने लगी । वह लेटे-लेटे आगे सरका तब तक पुलिस के कुछ सिपाही खाई में उतर आये । तब वह जान लेकर भागा और जल्दी से ऊँची सड़क पर आ एक जा रहे ट्रक की जंजीर पकड़ कर लटक गया । पुलिस पीछे थी । पुल पर यातायात रुका था । पुल पर क्यू लग गया । तब जयन्त भागा । पुलिस अब उसके बहुत करीब आ गई थी । भरी बरसात थी, जमुना की चढ़ी जवानी । वह पुल पर आ जमुना में

कूद पड़ा। तैरना बहुत अच्छी तरह जानता था। अब जीप गाड़ियाँ भी बीच आ गई थीं। मुलज़िम बीच धार में बह रहा था। उस पर गोलियाँ-ही-गोलियाँ बरस रही थीं। फौरन-ही वायरलैस गाड़ी को सूचना दी स्टीम बोट छोड़ दिया गया उसके पीछे एक नहीं दो-तीन और छूटे। लेकिन वाह रे जयन्त ! जैसे उसने जलसमाधि ले ली थी। स्टीम-बोट मीलों का चक्कर काट आया जबकि मुलज़िम बाँध के मोड़ पर आ, चुपके से नहर में प्रविष्ट हो, सूखी धरती पर आ गया। वह एक पेड़ पर बैठा दूर से तमाशा देख रहा था पुलिस मुँह की खाकर लौट रही थी। स्टीम-बोट अभी पानी में घर-घर बज रहे थे। दिन के बाद रात तो आ गई थी किन्तु आज वह उदास थी। उदास इसलिएथी क्योंकि आज अशुभ की शृष्ठि हुई थी। जमुना का वह किनारा अत्यन्त वीरान और सुनसान था। गाँधीनगर, रामनगर, कृष्णानगर की बस्तियाँ जुगनू-सी चमक रही थीं। उससे काफी दूर दिखलाई पड़ रहा था शाहदरा। पेड़ों पर बैठे बन्दर हूँ-हूँ करते। सियार हुआने से बाज नहीं आते यह सब हो रहा था पहले पहर में ही जबकि नौ-ही बजे थे। जिस प्रकार अँधेरा होते ही वन्य पशु वन के सम्राट हो जाते हैं। यह उनकी खुशी का पहला दौर होता है, उसी तरह यहाँ के भी दिन में गुप्त रहने वाले प्राणी मन बहलाने के लिए निकल पड़े। अभी सारी रात उनके लिये बाकी थी। जयन्त सोचने लगा कि ग्यारह-ग्यारह बजे रात तक जमुना पार बसें जाती हैं। बस्तियाँ गुलजार मिलती हैं फिर यहाँ इतना सन्नाटा क्यों ? इतना डर तो निगमबोध घाट पर भो नहीं लगता, जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं।

जयन्त पेड़ से उतरा। वह धीरे-धीरे एक अनिश्चित दिशा की ओर चला। वह चलता गया उसमें कम्पन्न होता गया और वह सोचता गया कि सरोज का क्या हुआ होगा। वह क्या सोचती होगी अपने मन में। मैंने उसके सामने-ही तो सिपाही के छुरा भोंका था। आह नारी, तू कितनी मजबूर है, पुरुष की दासी। तू जिसे देवता समझती थी सरोज वह तेरी दृष्टि में क्या-से-क्या बन गया। मुझे तेरी चिन्ता नहीं गिरफ्तारी होने की भी परवाह नहीं। तुम्हारा क्या होगा सरोज। पुलिस तुम्हें जरूर हैरान करेगी। परदेश में कोई

साथ नहीं देता और वतन में भी मेरा अपना कौन था। सभी मुझे गिरी निगाहों से देखते थे।

अँधेरा काला-काला लग रहा था। हहर-हहर जमुना बह रही थी। फलक पर सितारे रो रहे थे रुपहले आँसू और सन्नाटा कर रहा था साँय-साँय। कभी कोई उल्लू बोलता तो जयन्त के कान खड़े हो जाते, कभी कोई साँप या बिच्छू जमीन पर दौड़ता, पत्ते खड़खड़ाते तो उसे लगता कि कहीं पुलिस तो नहीं आ गई। वह घूम कर पीछे देख लेता। कभी बिज्जो बज-बज करती और कभी चिड़ियों की चीं-चीं वातावरण को भयानक बना देती। यह सब होते हुए भी जयन्त आगे-ही बढ़ रहा था। दूर पर उसे रोशनी दिखलायी दी एक लालटेन जलती हुई। अब शहर की बत्तियाँ पीछे छूट चुकी थीं। यह ग्रामीण इलाका था साथ-ही स्वर भी उस रात के सन्नाटे में गूँज रहे थे राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है। हरि का नाम सत्य है गोपाल नाम सत्य है।"

इतनी रात को लाश ? क्या रात को भी मुर्दे श्मसान पर लाये जाते हैं ? हाँ हैं कुछ ऐसी जातियाँ जिनके यहाँ जिस समय मौत होती है मुर्दनी उसी समय उठाई जाती है। बंगाली समाज में तो यह मैंने अपनी आँखों देखा। मुसलमानों के कब्रिस्तान में रात को कब्रें खोदते पाया। इन लोगों के यहाँ ऐसी रीत होती है। चलूँ पेड़ पर चढ़ जाऊँ, किसी की नज़र में आना ठीक नहीं।

यह सोच जयन्त एक पेड़ पर चढ़ गया मुर्दनी उसके करीब और करीब आती गई।



जयन्त पेड़ पर बैठा रहा। बेचारे ग्रामीण गरीब थे, उनके पास इतना साधन नहीं कि मुर्दे को जला सकते। लाश को पहले जमुना जल में नहलाया फिर अर्थी फेंक दी गई एक ओर और कफन उसकी देह में रह गया। मिट्टी के चार घड़े आये थे और चारों में बालू भरी गई। दो घड़े बाहों में और दो जाघों में मुर्दे के बाँध दिए गये। महापात्र आया, उसने संकल्प और गोदान करवाया। वैतरणी भी ली उसने। तब मृतक का बाप रो दिया। उस समय वहाँ थोड़ी-सी लकड़ियाँ जलाई गई थीं जिससे प्रकाश हुआ। जयन्त ने देखा मरने वाला नौजवान है और हट्टा-कट्टा। उसका बाप रो रहा था जिसका करुण क्रन्दन उस वीराने में गूँज रहा था—"हाय पूत! हाय मेरे लाल! तू मुझे किसके सहारे छोड़ गया। दोपहर को मेरे बेटे ने साथ खाना खाया था। तीसरे पहर हँसी-खुशी बाजार गया। वहाँ से साग-सब्जी लाया और घर आते ही उसे होने लगी उल्टी-टट्टी। मैं दवा भी नहीं कर पाया, मेरा पूत चल दिया नाश हो इस हैजे का! बुरा हो भगवान का!! हाय! मैं क्यों रह गया मेरा जवान बेटा उठ गया। गरीबी तू भी बदला ले ले। चिनौती है इसे मैं दाह क्रिया भी नहीं कर पाया अपने लड़के की। मेरे पास पैसे नहीं। जमुना मैया मुझे मौत दे। हाय मैं लुट गया, मैं कहीं का नहीं रहा।"

लकड़ियाँ जल रही थीं, उजाला हो रहा था और मुर्दे का बाप बिलख-बिलखकर रो रहा था। जयन्त देख रहा था कि उसका चेहरा बिल्कुल उसी के अनुरूप है। वह उससे मिलता-जुलता है। मुर्दे की देह भी भारी है ठीक जयन्त की-ही तरह। वह मन-ही मन रो दिया और दुख करने लगा कि भगवान ऐसा किसी का भी न हो कि बाप के सामने उसका जवान बेटा दुनिया से उठ जाय। आह जिन्दगी! आह मौत! इस मौत का नाम ही क्यों नहीं मिटा देता है ईश्वर दुनिया से। जब जन्म होता है और लड़की की जगह अगर लड़का पैदा होता है, तो खूब खुशियाँ मनाई जाती हैं। ढोलक मँजीरा

बजता है। नेग और निछावरों की भी कमी नहीं रहती। गरीब यह कर लेता है और अमीर के दरवाजे पर नौबत बजती है। राजा-महाराजाओं के यहाँ दगती हैं तोपें। जश्न मनाये जाते हैं और रात में दिन नजर आते हैं। लेकिन जब जनाज़ा उठता है, अर्थी चलती है और मातम के बोल बुलन्द होते हैं, तो शाहंशाह भी पैदल चलता है उस मातम पुरुषी में। अमीर आँसू बहाता है और गरीब छाती धुनता है। मौत का नजारा ही इतना दुखद होता है कि देखने वालों के आँसू आ जाते हैं। देखो यह बुड्ढा कैसा जार-बेजार हो रहा है। आह मौत। आह जिन्दगी ! नहीं सोचता मनुष्य कि जन्म आदि है और मौत अन्त। आदि यात्रा का प्रतीक है, जीवन यात्रा अन्त का पूर्ण विराम है। मौत के आगे कोई चारा नहीं, उसका कोई इलाज नहीं। मौत से ही तो डरता है इन्सान। वह अन्त तक जिन्दा रहने का इच्छुक बना रहता है।

इधर जयन्त ऐसा सोच रहा था, उधर लाश को उठाकर चार आदमी जमुना जल में प्रविष्ट हो रहे थे। वे घुटनों तक पहुँचे, फिर उनकी जाँघों तक पानी आया। कमर तक गहरे में वे घुस गये। बालू से भरे घड़े जमुना के गर्भ में औंधे करके गाड़ दिये गये। मुर्दा नीचे स्थिर हो गया। धार बहती रही जल छलछलाता रहा और अंधेरा उस मरघट से कहता रहा कि बस आधी रात हो फिर देखो यहाँ का दृश्य। यहाँ भूत हँसेंगे, पिशाच नाचेंगे। डाकिनी खप्पर लेकर इधर-उधर भागेगी। बैताल अपना राग अलापेंगे। इस मरघट पर मुर्दों की खोपड़ियाँ लड़ेंगी कि तू गरीब, मैं अमीर। मैं राजा तू रंक। यह श्मशान भूमि है। यहाँ दिन में भी भयानक लगता है।

और हवा वह मरघट के इर्द-गिर्द घूमती है। वह कहती है कि सुनो मेरा संदेश कि तुम्हारी मर्यादा है, तुम बहुत बड़े हो। यही वह जगह है, जहाँ आकर आदमी को ज्ञान उत्पन्न होता है। जब चिता की लपटें धू-धू करके जलती हैं, तब मनुष्य कहता है कि शरीर नाशवान है। और जब हाड़-माँस की देह का अन्तिम परिणाम सामने आता है राख, तो आदमी उच्छ्वास लेता है। वह कहने लगा है कि देह माटी की है, शरीर पानी भरी काया है और मन है एक स्वाति का पक्षी जो हमेशा प्यासा-ही रहता है, कभी तृप्त नहीं

होता।

मृतक को जल-समाधि दे, उसके परिवार के लोग रोते-कलपते चल दिये जमुना पूरे यौवन पर थी। उसकी जवानी ज्वार बन कर मचल रही थी और रात अँधेरी साँय-साँय के एक नहीं, अनेक साज ले, ऐसे वीभत्स रो रही थी जैसे कोई आसुरी नृत्य कर रही हो। जैसे प्रलय काली-मेंहदी लगा धरती पर विचर रही हो।

जयन्त पेड़ पर बैठा रहा; वह देखता रहा कि लकड़ियाँ बुझ गई हैं और लाल दहकते अंगारों पर राख की परतें जम गई हैं। हाँ, वह कण्डा अब भी धुआँ दे रहा था जो मुर्दनी के साथ आया था।

२४



सियार एक नहीं कई दिशाओं में 'हुआ' रहे थे। रात कभी झनझन करती और कभी साँय साँय। जमुना लहर-लहर कर शोर करती, तो कभी छल-छल और कल-कल करती हुई लहरें जब प्रवाह के वेग से गूँजतीं तो रोंगटे खड़े हो जाते, रात काँप जाती। जल में वृत बन जाता। वह खूब चक्कर काटता, जैसे धरती पर झंझावात मचलते हों। अँधेरा कहता कि देखो दुनिया-वालो यह आसमान नीला नहीं। इस पर भी कलिकाल का प्रभाव है तभी तो काला पड़ गया है।

इस तरह वह सूना प्रदेश सन्नाटे से संधि कर रहा था। मरघट इतना भयानक लग रहा था कि उसकी ओर देखते ही दृष्टि घूम जाती। तारे लग रहे थे ऐसे जैसे वे यम के दूत हों। आधी रात हो गई; जयन्त पेड़ से नीचे उतरा। वह चला मरघट की ओर। तब उसके पैर काँपे; उसकी धड़कन दुगनी बढ़ गई। अर्थी एक ओर पड़ी थी। उसने उसे उठाया। उसके बाँस

तोड़े। इस तरह उसने बुझ रही आग को फिर जिन्दा किया जिसमें लपटें उठीं। कछुये किनारे पर बैठे थे और तेजी के साथ पानी पर घर-घर करता हुआ जा रहा था एक मगरमच्छ। जयन्त निश्चिन्त था कि इस मरघट पर पुलिस नहीं आ सकती है। रात आधी हो गई है, इलाका वीरान है चलूँ मैं अवसर से लाभ उठाऊँ। इस युग का प्रत्येक व्यक्ति अवसरवादी है। मैं जमुना में उतरूँ और किसी तरह लाश निकाल लाऊँ। जिस तरह जानवर मरने के बाद भी काम आते हैं। उनके सींगों की कंघी बनाते हैं। उनकी हड्डियाँ चक्की से पीसते हैं। नमक और चीनी में मिलाते हैं वैसे-ही यह मुर्दा भी आयेगा मेरे काम। यह मेरी जिन्दगी ही बदल देगा।

जयन्त पानी में उतरा। पहले-ही असगुन हुआ। एक कछुआ उसके पैर के नीचे पड़ गया। वह घबड़ा कर अलग हट गया। लेकिन योजना उसको बल देती रही प्रेरणा उसकी दम भरती रही कि आगे बढ़ो जयन्त, मुर्दा ठीक तुम्हारे सामने है। कछुये जल से बाहर सिर निकालते फिर अन्दर कर लेते। लहरें काँप-काँप उठतीं। थपेड़े जमुना की जवानी से संघर्ष करते तब थप-थप की आवाज होती। पहुँच गया कमर तक जल में जयन्त। जल का प्रवाह उसे ढकेल-ढकेल रहा था। वह पैर से थाह लेता; मुर्दा कहीं भी नजर नहीं आया। एक घंटे से अधिक लग गया। वह थक गया, मुर्दा नहीं मिला। वह पैराक था डुबकी लगाने का भी उसे अच्छा अभ्यास था। उसने कहा—"लगाता हूँ गोता जमुना मैया। या तो मुर्दा दे या फिर मेरी भी जान ले ले।"

गोता लगाते-ही जयन्त हाथों से जमुना की तलहटी टटोलने लगा। देव-योग की बात उसके दोनों हाथ मुर्दे के कफन पर पड़े। कछुये घर-घर करके भागे। वे लाश को नोच-नोचकर खा रहे थे। उसने मुर्दे को उठाया। वह उठाये नहीं उठा। तब तक सूझ गई उसे एक युक्ति। उसने एक-एक करके बालू से भरे मिट्टी के घड़े पैर से फोड़ दिये। बालू पानी में मिल गई; लाश ऊपर आकर तैरने लगी। तब जयन्त उसके दोनों पैर पकड़ उसे किनारे की ओर खींच ले चला।

जयन्त पस्त हो गया था। उसका दम फूल रहा था। उसने लाश को

लाकर आग के पास डाला और वहीं बैठ, एक लम्बी-सी साँस ले सिर पर दोनों हाथ रख, धीरे-से बुदबुदाया—"मुर्दे भाई, मेरी लाज रखो। तुम मेरा उद्धार कर दो। मैं प्रेतों की पूजा करूँगा।"

बाँस चट्ट-चट्ट करके चटख रहे थे; आग जल रही थी। छोटी-मोटी लपटें भी उठ रही थीं। ऐं, यह क्या ? मुर्दे का मुँह ही कछुये खा गये। क्या चेहरे का गोस्त ज्यादा मीठा होता है।

जयन्त चौंका; वह डर गया। मुर्दे का मुँह वीभत्स हो गया था। न आँखें थीं न नाक। कछुये गोस्त नोच-नोचकर खा गए थे। जयन्त देर तक सोचता रहा, सहमता रहा, डरता रहा। फिर उसने मुर्दे की देह का कफन उतारा और उसको पहना। उसने उतार दिये थे अपने सब कपड़े पहले ही। वे सब कपड़े जयन्त ने लाश को पहना दिये। फिर वह चला निश्चिन्त होकर। तब उसके पीछे भूतों की आभा दौड़ी।

"ऐ सुनो ! ऐ जयन्त तुम भागते क्यों हो ? हम भूत हैं। पिशाच हैं। ए जयन्त, पीछे लौटो। योगिनी का खप्पर खाली है, उसमें अपना खून भर दो। जयन्त, ओ जयन्त !

जयन्त के पैर काँपते; हाथ हिलते। उसे ऐसा लगता कि भूत उसका पीछा कर रहे हैं। लेकिन फिर भी वह बढ़ा चला जा रहा था। वह सोच रहा था कि कामयाबी कयामत के बाद ही मिलती।

काली-पिशाचनी रात अब भी फुँकार रही थी। गगन पड़ गया था काला। वह भी भय की सृष्टि कर रहा था। तारे मातम मना रहे थे; क्योंकि उनका पति चन्दा मर गया था। अँधेरा जवान था और उसकी जवानी पूरे यौवन पर थी।



जयन्त चलता गया; पेड़ों के ऊपर गिदगिदाने गुर्राये । जमीन पर स्याही ने अपना प्रभुत्व दिखलाया और लेकर निकली भूखी आह । ऐसे ही साँप अमृत का पान करने आये । नदी के तट पर कछुओं ने आकर साँस ली रेत पर । मगरमच्छ भी सुसताये चुस्त होकर और रात की काली चादर का रंग धीरे-धीरे हल्का पड़ने लगा । जयन्त सोचने लगा कि सरोज कैसी होगी । वह किस परिस्थिति में होगी । मैंने एक दीपक जलाया था अपने सूने हृदय मन्दिर में । क्या दिया बुझ जायगा ? रोशनी अँधेरे में बदल जायेगी ? क्या सरोज मिट जायेगी और मैं जिन्दा रहूँगा । आह ! मेरी माटी की गुड़िया । आह सरोज ! आह जिन्दगी ! चिन्ता न करो सरोज । जयन्त जब तक जिन्दा है, तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता ।

इस तरह प्रियतम लौट पड़ा प्रीतमा के घर की ओर । तब रात जा चुकी थी, प्रभात आ गया था और सूरज अपनी किरणों से कह रहा था कि देखो तनिक भी मोह न करना धरती का । यह धरती एक जादू नगरी है । यहाँ के लोग जादूगर हैं । अपनी अवधि पर लौट आना । दुनिया सराय है, दुनिया फानी, दुनिया एक मेला । यहाँ के बाजार में सभी रंग बिकते हैं—कोई हल्का होता है कोई फीका । कोई चटक होता है और कोई तेज । रंग ही वर्ग है, वर्ग ही भेद और भेद ही एक समस्या । समस्या ही वह परिस्थिति है कि जिसे इन्सान जिन्दगी भर सुलझा नहीं पाता । समस्या जब जन्म लेती है तो आदमी चौंकता है और जब इसके अंकुर ऊपर उठते हैं, हवा में हिलते हैं, तो आदमी हो जाता है डावाँडोल । वह कहता है कि क्या करूँ और क्या न करूँ । यही परिस्थिति की बेटी है घबड़ाहट को जन्म देती है । यहीं मनुष्य को गुमराह करती है और जब जीवन-मरण की समस्या सामने आती है, तो आपनी आँखें मूँद लेता है । जिन्दगी की हर साँस एक कहानी है, जिन्दगी का हर उच्छ्वास एक अनुभव । आदमी का हर कदम एक छोटा-सा सफर है । आदमी छोटा ही

नहीं, वह कीड़े-मकोड़े के मानिन्द है।

इस तरह सोचता रहा और चलता रहा जयन्त। जब जमुना का पुल आया, वह एकदम चौंका, ठिठका और पीछे लौटा। वह सोचने लगा कि दिन में मेरा शहर जाना ठीक नहीं। रात ही गुनाह का साथ देती है और वही गुनाहगारों की रानी होती है। अँधेरा होता है काली करतूतों वालों का दोस्त। उजाला तो न्याय करता है, वही जिन्दगी का दर्पण होता है। तो मैं साधू बन जाऊँ। वह कोई मुश्किल नहीं। आजकल कम-से-कम दस प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो साधु के नाम पर जनता को धोखा देते हैं। यह कैसे सम्भव है? कहाँ से मृगछाला लाऊँ, कहाँ से कमण्डल। देखूँ बाहु में ताकत है या मर गई। मुर्दे को मैं अपने कपड़े पहना आया हूँ, यही कहा जायेगा कि जयन्त मर गया और अब दाबूँगा किसी साधू का गला। उसका कमण्डल, उसकी लँगोटी ऐसे ही मृगछाला आदि लेकर के शहर में प्रविष्ट होऊँगा।

जयन्त सोचता रहा। वह पुल के पीछे लौट पड़ा। आगे दूर बैठे एक महात्मा रेत पर समाधि लगाये थे। जयन्त ने जाते ही उनकी पीठ पर दो लातें मारीं, महात्मा घुनमुड़ गये उसने खोल लिया उनका गूँज का करधना। मृगछाला भी अपने कब्जे में की। कमण्डल हाथ में लटकाया। फिर वह चला सरोज के घर की ओर। मुँह पर दाढ़ी और बड़ी-बड़ी मूँछ लगी थीं। वह भीख ले आयी, एक कटोरी में चावल। योगी के लिये और जाते-जाते बोला कि अखण्ड सौभाग्यवती हो।

सरोज अपने में ही चिन्ता मग्न थी उधर जयन्त मार्ग-पर-मार्ग तय कर रहा था। वह फिर लौटता देहली की ओर सरोज के घर आकर भिक्षा माँगता। मन विरक्त होता, तो कोसों चला जाता और साँझ होते-होते फिर लौटता कि मेरी सरोज कैसी होगी?

प्यार का मोती जो ताल में रख जाता है, उसे हरदम चिन्ता लगी रहती है कि यह मोम का मोती नहीं, सच्चा प्रवाल है, हीरा और जवाहरात। यह दौलत इस देश का उपहार है, यहाँ हीरे की खानें हैं, तो सोने की भी कई एक।

जब साधु के भेष से काम नहीं बना, तो उसने पागल का स्वांग रचा। उसने चिथड़े पहने। वह सरोज के घर पर गया, घूमकर लौट आया। उसने देखा कि उसकी माटी की गुड़िया बिल्कुल मुरझा गई है। उसके घर से जैसे रौनक भाग गई है और सुनसान ने बसेरा कर लिया है। वह जब चावड़ी की सड़क से जामा-मस्जिद आया तो उसकी आँखें गीली हो आई थीं। वह सोच रहा था कि सरोज मेरी बात मानेगी नहीं। वह मेहनत और ईमानदारी पर आस्था रखती है और मैं एक दिन में ही धनी बनना चाहता हूँ। दोनों में अन्तर है। वह पूछेगी मुझसे कि तुमने सिपाही के छुरा क्यों भोंका। वह धिक्कारेगी मुझे। वह राजी भी नहीं होगी कहीं जाने को। मेरा जाना व्यर्थ है। जयन्त सोचता जा रहा था। लालकिले का मैदान आ गया था। वह धीरे-धीरे राजघाट की ओर बढ़ा।

तब जयन्त के मन में प्रतिक्रिया हो रही थी। वह कह रहा था स्वयं अपने अन्तर्वासी से कि दोषी नारी नहीं पुरुष ही होता है। स्त्रियों में स्वाभाविकता यह होती है कि वे धर्म के प्रति अडिग होती हैं। वे सच्चाई के घूँट पीती हैं मिथ्या से घृणा करती हैं। वे उस पुरुष को हेम-दृष्टि से देखती हैं, जो दूसरे को धोखा देकर पैसा पैदा करता है। मैं भी तो उसी श्रेणी में हूँ। मैंने जो सब्जबाग दिखलाये थे सरोज को, उन बागों में ठूँठ रह गये हैं। मैंने जो नये सपने की दुनिया संजोयी थी वह दुनिया अर्थी पर बँध गई है; मैंने जो लालसायें और कामनायें पाली थीं वे सब मेरा साथ छोड़ गई हैं; क्योंकि तकदीर हाथ में मेरे दुर्भाग्य का त्रिसूल लेकल आई है। दुर्भाग्य जिसे कहते हैं बदनसीबी, अब वही मेरे साथ है। समाज से मैं बहिष्कृत हो चुका, यही समझ लो। कानून से मैंने मुंह छिपा लिया, यही मान लो।

जयन्त चलता गया, जमुना का तट आया, तो वह कूल पर बैठ उन उत्तुंग लहरों को देखने लगा जो साँसों की तरह उठती थीं, गुणों की तरह बुझतीं जो फानी दुनिया की कहनी कह रही थीं। जो पानी थीं, जिससे दुनिया की प्यास बुझती है।

२६



सरोज गरीब बाप की बेटी अवश्य थी; लेकिन उसके विचार उच्च थे। और उच्च विचारों का ही आदमी प्रगति पर बढ़ता है। जिसमें महत्वाकांक्षायें नहीं होतीं, उसका आदर्श भी कुछ नहीं होता। वह व्यक्ति अपने लिये नहीं, समाज के लिए नहीं, दुनिया के लिए नहीं। वह स्वार्थ-सरिता में बहता है और स्वार्थों के लिए ही जीता है। किन्तु सरोज पराकाष्ठा को पहचानती थी, इसीलिए मर्यादा का मान रखती। वह दिन-पर-दिन अपने अपने अस्तित्व में ओज भरती। वह एक ओर लाज़ को आँचल की तरह संकोच से सँवारती, तो दूसरी ओर धर्म का तख्ता रख लेती सिर पर। जिस पर उसके भगवान बैठे होते। कर्त्तव्यपरायणता तो उसकी जिन्दगी का सर्वप्रथम पाठ था। पति-परायण भी थी वह सती-साध्वी। जगमग-जगमग करने वाले सूरज की वह बेटी थी। उसे पाप से बैर था और पुण्य से लगाव यही उसकी नारीगत मर्यादा थी।

जब जयन्त नहीं आया और उसका कुछ भी पता नहीं चला दो दिन हो गये, तो नौरंग प्लास्टिक-मिल के मैनेजर कुमारमाधव उसके घर आये। आते-ही बोले—"जयन्त का कुछ भी पता न चला सरोज। तुम्हारा जी ऊबता हो तो मेरे बंगले आ सकती हो। मुझे तुम पर दया आती है। तुम एक गलत आदमी की पत्नी हो।"

सरोज कुछ नहीं बोली। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी तो पेंतीस-छत्तीस वर्षीय कुमारमाधव उसके निकट चले आये। उन्होंने रूमाल से उसके आँसू पोंछे और फिर ठुड्डी हाथ से उठा आस्वासन भरी मृदु वाणी में बोले—"क्यों रोती है पगली। रोना तो तेरी जिन्दगी में लिखा है। जयन्त मिल जाय तो मैं उसके मुकदमे की पूरी पैरवी करूँगा। अगर ईश्वर ने साथ दिया, तो उसे सही मार्ग पर ले जाऊँगा। आज तुम चलो, सुनीता तुम्हें बहुत याद करती है।'

लेकिन सरोज की सिसकियाँ थमी नहीं; उसके होठ खुले ही नहीं। वह बुत बनी बैठी रही और कुमार माधव कहने लगे—"आदमी गलत नहीं होता है सरोज, संगति उसे बुरा-भला बनाती है या फिर मजबूरियाँ। जयन्त आ जाय। माना थोड़ी बहुत सजा हुई भी, तो उसका कोई मतलब नहीं। मैं उसे राह पर ले आऊँगा। तुम्हारे लिए जो कुछ भी कर सकता हूँ, करूँगा मैं; क्योंकि तुम्हें धर्म बहन मान लिया है।"

सरोज सुनती रही; किन्तु अब भी उसने कुछ जवाब नहीं दिया। जिस समय आदमी दुःख में डूबा होता है, तब सहानुभूति और आश्वासन उससे अपना सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाते। यह होता है उसी स्थिति में जब दुःख का वेग कम होता है।

रात का रंग काला-कोयला बन कर देहली रानी को पोत रहा था और जहाँ-तहाँ धो रहा था विद्युत प्रकाश उस कालिमा को। नगरी कबरी हो गई थी, कहीं काली, कहीं गोरी। कुमार माधव कमरे में बैठे थे। उसमें मिट्टी के तेल की चिमनी जल रही थी। वे कह रहे थे—"ऐसा लगता है सरोज कि तुमसे मेरा कोई पूर्व जन्म का नाता है। तुम युग-युग से मेरी बहन ही रहती चली आई हो। चिन्ता न करो, रोओ मत। मैंने अगर तुम्हें बहन कहा है, तो तुम्हारे सोहाग, तुम्हारे सुख और तुम्हारी शान्ति के लिए यह सब करूँगा जो एक भाई कर सकता है।"

अब सरोज उठी; उसे कुछ नहीं सूझा, तो कुमारमाधव के कंधे से लग फूट-फूट कर रोने लगी।

ठीक उसी समय बाहर हाकर ने आकर आवाज लगाई—"नामी गिरहकट जयन्त मर गया। पुलिस के डर से वह जमुना में कूदा था वह डूब कर मर गया, कछुये उसका चेहरा खा गये। लाश पुलिस के कब्जे में है।

कुमारमाधव बाहर भागे; सरोज भी धाड़ मार कर रो दी। अखबार खरीदा गया; मजबून पढ़ा गया। सरोज को गश आ गया। कुमारमाधव देर तक उसकी परिचर्या में रत रहे। फिर उन्होंने उसे अकेले नहीं छोड़ा, वे अपने बँगले गये। पत्नी सुनीता को साथ ले आये। सुनीता वहाँ रही उसी

कमरे में तेरह दिन। सरोज की माँग का सिन्दूर धो दिया गया, चूड़ियाँ तोड़ दी गईं। वह सधवा से विधवा बन गई। कुमार माधव ने मृतक के श्राद्ध में अपनी जेब से रुपये खर्च कर दिये।

अब सरोज ऐसी हो गई थी जैसे सेनानी की पत्नी जो रणक्षेत्र में वीरगति पाता है। वह कभी काली धोती पहनती और कभी सफेद। दिन-रात रोया करती, ऊब-ऊब कर साँसें लेती। वह न कुछ खाती, न कुछ पीती। हरदम यही रटा करती—"तुम कहाँ चले गये जयन्त। मुझे अकेली छोड़ गये। मैं जी नहीं सकती तुम्हारे बिना तुम लाख बुरे थे; लेकिन देवता थे। मुझे भी अपने पास बुला लो, रंडापा मैं सह नहीं पाऊँगी। जयन्त, आओ देखो तो, तुम्हारी माटी की गुड़िया कैसी हो रही है। अब कौन पकड़ेगा मेरी चोटी और कहेगा जोर से कि चल मेरी माटी की गुड़िया। सपने में ही आ जाओ। एक बार तुम मुझसे मिल जाओ। मुझे वह प्यार दे जाओ जो मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी सौगात थी। आओ जयन्त, तुम मर कैसे गये? तुम्हें मरना नहीं चाहिये था। तुम जिन्दगी से हार कैसे गये? तुम्हें उससे लड़ना चाहिए था। तुम सरोज को भूल कैसे गये? तुम्हारी माटी की गुड़िया परदेश आई। उसे किसके सहारे छोड़ गये जयन्त? मेरी दुनिया! मेरे जीवन!! बस एक बार आ जा।"

इस तरह पगली हो रही थी सरोज पति के वियोग में। कुमारमाधव उसे समझाते, सुनीता बार-बार आँसू पोंछती, लेकिन वाह री माटी की गुड़िया। उसके आँसुओं का खजाना कभी खाली नहीं होता।

कुमारमाधव सरल स्वभाव और उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्हें आठ-सौ रुपये मासिक-वेतन मिलता। बँगला मिल की ओर से मिला था। उनको ईश्वर ने दी थी एक बहुत बड़ी सौगात जो पत्नी सुनीता के रूप में प्राप्त हुई थी। फिर दिया एक रत्न। वह कन्या थी। उसका नाम नीमा कबीरा की धर्म-माँ नहीं, जुलाहे की पत्नी नहीं, वह एक विलक्षण बालिका थी। माँ-बाप के सारे गुण उसमें उतर आये थे। वह थी सप्त-वर्षीय, द्वितीय कक्षा की छात्रा-माँ की लाड़ली, बाप की दुलारी और सभी की प्यारी।

इस तरह मिल-जुलकर वह परिवार सम्पन्न ही नहीं, संतुष्ट-ही नहीं, अपने में परिपूर्ण था, अपने में तुष्ट। उसकी विशेषता यह थी कि वहाँ के कोने-कोने में सन्तोष के खजाने भरे थे। दरवाजे पर खड़ी थी ऋद्धि-सिद्धि। वे शान्ति का चँवर डुला रही थीं। दया वहाँ की एक मात्र देवी थी, परमार्थ वैसे-हीं देवता। भलाई ने सबसे चोली दामन का साथ कर रखा था। तृष्णा भाग थी। फूट और मक्कारी दूर से ही देखकर थर्रा रही थी। वह घर स्वर्ग था जैसे माटी का होता है छोटा-सा घरोंदा, जिसमें माटी के ही खिलौने खेलते हैं। वे माटी को ही प्यार करते हैं, उसी से ब्याह करते हैं और माटी-ही होती है सर्वस्व। वही एक दिन सोना बनती है।

बंगले में फुलवाड़ी के लिये एक माली नियुक्त था। उसका कमरा अलग था और माटी-ही तो एक दिन सोना बनती है। ऐसे-ही था टहल के लिये महरा और रसोई के लिये महाराजिन। नीमा की आया, दो और नौकर। सुनीता और कुमार माधव सभी नौकरों से ऐसा व्यवहार करते मानो वे घर के ही लोग हों और परिवार के बहुत-ही विशिष्ट सदस्य। बंगला करौलबाग में था; जो नयी-देहली की नयी-ही गजल है। जिसका नया तराना है। पुरानी देहली। बूढ़ी हो गई; लेकिन नयी अभी जवान है।

दम्पत्ति सरोज से बहुत-ही सहानुभूति रखते। उसका दुःख बटाने की कोशिश करते। उसे आश्वासन देते। सुनीता उसे बँगले खींच लाती। वह खिची चली आती। लेकिन फिर आती उसी परदेशी के घर में जिससे उसने पिया का नाता जोड़ा।

एक दिन सुनीता आई, तो सरोज बाल बखेरे बैठी आँसू बहा रही थी। सुनीता ने उसे समझाया, फिर उसके सिर पर हाथ रखा। वह बोली—"सरोज बेटी कितना रोओगी तुम? तुम्हारी जिन्दनी लम्बी है, तुम्हारी उम्र बहुत कच्ची है। दुःख न करो, सब कुछ भूल जाओ। मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारे भइया, नीमा के बाबू, वे तुम्हें बहुत चाहते हैं। हम सब तुम्हें प्यार करते हैं। तुम छोड़ दो यह कमरा और चलो मेरे बँगले में रहो। मैं एक से दो हो जाऊँगी। मेरा भी मन बहलेगा।"

सरोज कुछ नहीं बोली; वह सुनीता के वक्ष से लग गई और सुनीता फेरने लगीं उसकी पीठ पर हाथ। वह स्नेह-भरे स्वर में बोली—"रोते नहीं बहन! तू किसी के सहारे है। भाग्य ने मुझे एक छोटी बहन दी है। क्या मैं इसे जिन्दगी का उपहास न समझूँ। चुप हो जा पगली। चुप अपनी दीदी की गुड़िया। चुप............"

"गुड़िया न कहो दीदी। गुड़िया ही तो मेरी जिन्दगी की कहानी है। मैं किसी की माटी की गुड़िया थी। खिलाड़ी चला गया; गुड़िया भी टूट गई। मैं अपने जयन्त की माटी की गुड़िया थी दीदी। गुड़िया न कहो! गुड़िया न कहो!!'

यह कह सरोज फूट-फूट कर रोने लगी। उसे सुधि आ गई थी जयन्त की। अन्त में सुनीता उसे चुप नहीं करा पायी। वह भी उसके साथ आँसू बहाने लगी।

× × ×

एक दिन नीमा आई। वह सरोज के गले से लग गई और अपने भोले-स्वर में बोली—"बुआ जी, तुम मेरे बँगले चल कर क्यों नहीं रहतीं? तुम इतना रोती क्यों हो? जयन्त बड़ा बदमाश था। उसने मेरे बाबू की

जेब से रुपये निकाले, उसने सिपाही का पेट फाड़ डाला। भूल जाओ उस दुष्ट को। वह अच्छा आदमी नहीं था।"

"एँ! क्या कहा? वह दुष्ट था, अच्छा आदमी नहीं। नीमा, चली जाओ यहाँ से। मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं! वह अच्छा आदमी नहीं था, वह दुष्ट था। बस-बस चली जा, इसी में गनीमत है।"

एकदम क्रोध आ गया सरोज को। उसने नीमा को खूब फटकारा। किन्तु बच्चा-बच्चा ही ठहरा। नीमा जिद्द पकड़ गई। वह जोर-जोर से कहने लगी—"हाँ बदमाश, बहुत बदमाश था जयन्त! वह चोर था जेबकतरा था, गिरहकट था। वह······"

"चुप नालायक! यह क्या मरने वाले की आरती उतारी है। चली जा यहाँ से।" यह कह सरोज ने नीमा के गाल पर तीन-चार तड़ातड़ थप्पड़ जड़ दिये। नीमा रोने लगी और रोते-रोते अपने घर चली गई।

नीमा ने जब जाकर माँ-बाप से सरोज की शिकायत की, तो कुमारमाधव मुस्करा दिये और सुनीता ने एक दीर्घोच्छ्वास ली। वह कहने लगी—"घायल की गति घायल जाने जो कोई घायल होई, मीरा के प्रभु गिरधर नागर वैद्य सँवलिया होई।" मुझे लगता है कि कहीं सरोज पागल न हो जाये। पत्नी कितना चाहती है पुरुष को, पति यह थाह लगा ही नहीं सकता। नीमा बेटी ऐसा मत कहा करो सरोज से। वह यों ही दुखी है। हम दुखियों को अगर आराम नहीं पहुँचा सकते, तो कम-से-कम उन्हें सतायें भी न। वह बेचारी दुखी है। वह ऐसी लुटी है ऐसी जैसे बागियों के हाथ बाजार।"

नीमा माँ का मुँह देखने लगी। कुमारमाधव अब भी अपने अन्तर्द्वन्द्व में खो रहे थे। वे सोच रहे थे कि आखिर क्या किया जाये सरोज के लिये। उसका दुःख किस प्रकार कम हो सकता है। जिस तरह रुपया पैसा, जमीन और जायदाद आदमी बँटवा लेता है, क्या इस तरह इन्सान-इन्सान का दुःख नहीं बाँट सकता? क्या एक-दूसरे की पीर नहीं हर सर सकता?

और सुनीता एकदम दूसरी दुनिया में पहुँच गई कि सरोज लक्ष्मी है, ऐसी नारी जिसकी इन्सान पूजा करता है। हमारा उच्च वर्ग तो मनुष्यता से

परे जा रहा है। उसके अन्दर बू है, बास है और मध्यवर्ग भी हो गया है आजकल अग्रिम। चाहे घर में भूंजी-भाँग न हो लेकिन देवी जी मुँह खोल कर चलेंगी। जिस बात का सलीक। नहीं, उसे ही अपना फैशन समझेंगी। लेकिन निम्न-मध्य वर्ग एक ज्वलन्त समस्या है इस वर्ग की नारी घर को स्वर्ग बनाना चाहती है, थोड़े में-ही यह सन्तोष कर लेती है। लेकिन आदमी साथ नहीं देता औरत का। वह उसे दासी भी नहीं बल्कि हुकुम का इक्का समझता है। सरोज क्या है? जयन्त क्या था! सरोज बहुत सुलझी हुई है। मुझे उससे अतीव स्नेह है।

सुनीता सरोज को सिर आँखों पर बिठाये थी। कुमारमाधव पत्नी के समर्थन में थे। इस तरह सरोज को मिल रही सहानुभूति और अलौकिक स्नेह। तभी तो वह कहती कि दुनिया में धर्मी लोग जिन्दा हैं, दुनिया इसीलिये कायम है। धर्म-ही सब कुछ है, आदमी कुछ नहीं।

२८



निर्धन को जितना सन्तोष होता है, धनी को नहीं। निर्धन जितना ईमान-दार होता है, अमीर उतना नहीं। जो सत्य की डगर पर चलता है वह कभी थकता नहीं और जो छोड़ देता है यह राह उसे-ही दुख-पर-दुख मिलते हैं, उसी का दुनिया उपहास करती है। जितने जेवर थे सरोज के पास, वह उनका मोह छोड़, उनसे घृणा कर, जमुना के गर्भ में डाल आई और हाथ जोड़ कर बोली—'जमुनामैया मुझे नहीं चाहिए पाप की कमाई, बेईमानी का धन। भगवान ने हाथ-पैर दिये हैं मेहनत करूँगी, मजदूरी करूंगी, लेकिन ईमान नहीं छोड़ूँगी। ईमान-ही तो इन्सान का बाप होता है। जिसे दया मिलती है, दुनिया का सिर-मौर होता है। जिसके सिर पर कोई हाथ रख

लेता है वह अभागा भी भाग्यशाली कहा जाने लगता है।

सरोज अब अपने घर में नहीं रह पाती। वह कुमारमाधव के बँगले जाती दिन भर वहाँ सुनीता का हाथ बँटाती और रात को जब आने लगती घर, तो कुमारमाधव उसे स्वयं छोड़ने आते।

इस तरह सोचने लगी थी सरोज कि उसका भविष्य अन्धकारमय नहीं, एक उज्ज्वल दर्पण है। जब शीशा में शक्ल दिखलाई पड़ती है तभी इन्सान अपने को पहिचानता है और जब भाग्य का शीशा हो जाता है चूर-चूर तब आदमी अपने को भी भूल उलझन में पड़ जाता है। कोई कहता है कि आओ तुम्हारी तकदीर बना दूँ, कोई तस्वीर बनाना चाहता है। कोई कहता है कि लाओ अपने सब रंग तुम में भर दूँ, सागर का नीलापन ले जाऊँ और वन की हरियाली। चमक चुरा लूँ मैं तारों की और नव-प्रभात की लाली। अपने सब रंग तुझमें भर दूँ, तुझको अपना-सा कर लूँ, आ तेरी तसवीर बना दूँ, लेकिन ये तस्वीरें होती हैं झूठी जो कागज पर बनती है और रंगों से रंगी जाती हैं। तस्वीर होती है वह जो किसी के हृदय-पट पर बन कर रह जाती है। जयन्त चला गया, अपनी तस्वीर छोड़ गया। आह दुख ! आह दर्द !! अरी जिन्दगी !!! तू हरजाई है क्या ? तू किसी नहीं, तू एक सपना है, एक मीठा-सा धोखा। तू रौनक नहीं, उसके नाम पर कलंक है। अगर आज को कुमारमाधव मेरा साथ न देते, तो मेरा क्या हाल होता। अगर सुनीता मुझे छोटी बहन न मान लेती, तो कुमारमाधव की एक नहीं चलती। ऐसे-ही अगर नीमा आकर मेरा चित प्रसन्न न कर देती, तो मैं किसके सहारे जीती कैसे हँसती, कैसे बोलती, कैसे रोती।

सरोज सोचा करती अहर्निश, लेकिन तथ्य कुछ भी नहीं निकलता। वह जिस गुत्थी को सुलझाने का उपक्रम करती, वह उतनी-ही उलझती चली जाती। आखिर उसने कर लिया तय कि वह घर छोड़ देगी और कुमारमाधव के बँगले पर जाकर रहेगी।

और हुआ भी यही। एक दिन सुनीता उसे अपने साथ ले गई और फिर

नहीं आने दिया। सरोज के परिवार में केवल एक बाप था, वह भी अधूरा इन्सान। वह जाती तो कहाँ? सहारा करती तो किसका? वह रहने लगी बँगले में ही और दूसरे दिन आकर कमरा खाली कर दिया।

कुमारमाधव सरोज से अत्याधिक सहानुभूति रखते। सुनीता उस पर अपना स्नेह परोसते नहीं थकती और नीना खो जाती लाड़-दुलार में। वह उसे 'बुआजी', 'बुआजी' कहती। कुमारमाधव सोचते कि सरोज वाकई में बहुत दुःखी है और उसका दुःख बँटाना हम सब का कर्त्तव्य है। जो कर्त्तव्य से परांग मुख हो जाता है, उसे भीरु और कायर कहा जाता है। अगर इन्सान अपना फर्ज न भूले, अगर वह सीधी राह चले, वह पतझड़ में बसन्त के गीत न गाये, तो बहुत कुछ बन सकता है। जैसे हमारे आदि देव, आदि महापुरुष।

कुमारमाधव और सुनीता सरोज के प्रति एकदम उदार थे, एकदम उसके सहयोगी और ऐसे-ही उसके रक्षक।

जब घर छोड़ने की बात चली, तभी सरोज शंकित हुई थी, लेकिन फिर अपनत्व का पुट पाकर वह कुमारमाधव के बँगले-ही चली गई। तब कुमार-माधव को ऐसा लगने लगा कि इस कोठी में रौनक वापिस लौट आई है। यहाँ हँसी के गुब्बारे फूटेंगे और खुशियों के बाजार लगेंगे सहारा केवल निकट सहारा-ही नहीं। सहारे की उस काया में प्राण बोलते हैं, जिन्दनी मुस्करायेगी एक दिन और कली फूल बनेगी, जब प्रभात आयेगा। ऐसी-ही मेरी दुनिया एक दिन जायेगी बदल जब जिन्दगी में नया मोड़ आयेगा।

बँगले का माली कहता कि लाओ हजारा मुझे दो बहन। ड्राइवर यह कहता कि कहीं घूमने जाने का प्रोग्राम तो नहीं, मैं जाऊँ। किन्तु सरोज सब को यही जवाब देती कि भईया आप काज महाकाज। अपने-ही मरे स्वर्ग सूझता है। महाराजिन को चौके से निकाल सरोज रसाई में घुस जाती। वह करती अपने में सन्तोष। वही उसकी एकमात्र पूँजी थी।

सरोज सोचती कि जयन्त अब तो इस दुनिया में रहा ही नहीं, वह कैसे आयेगा और आयेगा भी किस बलबूते पर वह जो मुझे दगा-दे गया है।

दिन-पर-दिन बीतने लगे। सरोज कुमारमाधव के बँगले में रहने लगी।

जब भी उससे पैसे का प्रश्न होता कि रुपया ले लो, घर गृहस्थी के खर्च में आवेगा, तो वह कहती कि रुपिया मेरा दुश्मन है और मेरा ही नहीं सारी दुनिया का। दुनिया आगे-आगे दौड़ती है और रुपये के नोट पीछे भागते। दुनिया-दुनिया है। किसी की दोस्त नहीं, किसी की हमदर्द नहीं।

इस तरह सरोज भविष्य के प्रति दिन-रात सोचा करती। उसकी समझ में कुछ नहीं आता। कुमारमाधव के बाल खिचड़ी तो नहीं हुए, लेकिन काले से आधे सफेद की संज्ञा पा चुके थे। वे सरोज के प्रति सोचते, तो दुख भर आते उन्हें अनुभव था, उन्होंने दुनिया देखी थी। उन्होंने सरोज से कुछ भी नहीं पूछा, कुछ भी नहीं कहा और सुनीता से बोले कि अगर तुम सरोज का पागलपन दूर कर सको उसकी कोई युक्ति निकालो, तो मैं तुम्हें पाँच सौ रुपए दे सकता हूँ। किन्तु वह होता कभी नहीं आदमी जो सोचता है। होता वही है जो आदमी सोच नहीं पाता।

२९



कार्तिकी पूर्णिमा का पर्व था। जमुना अब भी हिलोरें ले रही थी बरसात की चढ़ी जवानी की भाँति। हर घाट पर भीड़ थी। नगर की जनता डुबकियाँ ले रही थी। जमुना के उस पार भी नयी बस्तियों के नये लोग हर-हर जमने कहकर पर्व का महत्व मना रहे थे। इधर-उधर के ग्रामीण-क्षेत्रों के भी आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी जमुना स्नान कर रहे थे। गंगा की छोटी बहन जमुना, जो देहली की जान है, देहली की रौनक, जिसके किनारे विशाल लाल-किला खड़ा है, जो राजघाट की परिचायक है, ये जहाँ विश्वपूज्य महात्मा गाँधी ने अन्तिम समाधि ली थी, अब भी हहर-हहर बह रही थी। वह अब भी अजर-अमर थी। उसे गर्व था कि आगे आगरे में भी मैं उतनी-ही अनमोल

हूँ जितनी दुनिया के देशों के लिए यह सोने की चिड़िया। मेरे ही किनारे यवन-सम्राट शाहजहाँ ने लालकिला बनवाया जो आगरे की विभूति है। मेरे-ही तट पर स्थित है ताज बीबी का रोजा, जिसे ताजमहल कहते हैं। मथुरा में मैं बहुत पुनीत हूँ। कृष्ण-कन्हैया मेरे-ही तट पर गेंद खेलते थे। उसके बाद तीर्थराज प्रयाग जहाँ मेरा संगम बहन गंगा से होता है।

इस तरह जमुना अपने में फूली नहीं समा रही थी। पर्व का शोर मच रहा था। भीड़ उमड़ी-चली आ रही थी। जमुना की छाती पर खड़ा था लोहे का विशाल पुल, जो अंग्रेजों की देन था। राजधानी का पुल एक नया नमूना था। एक नयी वस्तु। ईंटों के भारी खम्भों पर लोहे की एक लम्बी नगरी बस रही थी। नीचे थीं दो सड़कें तारकोल की। एक पर द्रुतगामी वाहन दौड़ते, दूसरी पर पैदल चलते। ताँगा वाले खटखट करते। साईकिलें घंटियाँ बजातीं। बैलगाड़ियाँ भी उस पर चरमर-चरमर-चू-चू-चरर-मरर करतीं। उसके ऊपर थी लोह की रेलिंगदार छत। जिस पर रेलवे की दो लाइनें खड़ी थीं छोटी और बड़ी! जब ट्रेन पुल पर से गुजरती, तो पुल-ही नहीं ईंटों के खम्भे भी काँप जाते।

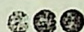
कुमारमाधव ने जमुना में डुबकी लगाई; सुनीता ने सूर्य-भगवान के हाथ जोड़े। और विधवा सरोज, उसने भी जमुना-मैया में दो डुबकियाँ लगाईं और मन-ही-मन कहा कि हे माता अब इस धरती पर से उठा लो। रँडापा मुझसे सहा नहीं जाता। तुमने छीना मेरे जयन्त को। मुझे भी उठा लो। अभागों के लिये इस धरती पर ठौर नहीं, उनका कोई नहीं।

तभी सहसा जोर का एक शोर मच गया। भीड़ भागने लगी पुल की तरफ। जनता चौकन्नी हो गई। क्या हुआ? अरे कौन गिर पड़ा? पुल पर से कोई कूदा है। या तो किसी ने ढकेल दिया। या अपने आप-ही गिर पड़ा। घाटों पर खड़ी पुलिस सतर्क हो घटनास्थल की ओर ऐसी भागी, मानों शिकारी शिकार के पीछे दौड़ लगा रहा हो। और सचमुच कूदा था एक युवक। उसने आत्महत्या करने की सोची थी। फौरन-ही तैराक छोड़े गये। गोताखोर पनडुब्बे भी पानी में उतर गये और कूदने वाला जब पहला

गोता खाकर जल के ऊपर आया, वैसे ही वह लिया गया पकड़। उसके पेट में पानी भर गया था। वह बेहोश हो गया था। उसे तत्कालिक उपचार की आवश्यकता थी। उसे किनारे पर ला पट लेटा दिया गया। एक आदमी घुटनों के बल उसकी पीठ पर बैठा। उसके मुँह से जब पानी निकल गया, तो नथुनें और कानों को भी रुई से साफ किया गया। जब वह स्वस्थ हुआ, तो उठकर बैठा।

पुलिस उस युवक को खुदकशी के जुर्म में गिरफ्तार कर वहाँ से ले जाना चाहती थी। तब-तक कुमारमाधव भी वहाँ पहुँच गये उनके पीछे सरोज और सुनीता थी।

३०



मनुष्य जब जिन्दगी से ऊब जाता है, तो वह संसार से मुँह मोड़ कर कहीं दूर चला जाना चाहता है। उस समय अन्य कोई साधन उपयुक्त न देख, वह मौत की शरण लेता है। वह कोशिश भी करता है जान देने की; लेकिन जब असफल हो जाता है, तो अपनी दुर्बलता को छिपाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है। ऐस-ही हुआ था उस जमुना में कूदने वाले युवक के साथ। वह कूदा तो था जीवन का अंत करने के निमित; किन्तु जब तैराकों द्वारा पकड़ लिया गया और पुलिस ने उसे हिरासत में ले लिया, तो वह दूसरी वाणी बोलने लगा कि नहीं, मैं जानबूझकर नहीं कूदा। मैं तो पुल पार करके शाहदरे जा रहा था। भीड़ अधिक थी, पैर फिसला, मैं सम्हाल नहीं पाया और इस तरह नदी में गिर पड़ा।

मृत्य जब निकट आ जाती है, तो जीने की लालसा प्रबल हो उठती है। मरणसन्न रोगी भी एक बार स्वस्थ होकर जिन्दगी का स्वाद लेने का इच्छुक हो

उठता है और जब प्रलय के दिन काले बादलों की तरह सिर पर आकर मंडराते हैं, तो मनुष्य चिल्लाने लगता है शांत-शांत ! जनता भीड़ का एक वृत बनाये खड़ी थी। बीच में थी चमक रही सफेद कमीजें, नीली नेकरें और उन पर लाल तथा नीली पगड़ी। ये कानिस्टिबिल थे और खाकी वर्दी में से दो पुलिस इन्सपैक्टर। जिनके सिर पर खाकी ही पगड़ी थी और कंधों पर डी० पी० का मोनोग्राम लग रहा था। लोगों में चख-चख मची थी। कहीं-कहीं कानाफूसी चल रही थी। युवक इंगित पात्र बन रहा था और दरोगा कह रहा था कि चलो भीड़ मत लगाओ, मुलजिम को थाने ले चलो। इसने जरूर कोई बहुत बड़ा गुनाह किया है, तभी तो जान देने जा रहा था।

युवक दयनीय आँखों से सबकी ओर देख रहा था। अचानक कुमारमाधव से उसकी दृष्टि मिल गई। उस दृष्टि ने भिक्षुणी बन जैसे कुमारमाधव से कहा कि क्या मुझे दया की भीख नहीं मिल सकती। क्या मैं सचमुच अपराधी हूं। कुमारमाधव प्रतिभावान ही नहीं, एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। एक पुलिस इन्सपेक्टर उन्हें जानता था। दोनों की राम जोहार हुई। तब वे तनिक आगे और बढ़े युवक से पूछने लगे, तो शरण जैसी पा युवक रो-रो कर कहने लगा—"मेरा नाम अशोक है। मैं बल्लीमारान में रहता हूँ। मैं ग्रेजुयेट हूँ, आजकल बेकार। मुझे कहीं भी काम नहीं मिलता। एक दोस्त है, उसी के यहाँ रात को सो जाता हूं। वैसे इस देहली में सिर छिपाने के लिए भी जगह नहीं। सोचा था आज शाहदरे जाऊँगा। दिलशाद गार्डिन में एक स्कूल खुला है। वहाँ मास्टरी के लिये कोशिश करूँगा लेकिन तब तक यह अनहोनी हो गई। एक तो गरीबी, दूसरे बेकारी और तीसरे यह नयी मुसीबत कि मुझ पर आत्महत्या का आरोप लग रहा है। मुझे बचा लीजिये बाबू, मैं आपका एहसान कभी नहीं भूलूंगा।"

कुमारमाधव यकायक अशोक को कुछ भी जवाब नहीं दे पाये। हाँ इतना अवश्य किया कि वे इन्सपेक्टर को रोके रहे। वे सोचने लगे कि मैं इतने बड़े मिल का मैनेजर हूँ। मैं चाहूँ तो एक नहीं, दर्जनों ग्रेजुयेट को नौकरी

दे सकता हूँ। यह आदमी काम चाहता है और काम इसे मिलता नहीं। कैसी है पुलिस जो जनता से उसका दुख-दर्द तो नहीं पूँछती, आँखें दिखलाती है और कहती है कि मैं हौआ हूँ। इसे सहारा चाहिए। यह है तसल्ली का पूरा-पूरा तलबगार है। मुझे बीच में होना चाहिए। अपने सामने किसी का अहित हो रहा हो, आदमी देखकर चल दे या मुँह मोड़ ले, तो वह दुनियादारी नहीं; बल्कि दुष्टता कही जायेगी और जो आर्त के आँसू पोंछे, किसी के जख्मों पर सहानुभूति का मरहम रख दे, उसे सज्जन कहा जाता है। दुनिया में सभी तरह के लोग हैं।

इस तरह कुमारमाधव सोचते रहे। भीड़ के रेले आते और वहाँ पर आ फूट, फैल जाते। युवक अब भी आँखें उठाये कुमारमाधव की-ही ओर देख रहा था और सुनीता अपने दोनों नयनों में दया का नीर भर कर पति से कह रही थी—"अगर कुछ कर सकते हो, तो करो। बेचारे को छुड़ा लो। वह तो यों-ही परेशान है, उल्टा उस पर मुकदमा चलेगा।

तभी सरोज का भी स्वर कुमारमाधव के कानों में पड़ा। वह सुनीता का समर्थन कर कह रही थी—"हाँ बेचारा दुःखी मालूम होता है मेरी-ही तरह। पुलिस इसे हैरान करेगी। छुड़वा दो भैया। ईश्वर आपका भला करे।"

किन्तु कुमारमाधव अभी दृढ़ निश्चय तक नहीं पहुँच पाये थे, इसीलिए मौन थे।

३१



समय अधिक हो रहा था; पुलिस इन्सपेक्टर जब कुमारमाधव को नमस्ते कर वहाँ से चलने लगा, तो उन्होंने मिलाया उससे दाहिना हाथ और दूसरा कन्धे पर रखकर बोले—"छोड़िये, जाने दीजिये इस आदमी को। यह

जान बूझकर कहीं कूदा, इसका चेहरा बतला रहा है। गरीब है, मैं अपने मिल में इसे क्लर्क की जगह दे दूँगा। क्यों ले जाओगे बेचारे को ? किस्मत का मारा है, थाने जाकर और भी मुसीबत में पड़ जायेगा।"

इन्सपेक्टर मुस्कराया; वह धीरे से बोला—"आप नहीं जानते मैनेजर साहब ये आवारा लोग बड़े बहुरूपिया होते हैं। मौत और जिन्दगी को बहुत आसान समझते हैं। जेल में जाकर जब यह चक्की पीसेगा तो इसकी सारी बेकारी दूर हो जायेगी। आप जाइये, अपना समय क्यों खराब कर रहे हैं। यहाँ तो यह रोज का धन्धा है। मैं आदमी की नस पहचानता हूँ।"

"और मैं भी पहचानता हूँ नश्ल। सच्चाई किसी के माथे पर नहीं लिखी वह तो चेहरे पर बोलती है। छोड़िये, इस आदमी को मुझे दीजिये, मैं इसकी जिन्दगी बनाऊँगा।"

यह कहकर कुमारमाधव जोर से हँसे। तभी दरोगा ने छोड़ दिया अशोक को। अशोक ऐसा रोया, ऐसा रोया। कि उसने कुमारमाधव के पैर पकड़ लिये। तमाशा खत्म हो चुका है। तमाशाई सब जहाँ-तहाँ बिखर चले थे। 'हर-हर जमुने, हर-हर महादेव बम-भोले, जय शिवशंकर' स्नानार्थी यह उच्चारित करते। वे पुण्य-पर्व पर पुनीत जल में अपने पाप धो रहे थे और मन्दिरों में बज रहे थे घंटे-'टन टन'। कुमारमाधव ने युवक को उठाया। उन्होंने स्वयं अपने रूमाल से आँसू पोंछे। फिर आश्वासन देते हुए बोले—"आओ मेरे साथ, मेरे बँगले चलो। तुम कई दिन के भूखे मालूम होते हो। चिन्ता न करो, मैं तुम्हें नौकरी दूँगा।"

अशोक चल दिया उस अजनबी परिवार के साथ जो अपने-पराये की परिभाषा-ही नहीं जानता था, दुनिया को एक समझता था। आजकल उस घर की प्रमुख सदस्या थी सरोज। कुमारमाधव हर काम के लिए उसी से कहते। सुनीता उससे पूँछ-पूँछ कर काम करती और नीमा तो दिन भर चिमटी रहती उसके गले से। नौकर-नौकरानियाँ भी उसका लिहाज करते। वे कहते कि सरोज बीबी क्या हुक्म है, क्या आज्ञा है। जब कुमारमाधव बँगले आये, तो वे सरोज से बोले—"अशोक बाबू हमारे मेहमान हैं सरोज जाओ उनके लिये

थाली तुम स्वयं परोस दो।"

इस तरह सरोज खाना ले आई; लेकिन अशोक ने कौर भी नहीं तोड़ा। सरोज ने उससे मृदु मुस्कान के साथ कहा—"आप बड़े संकोची मालूम होते है? संकोच तो स्त्रियों की धरोहर होती हैं वह पुरुषों को शोभा नहीं देती। लीजिये, खाइये, आज आप हमारे मेहमान हैं।"

इस पर अशोक ने सरोज का भोला चेहरा देखा। उसने सिर झुका लिया और कुछ भी बोल नहीं पाया। तभी सुनीता उसके पास आ गई। वह उसके सिर पर स्नेह भरा हाथ रख अपनत्व भरी वाणी में बोली—"खाओ अशोक, मालूम होता है तुम्हारी आँखों में लिहाज का बहुत अधिक पानी है। ऐसे-ही लोग दुनिया में कुछ कर पाते है भइया। लो कौर तोड़ो। इस घर को अपना ही घर समझो।"

किन्तु अशोक जड़ बना बैठा रहा। उसमें तनिक भी हरकत नहीं हुई। तब कुमारमाधव ने उसे समझाया। वे धीरे से बोले—"अशोक, खाते क्यों नहीं? खाओ भाई। हम लोग तुम्हारे हमदर्द हैं। हमें तुमसे हमदर्दी है बस शुरू कर दो, देर न करो। उसके बाद हम लोग भी……।"

"नहीं, मैं अकेले नहीं खाऊँगा। आप लोग भी बैठिये। अकेला खाता है वह आदमी, जो अभागा होता है। अब मैं अभागा कहाँ रहा। मेरी तो दुनिया ही बदल गई है।"

अशोक के इस कथन पर कुमारमाधव हँस पड़े फिर वे सुनीता की ओर उन्मुख हो उससे कहने लगे—"डिनर टेब्लि फौरन सजवाओ, हम लोग साथ-ही-साथ खायेंगे और देखो सरोज, खाने में कोई त्रुटि नहीं रहनी चाहिये। जानती हो आदमी चाहे मिट्टी-ही फाँक ले; लेकिन मेहमान को उसे मेवा खिलानी पड़ती है।"

बात की बात में मेज पर खाना लगा दिया गया। सभी लोग बैठ गये। कुमारमाधव खाते हुए देख रहे थे कि अशोक संकोच कर रहा है, वह शरमा रहा है। और सुनीता इस अद्‌भुत-मिलन के व्यापार से इतनी मगन थी कि जिसका नाम नहीं। लेकिन सरोज, वह मौन थी, न जाने क्यों? वह अशोक

को देखती तो उसमें जयन्त का प्रतिबिम्ब पाती ।

भोजन समाप्त हुआ, सब लोगों ने बेसिन पर जा कुल्ला किया, तौलिया से मुँह पोंछा और तभी हाथ में पान का एक बीड़ा ले सरोज बढ़ आई अशोक की ओर । अशोक पान चबा, बाहर आ ड्योढ़ी पर बैठा । वह गंतव्य सोच रहा था और निष्कर्ष निकाल रहा था जिन्दगी का कि ऐसा जीवन किसका है जिसके पास झंझट नहीं, कोई समस्या नहीं ।

सांझ आई; रात ने भी अपना साम्राज्य स्थापित किया । बँगले की बत्तियाँ जल गईं । रेडियो एक ग्राम-पंचायत का क़ार्यक्रम प्रसारित कर रहा था । अशोक अब भी बैठा था उसी कमरे में कुमारमाधव के पास । सुनीता गृह कार्यों में संलग्न थी और सरोज वह सोच रही थी जिस दरवाजे पर दुखियों को शरण मिलती है, वह दरवाजा कभी बन्द नहीं होता । वह घर एक कहानी बनता है और वहाँ के लोग कहानी के पात्र । इस घर से मेरी मुक्ति हुई, इसी घर से अशोक का उद्धार । कुमारमाधव देवता है और सुनीता देवी । मैं क्या हूँ एक माटी की गुड़िया जो बसेरे-पर बसेरे ले रही हूँ । मैं जिन्दगी को ठग रही हूँ । क्या यह स्वार्थपरता नहीं । जब जिन्दगी का तारा अस्त हो गया, मेरा जयन्त मुझ से छिन गया, तो फिर यह मुस्कान क्यों ? यह खुशी, यह आराम क्यों ? अशोक भी अकेला है । भगवान उसकी दुनिया बसाये, उसकी जिन्दगी में सुनहले मेले लगें । उस मेले में ईमान की दूकानों पर मीठा-मीठा सत्य बिके । सचमुच सच्चाई ही इंसान को ऊँचा उठाती है । अगर किसी को कुछ बनना है, तो वह सच्चाई से नाता जोड़े ।

अशोक को बँगले का वह कमरा दिया गया था जो अभ्यागतों का था । यद्यपि वहाँ पर नौकर और नौकरानियों की कमी नहीं, लेकिन फिर भी सु ीता ने सरोज को भेजा कि दूध का गिलास दे आए और उसकी गतिविधि का पूरा-पूरा निरीक्षण कर ले कि मेहमान को कोई कष्ट तो नहीं ।

इस तरह सफेद वायल की साड़ी में लिपटी सरोज, जिसके बाल रूखे-बिखरे थे, जिसकी कलाइयाँ सूनी थीं, जिसकी माँग का सिन्दूर धुल चुका था और जो विधवा थी । जो षोडषी थी हाथ में दूध का गिलास लिए प्रविष्ट

हुई। वह सफेद हँसनी-सी लग रही थी। उसकी गति कुल वधू-सी थी। उसके चेहरे की आभा अफसरा के मानिन्द। उसका लाल गेहुँआ रंग जैसे वीर-बहूटी कमल-नाल-सी उसकी कोमल उँगलियें जिनसे गिलास सध रहा था। दूध से भाप उठ रही थी। वह जिन्दगी को संदेश दे रही थी। रोना शोक करना ही जिन्दगी का ध्येय नहीं। कली जब खिल नहीं पाती, फूल जब मुस्कराता नहीं, तो चमन वीरान लगता है। उसमें वहार नहीं आती। जवानी का जो अनमोल हीरा होता है उसे पत्थर की संज्ञा देना उचित नहीं। उसकी चमक से ही सारा जहाँ रोशन हो जाता है।

मौसम हल्की सर्दी का था; सर्दी पर तरुणाई छा रही थी। वह जवानी की ओर बढ़ रही थी। कमरे के दरीचे खुले थे। उनपर मखमल के पर्दे लटक रहे। फर्श पर बिछा था आधुनिक ढंग का काश्मीरी-कालीन। मशहरी पर दूधिया चाँदनी बिछ रही थी और उसी पर रखा था श्वेत तकिया। अशोक बैठा था वह आगन्तुक को देखते-ही उठकर खड़ा हो गया। चार नयन थे चारों-ही शरमाये हुए, चारों-ही संकोच से भरे।

"आप ! आपने क्यों तकलीफ की ?"

अशोक इतना कह कर जैसे आगे कहने के लिए शब्दावली ढूंढने लगा और तभी भीरु, सुकुमार बाला नीची दृष्टि कर कनखियों से देखती हुई दाहिने पैर से कालीन को कुरेदती हुई, कोकिल स्वर में बोल उठी—"लीजिए दूध पीजिये, दीदी ने भेजा है। कहिये, आपको कोई तकलीफ तो नहीं ? यह नयी जगह है। अगर आपको नींद न आए तो पियानो रखा है। बजाना तो जानते ही होंगे। आप अंग्रेजी पढ़े हैं।"

"और आप ?"

अभी अशोक इतना-ही कह पाया था कि सरोज तत्क्षण-ही बोल उठी —"माटी की गुड़िया पढ़ती नहीं, वह तो दूसरों के हाथ का खिलौना बनती है। मेरा तो खिलाड़ी चला गया। लीजिये, दूध पीजिये, मुझे रुलाई आ रही है।

यह कहकर सरोज ने गिलास मेज पर रख दिया और भीता हिरणी की

भाँति वहाँ से भाग गई।

अशोक सोचता रह गया; दूध ठण्डा हो गया कि वह अपने को माटी की गुड़िया कहती है आखिर यह है कौन ? क्या मैनेजर साहब की साली है ? यह छोटी उमर में विधवा कैसे हो गई ? उसकी आँखें शरबती हैं, होठ गुलाबी। इसके कपोलों में एक अजीब लाली है इसके बदन में लोच। यह धरती पर की रानी नहीं, इन्द्रलोक की अप्सरा है।

सोचता रहा अशोक, आखिर उसने ठंडा ही पी लिया और सरोज ने सवेरे देखा कि सफेद जीन की फुल पैन्ट, उस पर नीला हाफ बुशर्ट पहिने अशोक उसके सामने खड़ा है। उसकी छोटी-छोटी मूछें बड़ी बाकी हैं। उसके कंघी किए हुए बालों में चमक है। उसके पैरों में सैन्डिल। उसका कद मध्यम है, उसका चेहरा सुडौल। वह सचमुच एक आकर्षक जवान है। उसकी सूरत देखते बनती है। उसके मुँह से निकला आप—"आप।"

"और आप ?"

दोनों शरमा गये; दोनों नीची दृष्टि कर फर्श को देखने लगे। लेकिन उनकी कनखियाँ निरन्तर एक दूसरे को निहार रही थीं।

इस प्रकार अशोक ने पाया कि सरोज इस बँगले की वह स्वर्गीय जिन्दगी है, जो सोना है, लेकिन उसमें महक है। जो पारस है पत्थर नहीं। वह मोती है, परन्तु मोम नहीं। वह जिन्दगी है मगर मौत नहीं। वह कमलिनी है और कमल लक्ष्मी नहीं, जो सारे संसार को ठगती है।

ऐसे ही अशोक ने पाया सुनीता का निःस्वार्थ प्रेम। जिसमें भाई की ममता थी, दुनिया की कलक। जिसमें परोपकार के रथ में सत्य और अहिंसा के घोड़े जुते थे और शान्ति सारथी बन दुनिया से कह रही थी कि सहयोग को न भूलो, वही दुनिया की जिन्दगी है।

दो दिन में ही अशोक ने उस महान् व्यक्तित्व कुमार माधव के भी अन्तर दर्शन कर लिए। उसने पाया कि वह व्यक्ति मनुष्यों की श्रेणी में आता ही नहीं, उनसे बहुत पृथक है। जिनमें त्याग की भावना होती है, वे भगवान के पूत कहे जाते हैं। जो दूसरों की सेवा करते हैं, वे जन सेवी ही नहीं, जन-

नायक कहलाते हैं। जो दुनिया के लिए जीते और उसी के लिए मरते हैं, वे ही महापुरुष होते हैं, वही हमारे इतिहास के नायक।

और अशोक जब सोचता सरोज के प्रति तो वह पाता कि यह नारी देह ममता की पुतली है, प्यार की बेटी। इसमें दुख है, इसीलिए दुनिया इसे देखती है। इसमें जो भोलापन है, वह इसकी अछूती संज्ञा है। इसकी आँखों ने शायद बुरा देखा है, खूब रोयी हैं, तभी यह अपने में महान् क्षोभ पाले हैं। यह विधवा है। इसके हाथों में चाँदी की चूड़ियाँ हैं। युवावस्था के द्वार में पैर रखते ही जो युवती अपना सिन्दूर धो देती है, वह बूढ़ी नहीं हो जाती, उसकी इच्छाएँ नहीं मर जातीं; किन्तु समाज उसे सताता है। वह कहता है कि विधवा बनकर रहो। समाज के विधानों का पालन करो। यह न्याय संगत नहीं, यही तो महान् पाप है। मनुष्य उन्नति क्यों नहीं कर पाता—क्योंकि वह स्त्री को अपने से हेय समझता है। जो नारी वर्ग को अपने समक्ष रखकर चलता है, जिस सहयोग में चूड़ियाँ टुनटुनाती हैं और दाहिनी भुजा फड़कती है, वही श्रम का सिन्दूर होता है। नारी उसी से अपनी माँग भर लेती हैं। ओह! कितनी सुन्दर है सरोज? इसे तो महलों में पैदा होना चाहिए था। माना कि उसके मुँह में चाँदी का चम्मच नहीं; लेकिन उसकी शीरी जबान है जो कोयल को भी मात करती है।

अशोक कोठी के वातावरण का बड़े—ही मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन कर रहा था। वह पा रहा था वहाँ पर एक अलौकिक सुख। वह मेहमान था कुमार माधव का। वह सरोज के लिए एक नया बसेरा था। वह सोचता कुछ; लेकिन सरोज से कुछ कह नहीं पाता। संकोच का बहुत बड़ा घन उसके यहाँ गड़ा था। वह सीमित और निर्धारित था, इसीलिये सरोज उसकी पूजा करती। मन-ही-मन उसे देवता मानती।

सरोज भी सोचती कि यह अशोक एक वैसा ही चित्र है एक वैसा ही दायरा। यह जयन्त से भी अधिक दुनिया को समझता है और राग-रंग को भी महत्व देता है।

आगन्तुक भाव स्थिरता से टक्कर नहीं ले पाये। सरोज भी चिन्तित हुई

अशोक कहने लगा स्वयं अपने से कि सरोज सरसिज है, एक पोखर का फूल, एक तालाब की शोभा। वह चाँदनी है चाँद की दुलहन। वह शरमाती है जैसे वृक्ष पर लिपटी लता। वह सकुचाती है ऐसे जैसे धरती नीचे को धँसती है। क्या उस वीरान दुनियाँ को मैं आबाद कर सकता हूँ? क्या उस उजड़े हुए बसन्त में बहार ला सकता हूँ।

अशोक और सरोज दोनों—ही अन्तर्द्वन्द्व के मध्य पल रहे थे जैसे दुनिया गोल थी और उसके बीच में विषवत-रेखा। उसके सारे विचार, सारे निश्चय और सब कुछ तथ्य प्रायः निरर्थक ही रहते। वे दुनिया में प्रवेश करना चाहते थे शायद इसीलिये दरवाजे बन्द हो गए थे। वे जब सपने की दुनिया में मेह-मान बनकर गए तो जादूगर विधना ने उन्हें बतलाया कि दुनिया गोल ही नहीं नारंगी की तरह चपटी है। उसमें तो फाँकें-ही-फाँकें होती हैं, उनके भीतर बीज और बीज ही मूल का अर्थ होता है और अर्थ ही होता है धन, जो सुख का होता, सन्तोष का होता, रुपये-पैसे और सोना-चाँदी।

३२



कुमारमाधव ने अशोक को अपने मिल में एक क्लर्क की जगह दे दी। वेतन डेढ़ सौ रुपये मासिक था। वह अब भी उसके बँगले में रह रहा था। वह अब भी उसका मेहमान ही था। घर में सुनीता उसका पूरा-पूरा ध्यान रखती। नीमा उससे खेलकर नहीं अघाती और वह पाता सरोज को कि वह एक बुझा हुआ दिया है जिसमें तेल ऊपर तक भरा है, केवल बाती की लव प्रज्ज्वलित करनी है।

एक साँझ को जब कुमारमाधव बँगले आये, तो उनके चेहरे पर मृदु-मुस्कान नहीं बल्कि चिन्ता की रेखायें थीं। वे सीधे सरोज के पास गए

और उससे बोले—"सरोज तुम्हें यहाँ कोई कष्ट नहीं ? जयन्त को तुम्हारी किस्मत ने छीन लिया । तुम्हारी यह छोटी-सी कच्ची उम्र है जिन्दगी कैसे पार होगी । अगर कहो तो मैं किसी से रिश्ते की बात चलाऊँ और तुम्हारा दूसरा व्याह हो जाय ।"

सरोज कहने वाले के मुँह की तरफ देखने लगी । वह कुछ नहीं बोली और कुमार माधव कहते गए—"सुनो सरोज, जयन्त बुरा हो या भला; लेकिन पत्नी के प्रति उतना ही प्यारा लगता है जैसे मनुष्य के लिए भगवान नारी बुझ जाती है उस आग की तरह जब प्रलय की आँधी चलती है। प्रलय की आँधी करवटें लेती है । सरोज परिस्थितियों की कठपुतली मात्र है। उसने अभी दुनिया देखी ही नहीं है कि उसका कौन-सा पहलू रंगीन है, कौन-सा सफेद और कौन-सा काला ।

ऐसे ही एक दिन अशोक ने एकान्त में सरोज से पूँछ लिया कि वह अपने एकांकी जीवन से सन्तुष्ट है या नहीं, तो उत्तर में सरोज रोने लगी । उसकी सिसकियाँ थमी ही नहीं । वह जैसे रुदन के सितार का सरगम बन गई थी। उसकी देह हो गई थी लता सदृश्य, जिसे द्रुम की लम्बी लम्बी शाखों की आवश्यकता थी; क्योंकि जब बाहें फैलती हैं, तो प्यार उनमें भर तृप्ति-अतृप्ति का अनुभव करता है और जब लगन लग जाती है, तो मनुष्य एक मार्गी बन जाता है । उसमें पश्चाताप आता है । वह सोचता बहुत और कर कुछ भी नहीं पाता ।

किसी तरह कुमारमाधव सरोज के कमरे से बाहर आये । वे सोचने लगे कि अभी सरोज के हाथों की मँहदी मैली भी नहीं हुई, उसके पैरों का गुलाबी महाबर अभी तक विद्यमान है । उसकी आँखों में लाज का काजल है, तभी तो नयन कजरारे हैं । यह फूल किसी की जिन्दगी का सिंगार नहीं बन सका; बल्कि मसल दिया गया । यदि उसका दूसरा व्याह कर दिया जाय तो कैसा रहेगा ? इस विषय में कभी सुनीता से बात करनी है । स्त्रियों के मर्म को स्त्रियाँ-ही अधिक समझती हैं । नारी जब एक बार पति से टक्कर ले लेती है, तो फिर वह या तो देवी बन जाती है या फिर अपनी नारीत्व को

भूल अपने जीवन देवता से डर जाती है। इसलिए ही कोई युवती जहर खा लेती है, कोई आग लगा कर मर जाती है।

अशोक सोचता कि यह सरोज मेरे प्रति इतनी आकर्षित क्यों ? यह जब उजड़ गई है, तो बरबादी की परिभाषा भी खूब जानती होगी। भाषा और वाणी ये दोनों ही तो बतला देती हैं कि मनुष्य का मूल्य क्या है। उसमें कितनी क्षमता है। देखने वाले आँखें फोड़ नहीं लेते, सुनने वाले बहरे नहीं हो जाते। आज के युग में हमारे देश की नारी पीछे नहीं, वह देश के कोने-कोने में अपना उत्तरदायित्व अर्पण कर रही है। सरोज भी जागृत महिला समाज, की एक सदस्या बन सकती है। वह भी गोदी में लाल खिला सकती है। यह उसके लिए अभिशाप नहीं।

इस तरह कुमार माधव सरोज के प्रति सोचते और अशोक भी उसी को चिन्ता में व्यस्त रहता। सहानुभूति की दो नदियाँ बह रही थीं। एक में श्रद्धा का पावन नीर था, दूसरी में मोती जैसा जल भरा था, जो प्यार का प्रतीक था।

और सरोज थी वह कुन्द कलिका जो भारतीय नारी की लाज की झोली थी, जो हिन्दू विधवा थी, जो समाज के लिए अपवाद थी, जो जिन्दगी की जीत नहीं एक हार थी। जो सब कुछ मिला कर एक अबला थी। जो अब असहाय थी, जो निराधार थी जो अपने में ही भूली हुई उस डूबते हुए सूरज की एक किरण जिसका अस्तित्व केवल-मात्र होता है, जो बूढ़ा होता है, जो साँझ का प्रतीक बनता है। उसी डूबते हुए सूरज की वह बेटी थी और कुछ नहीं।

३३



अशोक और सरोज दोनों कुमार माधव के बंगले में इस तरह रह रहे थे जैसे एक प्रीति का पक्षी हो, परदेश से उड़ कर आया हो और उस परदेशी से किसी की लगन लग गई हो जो माटी की गुड़िया है। सरोज कहती है कि मैं और तुम दोनों एक-ही तराजू के पलड़े हैं। तुमने यहाँ आकर साँस ली है और मैंने शरण पाई है। यह तीर्थ है। सुनीता और कुमार माधव धन्य। वे धरती पर स्वर्ग बना बैठे हैं। हमें उनकी पूजा करनी चाहिये।

अशोक कर्तव्यपरायणता के साथ-ही-साथ स्वाभाविक आकर्षण की डोर में बँध रहा था। यह डोर प्यार के रेशम की थी। प्यार थी जिन्दगी और सरोज रेशम। वह सोचता कि आखिर इसका परिणाम क्या होगा। मैं सरोज की ओर निरन्तर खिचता क्यों चला जा रहा हूँ। तो क्या नारी चुम्बक होती है? नारी की ओर पुरुष बढ़ता क्यों? क्या यह स्वाभाविक हैं। नारी नर की संज्ञा है। तो क्या सरोज मेरी जिन्दगी में आ सकती है?

और सरोज उसका भी अपना अलग उधेड़ बुन का जाल लग रहा था कि अशोक देखने में कितना भला और कितना प्यारा मालूम होता है। काश! इसकी दुनिया बस जाती। इसके परिवार होता! मैं तो यही कहूँगी भगवान से कि अगर तुमने मुझे जिन्दगी का सुख नहीं दिया, तो कोई बात नहीं; लेकिन मुझे सेवा का मौका दो। मैं कुमारमाधव को बड़ा भाई समझूँ। राखी पर उनकी कलाई में अपना पवित्र बन्धन बाँधूँ और सुनीता से जाऊँ गले मिल। इसके अलावा मैं अशोक को वह सुख दे सकूँ जो प्यार की पहली सीढ़ी चढ़ने पर होता है। यह अशोक मन में क्यों बस गया! कहीं कुछ होने वाला तो नहीं? जब कोई आँखों में प्यार बन कर समा जाता है, तो ऐसा-ही होता है। आदमी उसके प्रति दिन रात सोचता है, खूब सोचता है मनुष्य। अगर वह सोचना छोड़ दे तो पागल हो जाय।

और भी सोचती थी सरोज कि अगर मात्र मेरे लिए इस दुनिया में ठौर

है, तो धरती के उस छोटे-से टुकड़े को क्या मैं कलेजे से नहीं लगा सकती। क्या मैं किसी से प्यार नहीं कर सकती ? मैं प्यार के सागर में डूब जाना चाहती हूँ। मैं सपने की दुनिया में सब कुछ खोने को तैयार हूँ। झलक नहीं टिकती, वह झिलमिल करके ग्रादमी को चकाचौंध में डाल देती है। क्या वह चमक जिन्दगी को रोशन नहीं कर सकती। जहाँ रोशनी नहीं, वहाँ जीवन नहीं। जहाँ जिन्दगी है वहाँ तृष्णा का महल खड़ा है। जहाँ रौनक है वैज्ञानिक युग की, वहाँ ग्राधुनिक प्रगति का दर्पण सामने है। सीसे में मुँह देखा जाता है, उसे चूर-चूर नहीं किया जाता।

सुनीता ग्रौर कुमारमाधव भी सरोज तथा ग्रशोक की गतिविधि का ग्रध्ययन कर रहे थे। वे पा रहे थे उनमें पिछड़े हुए वर्गों के तथ्य। वे ग्रपने में ग्रत्यन्त प्रसन्न थे। इसके ग्रतिरिक्त वे चाहते भी नहीं थे कि कोई ऐसा काम करें, जिससे दुनिया में उनकी हँसी हो।

दम्पति जब सरोज ग्रौर ग्रशोक को पास-पास देखते, तो कुमारमाधव हँसकर कहने लगते—"ग्राग्रो मेहमान। ग्राज क्या पकाग्रोगी सरोज ? ग्राज तुम ऐसी चीज बनाग्रो जो मैंने पहले कभी न खाई हो।"

"भइया की बातें ! तुमने क्या नहीं खाया, तुम्हें क्या खिलायें ! ग्रच्छा तो ग्राज गरीबी को न्यौता दूँ। मैं कंकड़ का साग बनाऊँ। उसमें भी स्वाद ग्राता है। मैं......"

"सरोज बिटिया, कंकड़ का साग ? कहीं दिल्लगी तो नहीं कर रहीं ? ग्राज तुम वही बनाग्रो। देखूँ तुम्हारी कारीगरी। ग्रफसोस तुम्हारे ग्रंग-ग्रंग में गुण हैं, लेकिन कोई कदर करने वाला नहीं।"

यह कहा सुनीता ने सरोज की बात बीच में काट कर। फिर उस दिन कंकड़ का साग बना। सबने खाया। उसमें बड़ी लज्जत थी। ग्रशोक को वह बहुत ग्रच्छा लगा। जब वह रात को उसे दूध देने गई, तो उसने पकड़ ली उसके बायें हाथ की ग्रनामिका ग्रौर धीरे से प्यार भरे स्वर में बोला—"इन उँगलियों में जादू है सरोज। जी चाहता है इन्हें चूम लूँ, जी भर कर प्यार कर लूँ। लेकिन कैसे ? तुम ग्रमावस की रात हो ग्रौर मैं जेठ की दोपहरी।

तुम बुझी हुई शमा हो और मैं पंख कटा परवाना। तुम जिन्दगी का वह गीत हो जो कभी गाया नहीं गया, गुनगुनाया भी नहीं गया। मैं वह अकेला राग हूँ, जिसका कोई सार नहीं, जिसका कोई सिलसिला नहीं। सरोज हम दोनों अभागे हैं। भगवान हमें मौत दे।"

"छिः छिः यह क्या कहते हो ? मरें तुम्हारे दुश्मन। मौत आये मुझे। तुम किसी के सोहाग बनोगे, किसी की माँग में सिन्दूर भरोगे। सरोज क्या है—एक ठंडी राख, जो सिर्फ बर्तन मलने के काम आती है। तुम्हें मेरी कसम जो अपने लिये मौत माँगी। अपने लिये बुरा भला कहा।"

बात कहने के साथ ही सरोज ने अशोक के मुँह पर हाथ रख दिया था। और अब वह हो गई थी प्रेम विह्वल। उसके नयन कटोरों से मँहगे मोती झाँकने लगे थे उसकी वाणी आर्द्र हो आई थी। वह जैसे अधिकारों की देवी थी और अधिकार के देवता से प्रणय-बन्धन कर रही थी।

अशोक ने यह देखा, तो उसके मुँह से एक लम्बी साँस निकली। वह साँस एक कहानी थी बहुत ही दूर। वह नयी टेक्नीक की नहीं, पुरानी पद्धति की नहीं, वह एक भावमयी कविता थी, जो जिन्दगी के साज पर गाई जाती थी। वह धीरे-से बोला—"सरोज तुम मुझे इतना चाहती हो ? दुनिया में जब कोई किसी को चाहता है या प्यार करता है, तो उसका जीवन धन्य हो जाता है। तुम कौन हो सरोज ? कहीं मेरी दुनिया तो नहीं, मेरी जिन्दगी की आवाज तो नहीं। मुझे लगता है कि मेरे आँखों की रोशनी तुम्हीं हो। तुम्हीं वह शक्ति हो जो मुझे जीने की प्रेरणा दे रही हो। सरोज क्या दो उजड़े हुए घौसले बस नहीं सकते ? क्या दो मोती एक माला में पिरोये नहीं जा सकते ?"

"सभी होता है, सब हो सकता है। लेकिन एक जूठी पत्तल में भोजन करना ठीक नहीं। नयी दुनिया बसाओ। क्या भूल गये ? सरोज विधवा है। और विधवा होती है समाज के लिये एक कलंक। वह कालिमा है। पूर्णिमा का चाँद नहीं।"

जब यह कहा सरोज ने, तो अशोक उसके निकट चला आया। उसने

बरबस ही उसका हाथ चूम लिया और धीरे से हँसकर बोला—"जूठी पत्तल नहीं सरोज; तुम अमृत का प्याला हो। जो तुम्हारी रूप माधुरी का पान करेगा, वह अमर हो जायेगा देवताओं की तरह। कितनी अच्छी हो तुम ? तुम्हारे मुँह में जैसे मिसरी घुली है।"

तब सरोज शरमा गई; वह वहाँ से भाग गई और अशोक खड़ा सोचता रह गया कि यह सरोज इस बँगले की रौनक है, यहाँ की एक मीठी जिन्दगी। यह दुनिया है और एक ऐसा लोक जहाँ सरलता वास करती है, संतोष की नदियाँ बहती हैं और उन पर चलती है प्यार की डोंगियाँ। उन डोंगियों में युगल-प्रेमी गीत गाते हैं। प्यार के पतवार चलते और सुख का समीकरण बहता। वह कहता कि मैं अपने लिये नहीं, दुनिया के लिए डोल रहा हूँ। मैं जिन्दगी के लिए नहीं, संसार के लिये जी रहा हूँ। यह मृत्युलोक है। यहाँ का वायुमंडल ही यहाँ के लोगों की जिन्दगी।

३४



अशोक मिल जा चुका था। उसकी ड्यूटी जल्दी की थी और सरोज गई थी नीमा के साथ फल आदि खरीदने। कुमारमाधव मूविंग चेयर पर बैठे 'टाइम्स-आफ-इण्डिया' समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। सुनीता बादाम का हलुआ लेकर आई जो गरम था और जिसे देशी घी की सोंधी-सोंधी वास उठ रही थी। हलुआ चाँदी की तस्तरी में था जिसमें चाँदी की ही चम्मच पड़ी थी।

पति खाने लगा और पत्नी उसके पास-ही एक कुर्सी खींच कर बैठ गई। मौक पा, वह धीरे से बोली—"एक बात कहूँ, तुम अभी तक वहाँ पहुँचे या नहीं। यह सरोज और अशोक दोनों में कैसी निभती है, कैसी पटती है।

अगर इनका ब्याह कर दिया जाय तो कैसा रहेगा।"

"कैसा ? यह भी कोई पूछने की बात है। नेकी और पूंछ-पूंछ ! सोने में सुहागा है सुनीता। मैं स्वयं तुमसे कहने वाला था।"

पति के मुँह से यह सुन सुनीता फूली न समायी। वह दूने उछाह में भर कर बोली—"तो दोनों से बात करूँ या तुम करोगे ?"

"अजी उनसे बात करना क्या ? पूंछना-पछोरना क्या ? उनसे जो हम कहेंगे, वे करेंगे। वे हमारे पाले हुए तोते हैं, उड़कर कहीं नहीं जायेंगे।"

कुमारमाधव की यह बात सुन सुनीता जोर से हँस दी। वह बोली—"अच्छा, तो वे तोते हैं और मैं भी शायद तुम्हारी पाली हुई मैना। तभी तो तुम्हारा जैसा बोलती हूँ। खूब रही यह।"

बात समाप्त करते-करते सुनीता हँसी से लोट-पोट हो गई। कुमार माधव भी खूब हँसे। उनके पेट में बल पड़ गये और तभी नीमा के साथ लौट आई सरोज। बाहर कार का हार्न बजा, तो दम्पत्ति ऐसे बन गये जैसे माटी के बुत। उन्होंने तनिक भी आभास नहीं होने दिया सरोज को और सरोज आते-ही अपनी कहानी कहने लगी कि यह मँहगाई आदमी को मार डालेगी भइया। मौसमी आज रुपये की तीन मिली है। क्या देहली इतनी मंहगी है ? अंगूरों पर हाथ ही नहीं रखा जाता। ढाई रुपये सेर। बेदाना अनार का भाव बढ़ गया। अभी कल दो रुपने सेर लाई थी। आज बिक रहा था बारह आने पाव। गरीब तो फल खा-ही नहीं सकता।

इस पर कुमारमाधव मुस्कराये। वे वाणी में स्नेह भर कर बोले—"अच्छा, तो तुमने मंहगा खरीदा या सस्ता ? अकेले भाई की अकेली बहन। उसे कंजूस तो नहीं होना चाहिये। उसे दोनों हाथों खर्च करना चाहिये; उसका भाई कमाता है।"

इस पर सरोज तो सकुचा गई; उसने शर्म से सिर नीचे झुका लिया। और सुनीता हंसी से विकसित हो छूटते ही कहने लगी—"हाँ, क्यों नहीं ? सरोज को चाहिये रुपये सेर की चीज वह दो रुपये में खरीदे। पैसा खर्च न कर सके, तो उसे राह में फेंक दे ? तुम्हीं क्यों कमाते ? क्या अशोक घास

छीलता है ? लाता तो है हर महीने । रुपये तुम्हारे-ही हाथ पर रख देता है । क्या उस पूँजी पर सरोज का हक़ नहीं ? अशोक उसका कोई नहीं ? क्यों सरोज ।"

अब सरोज के पास जवाब नहीं रह गया । वह जल्दी से वहाँ से भाग गई । तभी सुनीता पति का कंधा हिला उसका ध्यान अपनी ओर केन्द्रित कर बोल उठी—"पहचानी उड़ती चिड़िया ? मैं तो कहती थी कि दोनों एक दूसरे के क़रीब पहुँच रहे हैं ।"

"हाँ सुनीता, तुम सही कहती हो । आज मैंने भी थाह ले ली । सरोज वह नहीं है जो धीरे-धीरे बह रही है । सरिता सागर से संगम करना चाहती है । बीच में माटी का टीला है एक डेल्टा । धार रुक गई है, प्रवाह थम गया है । दोनों मिलने के इच्छुक हैं और वह संयोग हमारे हाथों में है ।"

"संयोग को छोड़ो, दोनों से बात करो और इस शुभ काम को कर डालो । अगर अपने द्वारा किसी का हित हो रहा हो, तो उस काम को अवश्य करना चाहिये । सोच लो, विचार लो; मैं तो यही उचित समझती हूँ ।"

अब कुमार माधव कुछ गम्भीर हो आये थे । उन्हें सुनीता की बात अत्यधिक पसन्द आई । वे उसी विषय पर सोचने लगे और सुनीता भी पड़ गई गहरे अन्तर्द्वन्द्व में कि विधवा विवाह वर्जित नहीं; आज के युग में मान्य है । जो मान्य है वही मान्यता है । जो निश्चय है, वही अटल है । यह क्या कम सुख का प्रतीक है ? ज़िन्दगी में सुख-ही-सुख है । अगर आदमी किसी को अपना बना ले, किसी की दुनिया बसाले । ऐसी विश्वास की दुनिया में मन के सौदे की हाट लगती है जो देखा नहीं जा सकता, छुआ नहीं जा सकता, जो केवल अनुभव है ।

दुनिया उनके लिये एक समस्या होती है जो कर्मठ नहीं होते, जिनका पथ निश्चित नहीं, जिनका कोई ध्येय नहीं । दुनिया उसकी है जो जीवट का पुतला है और जिसे ज़िन्दगी प्यारी नहीं है । प्यार वह अनमोल मोती है जिसकी आब में स्वर्ग बसता है और स्वर्ग में सोना महकता है । पत्थर में फूल खिलते हैं । वहाँ रुपहली बालू में खेती होती है और उस बालू से ही

निकाला जाता है सुगन्धित तेल, सुर-सुन्दरियाँ जिससे अपना केश-विन्यास करती हैं। वहाँ पर धरती के फूल नहीं खिलते। वहाँ अमर फल लगते है। यहाँ कल्प वृक्ष नहीं, कामधेनु गाय है, इसीलिये तो वहाँ दूध की नादियाँ बहती हैं।

३५



एक दिन जब सरोज अशोक को दूध का गिलास देने गई, तो उसे देखते ही वह चारपाई पर हो गया सीधा एकदम चित लेट। वह सोया नहीं था; लेकिन नकली खर्राटे ले रहा था। सरोज ने उसे जगाया। देर बाद वह उठा और उठते-ही उसने पकड़ ली उस कुन्द कलिका की नरम कलाई जो नरम थी रेशम की तरह और सुन्दर गुलाब के मानिन्द। सरोज सकुची। वह वहाँ से जाने का उपक्रम करने लगी। तभी अशोक ने उसका चिबुक पकड़ा और उसके कपोल का एक मीठा चुम्बन ले लिया।

सरोज बोली—"धत्त!"

और अशोक ने कहा—"इसी को प्यार कहते हैं सरोज। तो मैं तुमसे न बोला करूँ। तुम........."

"बोलने को कौन मना करता है; चूमने की इजाजत नहीं। तुम कौन होते हो जी, मेरा प्यार तो मर गया है।"

इस पर अशोक फिर उठा; उसने सरोज को अपनी बाहों में भर लिया और कहने लगा—"सरोज प्यार ही जिन्दगी है। मैं जानता हूँ कि मुझसे अधिक तुम मुझे प्यार करती हो।"

"गलत, बिलकुल गलत। मैं प्यार भगवान को भी नहीं करती; क्योंकि वे कठोर हैं। सभी पुरुष एक साचे में ढले हैं सभी में निर्ममता है, किसी में

प्यार नहीं। जानते नहीं जनाब, कोरा प्यार करवटें बदलता है और जिनकी प्रीति सच्ची होती है वे ही गंगा-जमुना की तरह संगम करते हैं। चले जाओ अशोक तुम मेरी दुनिया में क्यों आये ?"

अशोक यह सुनकर हँस दिया और सरोज अकेले में सोचती रही कि अशोक अँधेरी रात का चाँद है। वह जिन्दगी का चिराग है। वह प्यार की रोशनी है। वह मेरा सब कुछ है जयन्त ने विश्वासघात किया, इसीलिए दुनिया से चल बसा। यह साथ देगा मेरा। मैं इसी की जीवन-संगिनी बनूँगी।

और कुमारमाधव तथा सुनीता एक दिन जब राजघाट गये महात्मा गाँधी की समाधि, तो एक कुँज में बैठ दोनों ने निश्चय किया कि जल्दी-से-जल्दी सरोज और अशोक का व्याह हो जाना चाहिये। व्याह का बन्धन है जो मनुष्य को समाज का एक सदस्य बनाता है परिवार वह पारस है, जिसके छूते-ही लोहा सोना बन जाता है। पत्नी वह धन है, जो लक्ष्मी की कोटि में आती है, इसीलिये गृह-लक्ष्मी कहलाती है। सन्तान वह सोना है जिससे सुगन्ध आती है और जिससे अन्तर का कोना-कोना महक उठता है। जिन्दगी एक प्रश्न है और जागरण उसका हल; सुख एक सपना है और शान्ति एक युग-मरीचिका।

सरोज अशोक के प्रति आकर्षित थी और अशोक में भी थी नयी स्फूर्ति, नयी उमंग, इसीलिये तो सुनीता और कुमारमाधव दोनों को विवाह के पवित्र बन्धन में बाँधने के लिये उत्सुक हो रहे थे।

एक दिन सरोज और अशोक अकेले-ही कनाट-सर्किल गये, जहाँ नयी देहली की जवानी हँस रही थी। फूल हँस रहे थे, चाँदनी उन पर अपना विजय डुला रही थी। हवा बन गई थी कुलवधू। उसके पैरों में महावर था। वह कह रही थी—"जियरा सनन्-सनन् होय मोरे राजा। आजा परदेशिया, आजा मोरे बालमा, तोहे पलकों की ओट छिपाऊँ, तोहे नयनों की ओट बिठाऊँ। आ, आजा मोरे रसिया, रतियाँ, सूनी, दिल है प्यासा, तोहे मोरे प्यार की कसम, आ जा निरमोहिया। रतियाँ सनन्-सनन् हो......"

अशोक ने एक जूही का फूल तोड़ा और उसे लगा दिया सरोज की चोटी में, तो वह शरमायी, सकुचायी और लता सदृश उसके गले से लग गई फिर

धीरे-धीरे बोली—"तुम मुझे प्यार करते हो या मेरी जवानी को। यह फूल कल मुरझा जायेगा तब क्या होगा ?"

"प्यार का फूल कभी मुरझाता नहीं सरोज जिसे तुम मुरझाना कहती हो, वही तो मरने-जीने की कला है। जिसे तुम मिट जाना समझती हो, वही तो प्यार का परिणाम है। लाओ, मेरे हाथ में हाथ दो और गुनगुनाओ—"जीवन में पिया मेरे साथ रहे, हाथों में तेरे मेरा हाथ रहे। रहे तब तक प्रीति अमर अपनी, गंगा-जमुना में बहे पानी। जीवन में पिया मेरे साथ···"

सरोज कुछ भी नहीं बोल पायी। वह धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी—"जीवन में पिया मेरे साथ रहे, हाथों में तेरे मेरा हाथ रहे।"

तभी हवा चली, पौधे लहराये, फूल मुस्कराये, और वे स्वयं गुनगुनाने लगे—"यह जिन्दगी उसी की है जो किसी का हो गया, प्यार ही में खो गया।"

सरोज और अशोक दोनों चल दिये एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए। वे कनाट-सर्किल से बाहर आये और एक कार में बैठे और जब कार गुजर रही थी रंगीन देहली की नई सड़क से, तो लाऊड-स्पीकर सुन पड़ा—"जिन्दगी प्यार की दो-चार घड़ी होती है, चाहे छोटी हो उमर यह बड़ी होती है। जिन्दगी प्यार की······"

दोनों मुस्कराये; दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। जब कोठी आये तो कमरे की चौखट पर रुक सुनने लगे। अन्दर कुमार माधव और सुनीता की बातें हो रही थीं। सुनीता का कथन था—"सरोज की चढ़ती जवानी है और भरी हुई गगरी का नीर छलकता जरूर है। अशोक भी अपने में पूर्ण है। दोनों का ब्याह कर दो, बस इसी में भलाई है।"

"सरोज और अशोक का ब्याह, यह तो मैंने पहले ही सोच लिया था। दोनों चोली-दामन हो रहे हैं। दोनों एक साथ ही प्यार के गोते खा रहे हैं। दोनों अनिश्चित हैं, दोनों ही अस्थिर। मैं उन्हें आगे बढ़ाऊँगा, उन्हें जिन्दगी की राह दिखलाऊँगा।"

कुमारमाधव का यह कथन सुनीता को अत्याधिक प्रिय लगा। वह जैसे

अपने में आत्म-विभोर हो गई। उसे लगा कि जैसे वह सो गई और उसकी दुनिया जाग रही है। वह अपने को भूल गई, उसकी पराकाष्ठायें अपने-आप संघर्ष करने लगीं।

और तभी एक बुझता हुआ दिया जला। दोनों के अन्तरिक्ष घरघराये, तार झनझनाये। दोनों ही सतर्क हो गये। तभी दोनों के हृदय में प्यार की शहनाई बजी, उसके स्वर गूँजे और उनके अन्तरिक्ष ने गाया—"जब प्यार में कशिश होती है, तो दिल की धड़कन कहती है कि आओ, आओ सनम, मन में मेरे हँसते हुए आओ। प्यार का वसन्त बन जिन्दगी की बहार में मुस्कराओ। हँसते हुए आओ......"

कुमारमाधव ने एक दिन अशोक को टटोला, उसके अन्तर की थाह ली, तो स्पष्ट नहीं हुआ; किन्तु वे समझ गये कि अशोक सहमत है सरोज से ब्याह करने के लिए।

और जब सुनीता ने सरोज के मीठी चुटकी ली, तो उसने भी अपना मर्म उस पर प्रगट कर दिया और सुनीता ने पाया कि सरोज अशोक को अत्याधिक प्यार करती है। उसने 'हाँ' कह दी और सुनीता की सारी बातें मान लीं।

कुमारमाधव इससे बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—"जो दुनिया का उद्धार करते हैं, वे महान कहे जाते हैं और जो अपने होकर भी मुकर जाते हैं, वे बेगाने बन जाते हैं।

इस तरह सरोज और अशोक की दुनियाँ एक अलौकिक सुख की अनुभूति कर रही थी। उस दुनिया में क्या था—एक प्यार का मेला और प्यार के मेले में गूँज रही थी प्रीति की शहनाई। उस शहनाई के स्वर इतने बुलन्द थे कि धरती नहीं, अब आकाश रो दिया। अशोक के कान खड़े हो गए। उसकी आँखों से टपटप नीर बहने लगा।

अशोक और सरोज दोनों अपने में निर्लिप्त पीड़ा-भाव लिये एक नये पथ के पंथी बन रहे थे। सुनीता और कुमारमाधव दोनों को प्रसन्न देखने के लिए

चिन्तित थे ।

बसेरा बसने जा रहा था; लेकिन अभी सामान नहीं जुट पाया था। और जुटता भी कैसे; क्योंकि सरोज और अशोक दोनों ही पराये बन्धन में थे। बन्धन वह जंजीर है, जो अपराधी को अपराध करने के लिए विवश तथा मजबूर कर देती हे ।

इस तरह कुमारमाधव और सुनीता ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अगली सहालगों में वे अशोक को गृहस्थ बनायेंगे, उसके गले में पत्नी का हार डाल देंगे और निश्चय जब निर्वाह के हाथ बिक जाता है, तो व्याघात उसके पैर छूने लगते हैं, झंझावात अपने-आप राह छोड़ देते हैं, समस्यायें दूर से कहती हैं नमस्कार—नमस्कार। समय बन जाता है साथी। वह कहता है कि मेरे साथ चलो। जब धरती पर अमृत की वर्षा होती है, तब इन्सान अमर हो जाता है और जब वही अमृत्व का घूँट पीकर इन्सान इतराता है, गर्व करता है, तो उसकी गति होती है राहु तथा केतु की तरह। सिर अलग हो जाता है। और धड़ तड़पने लगता है।

जो किसी का उत्तरदायित्व अपने सिर पर ओढ़ते हैं, वे माँ-बाप नहीं होते, अंगरक्षक भी नहीं कहे जाते और न शुभचिन्तक ही। वे होते हैं भगवान, तभी तो दूसरे का बेड़ा पार लगाते हैं। जिनमें निर्माण की भावना होती है, वे ही धरती के पूत कहलाते हैं। वे ही कुछ कर दिखलाते हैं। उनकी ही संज्ञा सार्थक होती है और वे ही सच्चे इन्सान कहलाते हैं। इन्सान आदि है, अवसान अन्त और अवसान ही वह मंजिल है, जो जिन्दगी को एक ओर से उठाकर दूसरी ओर पटक देती है।

कुमारमाधव एक व्यक्ति थे और सुनीता गृह-लक्ष्मी। दोनों ही एक दूसरे के सुख में सुखी थे और उसके दुख में दुखी। दम्पत्ति अहं-भाव से दूर थे इसीलिए तो उनकी दुनिया सुखी थी। वे सरोज और अशोक को ऐसे सूत्र में बाँधने जा रहे थे, जो प्यार का प्रतीक ही नहीं, प्रणय का परिचायक था। जो अपने में पूर्ण था। जो राग था, जिसमें सभी रंग निखर रहे थे। जो इन्द्रधनुष

था। जो अनुपम था, अपने में अनोखा और जिसे दुनिया जी भर कर प्यार करती थी।

३६



कुमारमाधव ने अशोक को टटोला और सुनीता ने सरोज की थाह ली। दोनों ही उसी समस्या के शिकार थे जिसे कहते हैं संगम, स्त्री पुरुष का मिलन। बस ब्याह हो गया; दोनों एक पवित्र बन्धन में बँध गए। सरोज अशोक की हो गई और वह उसका देवता। नवदम्पति की नई दुनिया बसी। अब कुमारमाधव ने उन्हें अपने बँगले में दो कमरे दे दिए। सरोज सुनीता का मुँह देखकर चलती, अशोक हमेशा कुमारमाधव के गुण गाया करता।

उदारता ले रही थी उस बँगले में नई करवट तभी तो सुनीता सरोज को साथ लेकर सर्राफे बाजार गयी। वहाँ से खरीद लायी उसके लिए एक सोने का हार। कुमारमाधव दो दर्जन साड़ियाँ ले आए। वे सब सरोज को भेंट थीं। अशोक को लाए वे 'आटोमेटिक वाच', जो बिना चाभी दिए चलती है।

वर पक्ष की ओर से आगे चलने वाला केवल एक ही व्यक्ति था कुमारमाधव। आतिशबाजी छूटती चली गई, गोले अलग दगते रहे। ब्याह हो गया सम्पन्न उस घर में। सुनीता की वाणी वाचाल थी उसके अवयव कार्यरत। उसमें जो एक लालसा थी वह पूरी होने जा रही थी। उसकी बायीं आँख फड़क रही थी। बायाँ कन्धा अपने अलग उछल-कूद मचाए था वह सोचने लगी कि जिन्दगी तभी खुशहाल होती है जब कोई सर परस्त होता है। जिन्दगी हारती है वहीं पर देहधारी जब बुजदिल होता है। वह धीरे से गई और कुबेरी-बेला में एक पलँग पर बैठ मन-ही-मन सोचने लगी कि जिन्दगी

क्या है—सत्य नहीं, एक स्वप्न । जब दिन अस्त हो जाता है, तो रात में प्रभात जागता है । रोशनी उसे जिन्दगी देती है, रात दिन बन जाती है उसी तरह जैसे पूर्णिमा की रात में चाँद जवान होता है ।

कुमारमाधव बहुत-सी बातें सोचते और सोच सोच कर रह जाते । वे पत्नी से भी परामर्श नहीं करते, अपने मन की करते । तभी तो उन्हें घाटा लगता चार बार और मुनाफा एक बार । सरोज और अशोक का ब्याह वैदिक रीति से कर दिया गया था । उसमें शामिल हुई थी मनोरमा भी । वह सूक्ष्म परिचय की ज्ञात्री थी । वह सुनीता की पड़ोसिन थी और थी एक योग्य महिला ।

विधवा पुन: सधवा बन गई थी उसकी सूनी माँग भर गई थी लाल-लाल सिन्दूर से । उसकी उमंगें जवान हो चली थीं । उसका अन्धकार प्रकाश के सम्मुख दुम छिपाये बैठा था ।

मोहल्ले में सरोज और अशोक के ब्याह को लेकर खूब चर्चा हुई । किसी ने भी इस काम को अच्छा नहीं कहा । सभी ने धिक्कारा । तभी कुमारमाधव बीच में आये । वे भीड़ में सन्तुलन कर बोले—"चलते जाओ भाई । न अपनी कहो न दूसरे की सुनो, दुनिया में यही चलता है ।"

इधर सुनीता और कुमारमाधव की यह स्थिति थी उधर सरोज और अशोक दोनों एक-दूसरे की तरफ इतनी तेजी से बढ़ रहे थे जैसे बाढ़ का पानी । वे नहीं जानते पगले कि पानी-ही प्रलय है और प्रलय में दिया है साक्षात-ब्रह्मांड । ब्रह्माँड क्या है—दुनिया । दुनिया क्या है—एक छोटा-सा संसार, क्योंकि भूल जाती है सृष्टि कि संसार उसका इकलौता पूत है ।

सौभाग्य की छाया में पलना उतना-ही अनिष्टकारी होता है, जितनी गरीब के लिये दौलत । पैसा प्यास है । धन जिन्दगी नहीं । जिन्दगी वह जो फूल की तरह मुस्कराये और मोती की तरह चम-चम चमके ।

× × ×

नहीं मानते धूर्त्त जब वे सज्जन का पल्ला पकड़ लेते हैं । सज्जन होता है एक और वे चार कहलाते हैं । सज्जनता अस्तित्व के किले पर खड़ी हो

जोर-जोर चिल्लाती है। धोखा लेता है दुम दबा तभी तो उसे डरपोक कहा जाता है। स्त्रियों की राय पुरुष से कभी मेल नहीं खाती। वे ज्यादा दकियानूसी होती हैं। और दकियानूसीपन होता है वह जहर जिसे पीते-ही प्राण भटक जाते हैं किन्तु नहीं निकलते।

खूब सजाया सुनीता ने दुलहिन सरोज को। उसके अंग-अंग में गहने पहना दिये। उसको लपेटा एक ऐसी साड़ी में जो केसरिया रंग की थी, जरी की थी, रेशमी थी। कुमारमाधव यह देख मुस्कराये। वे बोले—"चलना आज सरोज तुम्हें मैं अपने पास से दो एक साड़ियां ले दूंगा जिनका मोल सौ-दो सौ हो।

कुमारमाधव कहते रहे, सुनीता सुनती रही, सरोज सिसकती रही और उन सिसकियों में ही आ गई एक दिव्य अलौकिक ज्योति, जिसने सरोज को ज्ञान दिया कि जिन्दगी से उपेक्षा नहीं, उसे प्यार करना चाहिए।

३७



यद्यपि निश्चिन्त था अशोक। और सरोज वह अपने में पूर्ण विकसित कलिका थी, जो कभी कली थी। जिसके शैशव ने तरुणी से नाता जोड़ा और यौवन ने गाया राग मल्हार। तभी तो उसके गदराये यौवन की बगिया में मन की कोयल बोली। तभी शुक ने सारिका का शृंगार किया। तभी प्रणय हो गया अनमोल। उसकी आँखों से दो सच्चे मोती ढुरके। एक का नाम था प्रीति और दूसरे का प्यार। दोनों की सौभाग्य रात्रि बीती थी वृन्दावन की कुंज गलियों में। दोनों ने गाँठ बाँध कर मथुरा में जमुना स्नान किया। यह व्यवस्था थी सुनीता की। नव-दंपति ऐसे थे जैसे कली गुलाब की। जो खिलती है, तब छिटकती है। मानो वह जिन्दगी के काँटों से लड़ाई लड़ती है कि काँटे कुछ

नहीं है, जो कुछ है फूल । शूल क्या है—कुछ नहीं, केवल हिंसा का द्योतक ।

ब्याह मनुष्य के विश्वविद्यालय का पहला पाठ है । वह पाठ दोनों ने पूरा कर दिया । सरोज और अशोक एक सूत्र में बंध गये । धीरे-धीरे उनके ब्याह को एक माह व्यतीत हो गया । दम्पति ऐसे हो रहे थे जैसे काठ की गुड़िया, काठ का गुड्डा । उनका भविष्य कुमारमाधव की साँसों के बीच सुख की नींद ले रहा था । उनका संगम सुनीता से गठबंधन कर रहा था और उनका विवेक रहा था जाग । वह बराबर कह रहा था । "आओ बनायें घरवा प्यारा, प्यारा-प्यारा जग से न्यारा । गंगा जी की माटी लायें जमुना जी का जल, कन्हैया के साथ बनायें अपना राजमहल । आओ बनायें घरवा प्यारा......"

अशोक ने नहीं कहा, सरोज ने चर्चा तक नहीं छेड़ी, स्वयं बुद्धिमता से काम लिया कुमारमाधव ने और सुनीता ने भी पति को पूरा-पूरा सहयोग दिया । करोलबाग के निकट ही देवनगर में एक पचास रुपये मासिक का मकान ले लिया गया नवदम्पति को ।

और उसी दिन सुनीता ने सरोज को एक हजार की चैक दी । ठीक तभी कुमारमाधव ने अशोक के नाम पाँच हजार का एकाउन्ट खोल दिया बैंक में । अशोक झुक गया कुमारमाधव के चरणों में । उनके आँसू आ गये और सरोज लग गई सुनीता के गले । वह तथ्य था, समाज का एक दर्पण । यह सहयोग था, सहानुभूति का प्रतीक । यह संगम था गरीब-अमीर का । यह योजना नहीं, एक नयी व्यवस्था थी । और हर नया सुधार समाज चाहता हैं, इंसान चाहता है, संसार उसका भूखा है । संगति वह गुण है जो अपने में निरुपमेय है, जिसकी समता नहीं । जो जिंदगी है और मौत भी । जो सुख हैं और दुख भी । जो फाँसी की काल कोठरी है और जीता-जागता स्वर्ग ।

शिष्टाचार समीक्षा है; समाज एक अलौकिक ग्रंथ । जिसके पृष्ठ लौकिक हैं । जो सामाजिक तथ्यों को ही लेकर अलौकिक बन जाते हैं । संसार वह सराय है जहाँ एक आता है और एक जाता है । मनुष्य वह पक्षी है, जो बसेरा बनाता है, घोंसला सजाता है । घोंसला क्या है—गृहस्थी का ही जीता-जागता उदाहरण है—एक पराकाष्ठा । तभी तो कभी आदमी के पर कट जाते हैं

ग्रौर कभी वह उड़ने लगता है।

संयत हो गये थे नवदम्पति ग्रौर संयम का उपहार लेकर ग्राई थी उनके सम्मुख प्रगति। जिसके एक हाथ में ऋद्धि थी, दूसरे हाथ में सिद्धि। उनका विज्ञान, उनका ग्रात्मविश्वास ग्रौर उनकी ग्रपनी मान्यतायें एक-दूसरे से कह रही थीं कि ग्राग्रो जिन्दगी को प्यार करो। जिन्दगी धोखा नहीं, एक विश्वास है। वह जादू नहीं एक सत्य है। वह ग्रमिट है यदि मनुष्य देवता बन जाय ग्रौर ग्रमृत्व का घूंट पी ले।

रामायण की वह चौपाई सरोज को भली भाँति याद थी ":कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहिं, सो तस फल चाखा।" वह उसी ग्राधार पर चलती। ग्रपने को कुछ न समझ दुनिया को सिर-ग्राँखों पर लेती। वह कर्म को गले से लगाती, सत्य से प्यार करती ग्रौर मिथ्या से कहती दूर-दूर। कर्तव्य को भाई मानती, उसके कंधे से कंधे मिलाती। वह जिन्दगी में मुस्कराती उस बुलबुल की तरह जिसकी कलंगी लाल होती है, जो जवान होती है, जो गाती है मीठा राग। कोयल उसे ग्रपनी छोटी बहन कहती है।

मनोविज्ञान ग्रन्त:प्रेरणा का प्रतीक है। मर्म उसका साथी है ग्रौर कर्तव्य उसका कर्मकार। जिज्ञासा उसका विशेषण है, क्रिया उसकी दासी ग्रौर कर्मठता उसका संज्ञात्मक बिशेषण। जिन्दगी एक पाठ है जिसे मनुष्य ग्रन्त तक पढ़ता रहता है। शिक्षा-ही सर्वस्व है, संगति-ही मूल। शांति ही सोना है ग्रौर संतोष पारस। पराकाष्ठा-ही मर्यादा है। वही तो मनुष्य के पाँवों में बेड़ियाँ डालती है। जिन्दगी तभी हँसती है, जब उस पर ग्रंकुश नहीं होता, वह प्रति-बन्ध से दूर रहती है। कलेजा तभी ठंडा होता है, जब उसमें संतोष की त्रिवेणी लहराती है। काया कुछ नहीं, माया भी एक जादू है। मोह एक भुलावा। स्नेह सरिता है ग्रौर जंजाल काँटे। जब जिन्दगी के जंजालों के बीच ज्ञान का फूल खिलता है, तो उसके चारों-ग्रोर काँटे-ही-काँटे होते हैं। वह गुलाब कहलाता है, काँटे उसकी परीक्षा। ग्रगर काँटे न हों, तो फूल का ग्रस्तित्व क्या? ग्रगर मृत्यु न हो तो जिन्दगी का मूल्य क्या? ग्रगर दुनिया न हो, तो इन्सान की ग्रास्था क्या? ग्रगर इन्सान न हो तो दुनिया क्या?

समाज का सीसा एक कच्ची काँच है, जो टूट जाता है, बिखर जाता है और कभी चम-चम करने लगता है।

३८



सृष्टि की गोद में दो फूल खिले थे। एक का नाम था आदि और दूसरे का अन्त। दोनों के बीच जो राग जागा था, अनुराग उपजा था, वह उनके प्रणय का चिह्न बना। फूल गर्भ में पलने लगा, जिन्दगी ने सांस ली। प्रणय बिन्दु पीयूष बन गया और वही अमृत बन गया एक आकार जिसे भ्रूण कहते हैं। सरोज उबकायी, उसका जी मिचलाया। तब सुनीता उसे देखने गई थी। उसने अशोक की लीं बलायें और हँस कर कहने लगी—"अरे आओ तो बाजार, कोई खट्टी चीज ले आओ। हमारी सरोज माँ बनने वाली है।"

सरोज झेंप गई; अशोक भी मुस्कराया और सुनीता बावरी-सी हो इधर उधर डोलने लगी। वह बोली सरोज से—"मैं बारी जाऊँ। अरे मुन्ना होगा या मुन्नी ! नाम मैं रखूँगी। गोद में मैं खिलाऊँगी। देखो कहीं जाना मत। घर से बाहर निकलना मत। गर्भवती-स्त्री ऐसी कहलाती है जैसे खरबूजा।"

सरोज कुछ नहीं बोली। वह केवल नीचे देखती भर रही। तभी अशोक ले आया पकी हुई इमलियाँ। सुनीता ने दीं, सरोज ने खायीं। बात पहुँची कुमारमाधव तक। वे भी फूले नहीं समाये कि अब उनकी बहन माँ बनेगी। अशोक की बीरान दुनिया में जो बाग लगाया गया था, उसमें फूल खिलेगा। जयन्त मर गया, अच्छा हुआ; सरोज की जिन्दगी बन गई।

नौरंग-प्लास्टिक-मिल का काम खूब जोरों पर चल रहा था। आयात-निर्यात अपनी चरम-सीमा पर था। गेट-वे-अरब-इन्डिया अर्थात बम्बई बन्दरगाह से जहाजों में माल भर कर विदेश जाता, उसके बदले में देश को

स्वर्ण मुद्रा लाभ होता। इसीलिये तो एक शाखा खोली गई बम्बई में और उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया अशोक को।

गर्भ का भ्रूण अब जीवन संज्ञा पा चुका था। सरोज को लगता कि जैसे उसमें कोई रेंगता है, कोई हरकत करता है। यह पाँचवाँ महीना था। इस अवधि तक गर्भ-स्थिति शिशु के सभी अवयव पूर्ण हो जाते हैं। उसके नन्हें से हृदय में धड़कन होने लगती है और गर्भिणी को इसका बोध होते देर नहीं लगती।

सुनीता जब भी कभी कनाट-प्लेस जाती या बाजार घूमती तो वह लाती रेशमी कपड़े रंगीन छोटे-छोटे टुकड़े। दरीबाकलां से वह पक्का गोटा खरीदती। किनारी बाजार से जरी के फूल लाती। वह गोटे की टोपी सिती और जरी के झुगुले और वही क्यों कुमारमाधव भी पीछे नहीं थे। वे लाये लाल मखमल के छोटे-छोटे जूते जिन पर कलाबतू का नहीं, जरी का काम था। वे कहते सुनीता से बार-बार जोर देकर—"देखो जी, सरोज का ख्याल रखना वह गर्भवती है। खाना दोनों समय नौकर के हाथ भेज दिया करो और महरी से कह दो कि वह जाकर टहल कर आया करे। मैं भी नियम बना लूंगा कल से। सबेरे जब टहलने जाऊँगा, तो उसके घर फल देता हुआ आऊँगा। कितने हर्ष का विषय है यह कि मैंने ईट और रोड़े को जसाकर भानवती का कुनवा जोड़ा। सरोज असहाय थी। अशोक मौत माँगता था। अब दोनों मिया-बीबी बन गये। कितनी खुशी का मौका है कि जुही की डाल नीचे झुक रही है, उसमें फूल खिलने वाला है। बच्चा मुझे मामा कहेगा और तुम्हें मामी। एक था जयन्त, जो बेचारी सरोज को नेश्तनाबूद किये था।"

सुनीता बलि-बलि जाती, वह मुंह से कुछ नहीं कहती, मन्द-मन्द मुस्कराती। इसी बीच बन गया आयोजन और अशोक बम्बई जाने के लिए तैयार हो गया वह मेल ट्रेन से भेजा गया। कुमारमाधव और सुनीता उसे पहुंचाने गये। गई थी सरोज भी, जिसकी एक आँख में पानी था और एक में खुशी का मोती। चलते-चलते अशोक ने कहा—"मैं जल्दी ही लौटूंगा सरोज, मेरी राह देखना और देखो, अगर तुम्हारा जी ऊबे, तो बंगले चली जाना।

ट्रेन छूट गई; रुमाल हिलाकर सबने अशोक को विदा दी। तभी लहराया हवा में सरोज का आँचल। वह घर आई और परदेशी के प्रति सोचने लगी कि वे जल्दी-ही लौट आयेंगे। कुमारमाधव भैया तो कहते थे कि करीब छः महीने लग जायेंगे। यह कैसे होगा, मैंने कह तो दिया है। क्या जब मैं बच्चे को जन्म दूंगी, वे बम्बई में होंगे? ईश्वर जल्दी से वहाँ का काम पूरा कर दे, वे लौट आयें। वे हाथों में लें अपनी औलाद को। अभी कुछ-कुछ याद बाकी है जयन्त की। माँ बनने के बाद में उसे बिल्कुल भूल जाऊँगी। कुछ नहीं होता दुनियाँ में, अपना-अपना भाग्य है। एक रोता है, एक हँसता है। एक मुट्ठी बाँधे आता और वही चल देता है हाथ पसार। कैसा था जयन्त। कहता था मेरी माटी की गुड़िया। डूब कर मर गया, चल दिया निर्मोही। सरोज की सुधि भी नहीं ली। गुड़िया खेली जाती है न। वह एक हाथ से दूसरे में जाती है। मैं भी खेली जा रही हूँ। जयन्त के हाथों में प्यार था। अशोक है एक गुदगुदी और गुदगुदी किसे अच्छी नहीं लगती। हर आदमी हँस देता। अब माटी की गुड़िया नहीं, मैं सोने की रानी हूँ। पहले मैं ऐसे आदमी की पत्नी थी, जो दुनिया के लिये कलंक था। अब मेरी इज्जत है। मैं मिल मैनेजर की बहन हूँ और मिल के बड़े-बाबू की पत्नी। भगवान इतनी दया कर कि पिछली बातें मैं बिल्कुल भूल जाऊँ। सब कुछ नया-नया ही देखूँ और नये में ही खो जाऊँ। नये का नाम-ही नव जीवन है और पुराना दुखड़ा। आह! हर दिन नया हो, हर रात निराली। हर रोज दीवाली हो मेरे आँगन में। कैसा जयन्त? किसका जयन्त? सरोज अब माटी की गुड़िया नहीं, वह सोने की रानी है।



सवेरा हुआ, छज्जे पर बैठी गौरैयाँ चीं-चीं करने लगी। लाल सूरज सफेद हुआ। उसने अपनी किरणें भेजीं धरती पर खेलने के निमित्त और हवा को भी पवन देव का आदेश मिला कि धीरे बहो, धीरे चलो, गर्भिणी सो रही है, सुहागिन जागने वाली है। उसे मीठी-मीठी लोरियाँ दो, थपकियाँ देकर जगाओ। अब वह माटी की गुड़िया नहीं सोने की रानी है। वह सरोज नहीं सोना है। वह शराबी बाप की बेटी नहीं, धरती का फूल है। वह जयन्त की घरवाली नहीं, मिसेज अशोक है।

'खट-खट'' पहले कुण्डी खटकी, फिर किवाड़ों पर दस्तक हुई। सरोज हड़बड़ा कर उठी। वह सोचने लगी कि शायद कुमारमाधव या सुनीता आई है। उनींद स्थिति में ही जा उसने जल्दी से किवाड़ खोले। लेकिन यह क्या? वह आगन्तुक को देखते ही चीख पड़ी, पीछे लौटी। वह रुकने की हालत में आ टूटे-फूटे स्वर में बोली ऐं? तुम मरे नहीं, तुम जिन्दा हो? भूत या प्रेत तो नहीं? क्या तुम सचमुच जयन्त हो। तुम तो डूब गये थे। तुम्हारी लाश पुलिस लायी थी। भूत रात में लगते हैं, तुम दिन में कैसे आ गये। भूत! भूत!! दौड़ो, मुझे बचाओ। यह जयन्त की शक्ल बनाकर मुझे छलने आया है।'

सरोज चीखती गई, चिल्लाती गई वह पीछे हटती गई और आगे बढ़ा जयन्त। उसने अपनी फौलादी उँगलियाँ साध लीं और आँगन में जा उसका गला दबोचता हुआ बोला—"औरत कितनी जल्दी भूल जाती है। अरी दुष्ट, मैं मरा नहीं मैंने मरने का बहाना किया था। तेरे ही खातिर जिन्दा रहा अरी दुष्ट तू मुझे भूल गई। हरदोई से जो मैं माटी की गुड़िया लाया था उसे माटी ही में मिला दूँगा। चीख, चिल्ला, देखूँ कितना शोर मचाती है। अरी, औरत, तेरे पीछे मैंने चोरी की, गिरहकट कहलाया। तेरे ही पीछे मैंने सिपाही के पेट में छुरा भोंका, फरार रहा। तू आबाद रहे, इसीलिये मरने का ढोंग

किया। लेकिन बेवफा तूने दगा दी मैं गला घोंटकर ही जाऊँगा, यह मैं तय करके आया हूँ।"

सरोज का दम घुटने लगा। उसके मुँह से झाग आने लगा और जयन्त यह कहता हुआ चल दिया—"अभी जाकर मैं उस कुमारमाधव का गला दबाता हूँ, जिसकी तू रखैल है, जो तुझे बहन कहता है और अशोक को तो मार डालूँगा जिन्दा ही। मरी नहीं, अभी मर जायेगी। अब इसमें दम नहीं रही।"

सरोज आँगन में संज्ञा हीन-सी पड़ी थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। किवाड़े खुले थे, जयन्त जा चुका था और घर का वातावरण कह रहा था कि अब खैर नहीं, तब खैर नहीं।

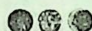
माटी की गुड़िया ऐसे पड़ी थी जैसे वह मर गई है। उसकी आभा मौत के सन्नाटे से घिर रही थी। उसके स्वप्न प्रस्थान कर चुके थे। उसकी कामनायें कूच का डंका बजा, उससे कह गई थीं कि जब मोड़ आता है तो आदमी झुकता है। जब राह बदलती है, तो इन्सान करवट लेता है। जब भेद मुँह खोल देता है, तो अपना-पराया बन जाता है। जब कहानी खत्म होती है, तो लिखा जाता है इतिश्री, समाप्त।

बैसाख की धूप धीरे छज्जे से नीचे उतर रही थी। गौरैयाँ भाग गई थी वहाँ। हाँ मुड़ेर पर बैठा एक कौवा काँव-काँव जरूर कर रहा था। घर का कोना-कोना यह आभास दे रहा था कि यहाँ अभी कुछ नहीं हुआ। यहाँ बहुत होगा और ऐसा होगा कि दुनिया तमाशा देखेगी। तलवार एक म्यान दो, पत्नी एक पति दो। तब तो संघर्ष होगा ही। जोरू के पीछे किले ढह जाते हैं, राज्य मिट जाते हैं। बेला देश विख्यात है, जिसके गोने में बंटाढार हो गया। चौहन वंश मिट गया। अब भी लोग मसल कहते हैं कि बेला का गौना है क्या ?

जमीन के पीछे इतनी खून-खराबी नहीं होती और न होती है दौलत के लिये ही। जहाँ औरत की बात होती है, वहाँ खून की नदियाँ बहती हैं। उसी के पीछे गरदन पर गरदन कटती हैं। सीता को लेकर राम-रावण युद्ध

हुआ। द्रोपदी के पीछे महाभारत हुआ और रुक्मणी का हरण हुआ तब भी खूब तलवारें चलीं। इसीलिये तो वह घर कह रहा था कि यहाँ कभी बहुत कुछ होगा और ऐसा होगा, जैसा कभी नहीं हुआ।

४०



जयन्त मरने का बहाना कर देहली में ही रहा। वह पागल बना, उसने भिखारी का भेष बनाया। उसने सब कुछ देखा अपनी आँखों कि कुमारमाधव आते, सरोज से घंटों बातें करते। फिर वे उसको अपने बँगले ले गये। वहाँ उसका अशोक से ब्याह हुआ। इसके बाद देवनगर में मकान लिया गया। नव-दम्पति उसमें रहने लगे।

जयन्त ने बढ़ाई दाढ़ी, उसने लुंगी और अँगरखी का लिवास अपनाया; उसने बोली भी दी कुछ बदल। वह पूरब की भाषा बोलने लगा कि सुतल रही, आवा, बइठा पनिया देना, बतियाँ सुन, मिनसारे। इसीलिये तो लोग यह यकीन कर लेते कि यह बस्ती और गोरखपुर जिले का है। काम नहीं मिलता, वह मजदूरी करता दिन-भर सिर पर ईंटें ढोता, गारा उठाता। इसी तरह अपनी उदर पूर्ति करता। पूँछने वालों को नाम बतलाता तो यह रामलाल।

आदमी चाहे जितना गया-बीता हो, लेकिन फिर भी उसमें स्वाभिमान तो होता-ही है और जब वह आँखों देखता है कि उसकी वस्तु परायी हो रही है, तो क्रोध आ जाना स्वाभाविक ही है। ऐसे में ही जब परिशोध की भावना बलवती हो उठती है, तो आदमी मरने और मान डालने के लिये कटिबद्ध हो जाता है। अपनी दुनिया बसाने के लिये मनुष्य न जाने क्या-क्या करता है। वह ठग व्यापार करता, वह झूठ भी बोलता और गृहस्थी को खुश-

हाल रखने के लिए आदमी मजदूरी तक करता है। पत्नी की आवश्यकताओं का वह हमेशा ध्यान रखता है, क्योंकि नारी कभी तृप्त नहीं होती, चाहे उसे सोने-चाँदी से लाद दो, उसके सम्मुख हीरे मोती के ढेर लगा दो। वह यही कहती रहती है कि अभी और अभी और। परिवार के लिए मनुष्य दुख सहता है, कष्ट झेलता है। वह अपने को बड़े-से-बड़े खतरे में भी डाल देता है। वह स्वयं मिटकर सबको आबाद रखने की भावना रखता है। यही किया था जयन्त ने वह सरोज को रानी बनाकर रखना चाहता था वह हमेशा हरदम उसके होठों पर मुस्कान देखना चाहता था। किन्तु परिस्थितियों ने उसे झकझोर डाला, दोनों को अलग-अलग कर दिया। देखता रहा जयन्त, सोचता रहा वह। पहिले विरक्ति ने उसमें अपना संचार किया। वह बोली—"तुम देहली से दूर चले जाओ जयन्त। इसी में गति है, इसी में भलाई। जब ताज छिन जाता है, तो फिर वह दुबारा रखने को नहीं मिलता। जब एक बार हस्ती मिट जाती है, तो फिर आदमी जिन्दगी भर नहीं पनपता। जब एक घर में आग लग जाती है तो फिर बुझाये नहीं बुझती। सरोज को भूल जाओ, दूर चले जाओ। अब वह तुम्हारी नहीं पराई हो गई है।"

किन्तु जयन्त अडिग रहा। उसने कहा मन-ही-मन कि जो खिलौना मैं अपने साथ लाया था, उसे ऐसे ही छोड़ दूँ, यह नामुमकिन है। सरोज पराई हो गई है, उसने ब्याह कर लिया, तो क्या वह मुझे भूल भी गई। मैं जाऊँगा उसके सामने और उसकी दुनिया में रंग में भंग कर दूँगा। मैं उसे मार डालूँगा और फिर पुलिस थाने में हाजिर हो जाऊँगा कि मैंने अपनी पत्नी का खून किया। आखिरी रास्ता यह है और शायद मुझे इसी पर चलना पड़ेगा।

यही सब सोच जयन्त गया था सरोज के घर। उसने अपनी समझ में उसे मार-ही डाला और वैसे-ही ताव में भरा चल दिया कुमारमाधव के बंगलें की ओर। तब सवेरा सूरज की सुनहरी किरणों से खेल रहा था। बंगले की फुलवाड़ी से महक आ रही थी। महर-महर। गुलाब के फूल पर तितलियाँ बैठतीं रंगीन। माली की कैंची चलती मेंहदी पर। हजारा एक ओर भरा रखा था और मौलश्री के पेड़ पर बैठी बुलबुल नया तराना अलाप रही थी, नयी

घुन। वातावरण हँस पड़ा था, सलोना प्रभात मुस्करा रहा था और कुमार-माधव टहल रहे थे लान पर। वे नंगे पैर थे। उन्हें हरी-हरी दूब बहुत प्यारी लग रही थी। वे सोच रहे थे कि सरोज की बिगड़ी बन गई अशोक भी रास्ते से लग गया। ईश्वर, तू कितना करुणामय है, कितना दयालु। सबकी बिगड़ी एक दिन बनाता जरूर है। नाश्ता कर-ही चुका हूँ। चलूँ, अपनी बहन को देख आऊँ। आजकल उसकी गर्भावस्था है। कुछ फल दे आऊँ। आधी पागल है मेरी बहन। तनिक भी ध्यान नहीं रखती है तन्दुरुस्ती का। ईश्वर उसे पुत्र रत्न दे। मेरे कोई लड़का नहीं। मैं उसी से सन्तोष कर लूँगा।

इस तरह सोचते हुए कुमारमाधव घास पर टहल रहे थे। तभी सहसा दौड़ता हुआ, धड़धड़ाता हुआ जयन्त बँगले के अन्दर घुसा। उसने खींच लिया टेंट से चाकू और उसे खोल लिया। कुमारमाधव देखते-ही रह गये। वह उनके पास पहुँच गया और वे जब तक सम्हलें-सम्हलें, उसने उन पर वार कर दिया। लेकिन खूब! कुमारमाधव ने पकड़ लिया। उसका हाथ। वे बोले—"यह क्या। तुम कौन हो और मुझे मार कर तुम्हें क्या मिल जायेगा।"

"मैं जयन्त हूँ सरोज का पति। तुम्हीं ने मेरी दुनिया में आग लगाई है। तुम्हें मारकर कलेजा ठंडा करूँगा। तुम जानते होगे कि जयन्त मर गया। जयन्त जिन्दा है और........"

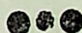
यह कहने के साथ ही जयन्त धींगा-मुस्ती करने लगा। वह हाथ छुड़ाने लगा अपना। तब कुमारमाधव ने दूने साहस से काम लिया। तब-तक दौड़ आया माली वहाँ। वह चिल्लाया बँगले के अन्य नौकर भी दौड़े। आततायी बात की बात में पकड़ लिया गया और पुलिस को टेलीफोन हुआ। तनिक भी देर नहीं लगी पुलिस-रेडियो-पेट्रोल-कार आ गई। जयन्त बन्दी बना और हवालात में जा बन्द हो गया।

× × ×

सरोज को देर बाद होश आया। वह धीरे-धीरे उठी। उसके गले की सब नसें कुड़िया जैसी दुख रही थीं। उसने दोनों हाथों उन्हें सोहराया। फिर लगी प्यास, वह नल पर गई। जैसे ही दो घूँट पानी पिया, मानो किसी ने

उसका गला चाक कर दिया चाकू से। वह 'सी' कर के रह गई और सोचने लगी विगत घटना के प्रति कि ऐ, यह जयन्त कहाँ से आ गया। यह जिन्दा है, मरा नहीं। मैंने चूड़ियाँ तोड़ीं इसी के लिए विधवा बनी। मैंने श्राद्ध किया इसका। क्या सचमुच जयन्त था यह। कहीं कोई प्रेत तो नहीं? सुना है कि जब गर्भ होता है, तो स्त्रियों को बड़ा डर लगता है। मौका पाते-ही भूत-प्रेत उन्हें सताते हैं। मुझे अकेली नहीं रहना चाहिये। जब-तक वे बम्बई से नहीं लौटते हैं, मैं बँगले में जाकर रहूँगी भैया कुमारमाधव के। यह जिन्दा जयन्त नहीं, उसकी प्रेतात्मा थी, जो मुझे सता कर चली गई। भला कहीं मर कर भी आदमी जिन्दा होता है। सचमुच यह जयन्त नहीं, उसका प्रेत था। बिल्कुल वैसी शक्ल, बिल्कुल वैसी बोली। और प्रेत आदमी तभी होता है जब उसकी अकाल मृत्यु होती है। क्यों मर गया निर्दई? अब प्रेत होकर मुझे सताने आया है? रहम कर प्रेत, तरस खा मुझ पर। मैं माँ बनने वाली हूँ। मुझे छोड़ दे, मैं तेरा फिर श्राद्ध कर दूँगी। तेरी आत्मा को शांति मिल जायेगी। तूने जिन्दगी में मुझ पर कभी गुस्सा नहीं किया कभी फूल की छड़ी से नहीं छुआ। तू भूल गया अपनी माटी की गुड़िया को। तरस खा जयन्त, मुझे माफ करदे। मैंने कोई गलती नहीं की, कोई भूल नहीं की।

४१



दिन भर सरोज बिना खाये, बिना पिये ऐसी पड़ी रहीं जैसे उसे लकवा मार गया हो, जैसे उसका खून पानी हो गया हो। जब साँझ आई, तो वह धीरे-से उठी, घर से बाहर निकली। अतीत की स्मृतियाँ उसे घेर अपने चल-चित्र दिखाने लगीं। उसने घर में ताला बन्द किया और चल दी कुमारमाधव के बंगले की ओर।

रास्ते में सरोज सोचती जा रही थी हाथ भर का कलेजा था मेरे जयन्त का जब वह मुझे हरदोई से देहली लाया। उसने अपने को संकट में डाला और मेरे सुख के लिए पूरी-पूरी कोशिश की। वह मेरे-ही लिये मर मिटा। वह देवता था, देवता। उसे जरूरतों ने, उसकी मजबूरियों ने इन्सान से हैवान बना दिया। जो पारस था वह सोना भी नहीं रहा, माटी से भी बदतर हो गया। हाय, मर गया जयन्त। कितने अरमान लेकर वह देहली आया था।

सरोज सोचती गई; वह चलती गई। देवनगर का नाला पार हो चुका था और सामने दिखाई पड़ रहा था करोल बाग का थाना। चौड़ी सड़क की छाती पर बसें-मोटरें दौड़ रही थीं। ताँगे चल रहे थे पैदल फुटपाथ पर। स्क्यूटर रिक्शे और स्क्यूटर भी दौड़े-आगे चले जा रहे थे। उनकी गति में विराम नहीं, एक स्फूर्ति थी। जब कि सरोज जीवन्मृत-सी हो रही थी। वह सोच रही थी कि जयन्त की कमी अशोक ने पूरी अवश्य कर दी, मगर जो चोट एक बार लग जाती है, आदमी उसे भूल नहीं पाता उसे वह पीर याद आती है जब बीते हुए दिन एक सपना-सा बन उसे अपनी याद दिलाते हैं।

"जयन्त मरा नहीं, वह जिन्दा है। शहर का नामी गिरहकट फिर पुलिस के शिकंजे में। मिल मैनेजर पर हमला और हमलावर गिरफ्तार। दो पैसे, सिर्फ दो पैसे। लीजिये, पढ़िये, आज सवेरे की ताजो खबर।"

यह कहता हुआ अखबार बेचने वाला एक लड़का सड़क पर लपक रहा था। सरोज सन्नाटे में आ गई। वह ध्यान देकर हाकर की आवाज सुनने लगी। जब जी नहीं माना, तो उसने दो पैसे का खरीदा वह सांध्य-संस्करण। जो कुछ 'ता' 'मा' जानती थी, उसी के आधार पर वह धीरे-धीरे उसे पढ़ने लगी। अब सरोज की आँखें खुल गईं। उसे विश्वास हो गया कि जयन्त मरा नहीं, जिन्दा है। आश्चर्य! महान आश्चर्य! अब तो उसके पैरों के नीचे से जमीन सरक गई। वह घबड़ाहट से थर-थर काँपने लगी, उसके रोयें खड़े हो गये। अभी सरोज रुकने की ही हालत में थी कि तब तक वहाँ कुमारमाधव आ गये। वे सवेरे नहीं पहुँच पाये थे उसके घर; मिल जाने की जल्दी थी। शाम को आते ही वे पहले मंडी गये, फल कुछ खरीदे। फिर चल दिया अपनी कनिष्ठा

के घर, जो उनकी धर्म बहन थी ।

जब रास्ते में अचानक कुमारमाधव की सरोज से भेंट हो गई, तो वे तनिक चौंककर बोले—"कहाँ सरोज ? कहाँ जा रही हो ? मैं तुम्हारे यहाँ आ रहा था और तुम........."

"और मैं आपके यहाँ आ रही थी । बच गई, नहीं तो आज सबेरे-ही मर जाती । वे आ गये हैं मेरे पहले-वाले पति । पहले तो मैं प्रेत समझी; लेकिन यह अखबार पढ़िये । अब क्या होगा भइया ? वे मुझे जिन्दा ही मार डालेंगे ।"

यह कह सरोज ने अखबार कुमारमाधव के हाथ में दे दिया और आँसू बहाने लगी, तो कुमारमाधव स्वयं उससे कहने लगे—"हाँ जयन्त मरा नहीं जिन्दा है । वह सबेरे बँगले आया था । मुझ पर चाकू से वार किया; लेकिन मैंने उसका हाथ पकड़ लिया । इस समय हवालात में बन्द है, उस पर मुकदमा चलेगा । तो शायद इससे पहले तुम्हारे यहाँ पहुँचा होगा ।"

"कुछ न पूछो भइया । आते ही मेरी गरदन इतनी जोर से दबाई कि मैं चीखी चिल्लाई और बेहोश हो गई । फिर वे मुझे मरी समझ कर छोड़ गए । यह क्या हुआ ? मेरी जान आफत में पड़ गई । मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो । जयन्त मुझे मार डालेगा ।"

यह कह सरोज फफक-फफक कर रोने लगी, तो कुमारमाधव ने पोंछे उसके आँसू । वे उसे अपने बँगले की ओर ले चले । वे रास्ते भर उसे समझाते गये कि तुम बिल्कुल बेफिक्र रहो सरोज । जयन्त तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता । आखिर मैं किसलिए हूँ । मेरे रहते तुम्हें कष्ट नहीं हो सकता । वह आदमी अच्छा नहीं, उसे जिन्दगी भर जेल की चक्की पीसनी पड़ेगी । जब आदमी गुनाह पर गुनाह करता है और करता चला जाता है, तो इन्सान की क्या हस्ती ईश्वर भी उसे क्षमा नहीं करता ।



किन्तु जब सरोज कुमारमाधव के बँगले पहुँची, तो वह बदल गई एकदम गिरगिट की तरह। उसमें बचपन का प्यार उमड़ आया। उसे वह जयन्त याद आया, जो उसकी चोटी पकड़ कर कहता था कि चल मेरी माटी की गुड़िया और एक दिन पानी बरसा था, गुड़िया के रंग धुल गए थे, तो वह दुखी हुई थी, तब जयन्त ने कहा था कि रोती है मेरी माटी की गुड़िया दुख क्यों करती है। मैं इस गुड़िया में फिर से रंग भर दूँगा। साज लूँगा, सँवार लूँगा। चल मेरी माटी की गुड़िया।

सरोज को याद आये वे दिन जब उसकी तनख्वाह कट गई थी, घर में बाप के मेहमान बैठे थे, तब जयन्त ने गिरवी रख दी साइकिल और रुपए लाकर दिये थे। उसी ने बचाया था उसे गुण्डो से। वही उसे लेकर दिल्ली आया। आह जयन्त ! सरोज भीतर-ही-भीतर रो दी।

सुनीता सरोज के लिए नाश्ता लायी, तो सरोज फूट-फूट कर रो दी। कुमारमाधव ने खाने का आग्रह किया तो उसका रुदन सारा बँगला हिलाने लगा। वह रोयी और खूब रोयी। अन्त में कुमारमाधव से कहा—"वे मेरे पहले पति हैं। वे मुझे बहुत चाहते हैं। मैं आपके पैर पड़ती हूँ, हाथ जोड़ती हूँ उनकी जमानत कर लो। वे आ गये हैं, अब मैं उनके बिना रह नहीं सकती। जयन्त मेरी जिन्दगी हैं भइया।"

"और अशोक ?"

"अशोक कुछ नहीं, बीच का एक पर्दा है। जो कुछ हैं सो जयन्त। अपनी सरोज को मार डालो, उसे जहर दे दो; लेकिन जयन्त की माटी की गुड़िया उसी की है और किसी की नहीं। जाओ भइया, उनकी जमानत कर लाओ। अगर अपनी बहन को चाहते हो, तो जयन्त को छुड़ा लाओ।"

सरोज की ये बातें सुनकर कुमारमाधव अचरज में डूब गये। वे बोले—"तुम जयन्त को अब भी चाहती हो सरोज ? वह तुम्हारी जान का दुश्मन

हो रहा है और तुम उस पर प्यार निछावर करती हो। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। मैं उसकी जमानत करूँ? क्या कह रही हो तुम।"

ठीक ही कह रही हूँ भइया। जयन्त मेरी दुनिया है, मेरी जिन्दगी। मैं उसके बिना जी नहीं सकती, रह नहीं सकती। आपको बुरा न लगे तो मैं अशोक को तलाक दे सकती हूँ। खिलाड़ी आ गया है जो माटी की गुड़िया से खेलता है। जी भर कर प्यार करता है। अशोक में प्यार नहीं, वह मन समझाता है। तुम्हें मेरे सिर की कसम, आओ अभी जाओ और मेरे जयन्त को ले आओ। उसमें बुजुर्गी की समझ है और जवानों का प्यार। उसमें जो कुछ है किसी में नहीं। वह मेरी जिन्दगी का दिया है और मेरा जहाँ उसी से रोशन होगा। जाओ, भइया जाओ, मेरे जयन्त को ले आओ।"

कुमारमाधव की समझ में नहीं आया कि यकायक सरोज जयन्त की ओर मुड़ कैसे गई। वे बोले—"जो औरत को परेशानी में डाल दे जो उसे धोखा पर धोखा दे। वह भी इन्सान है? धिक्कार है उसके जीवन को।"

सरोज कुछ नहीं बोली, उसने कुमारमाधव की बातें इस कान से सुनीं उससे निकाल दीं। वह अपने में ही खो गई इस तरह कि उसे दीन-दुनिया की खबर नहीं रही। वह अशोक को भूल गई; जयन्त उसकी आँखों का तारा बन गया। किन्तु कानून का बन्दी सहज-ही मुक्त नहीं होता। उसे जमादार से लेकर जेलर तक की बातें सुननी पड़ती हैं।

सुनीता ने बहुत समझाया; कुमारमाधव ने सरोज से तर्क किया। उसका कथन था कि दिन भर का काम-काज देखो सरोज। अपनी भाभी का हाथ बटाओ। जहाँ सहयोग नहीं होता वहाँ सूरज की किरणें नहीं निकलतीं और निगलतीं भी हैं, तो क्षणभंगुर। जिन्दगी किसी के हाथ बिकने नहीं आती और इन्सान उसे खरीदना नहीं जानता और जाने भी कैसे, वह खाता है, पीता है और हाथ पसार कर चल देता है।

जिन्दगी चाहती है अपने में परिवर्तन हर रोज। हर नयी एक समस्या। नयी जिन्दगी घास के सदृश्य। हर आदमी अपने में पूर्ण है, वही अपूर्ण। शिक्षा और संस्कृति के केन्द्रों में जहाँ कर्त्तव्य पलता है, जिन्दगी

भविष्य के सपने देखती है, वहाँ भी चलता है उतार-चढ़ाव। जिन्दगी मौत नहीं माँगती, बल्कि जीने की हिम्मत चाहती है।

और चरित्र की व्याख्या है उचित मापदण्डों में। चरित्र नहीं तो आदमी नहीं, दिया नहीं तो घर नहीं। ऐसे ही बसती है दुनिया जिसे लोग बेरहम कहते हैं।

आखिर सरोज ने राजी कर लिया कुमारमाधव को। वे विवश हो जयन्त की जमानत करने चले, तो रास्ते भर सोचते गये कि पुरुष चाहे जितनी बेवफाई करे स्त्री से; लेकिन स्त्री मरते दम तक वफा ही करती है। सरोज चाहती थी जयन्त को और अब भी चाहती है। पुराने प्यार में जो कशिश होती है वह नये दौर में नहीं औरत जब मजबूर होती है तभी दूसरा दामन पकड़ती है। अगर सरोज को मालूम होता कि जयन्त जिन्दा है तो वह कभी अशोक से ब्याह नहीं करती। वह नयी दुनिया नहीं बसाती, पुरानी में ही बसर कर लेती। आह औरत ! आह जिन्दगी !! आह मनुष्य और उसका भाग्य !!! अरी परिस्थितियाँ और उनके भ्रमरजाल ! मेरी सरोज को सुगति दे। उसे जीने का सहारा दे। सरोज की गति अब ऐसी है कि वह दो नावों पर पैर रखे हैं। एक किश्ती डूबती है, दूसरी उतराती है। एक किनारा छूती है और दूसरी डूबने-डूबने को है। एक जिन्दगी है, दूसरी मौत। एक वफा है और दूसरी बेवफा। एक पुरानी और दूसरी नयी। प्यार दोनों में बँटा है, किसी में कम और किसी में अधिक।

इस तरह सोचते हुए कुमारमाधव कोतवाली की ओर जा रहे थे। वे पैदल-ही थे। उनके साथ कार नहीं और न कोई वाहन ही। वे जब हिन्दूवाड़ा पहुँचे, आगे पहाड़ी धीरज आया। उसके बाद सदर बाजार, कुतुबरोड भी निकल गया। आगे खाड़ीबावली आई फिर फ़तेहपुरी और चाँदनी चौक। फुहारे पर आ वे जब कोतवाली के फाटक में घुसे, तब भी सोच रहे थे कि सरोज जिन्दगी है और जयन्त उसका दिया। सरोज दुनिया है और जयन्त उसकी रोशनी। प्यार जितना पुराना हो जाता है, उसमें कशिश हो जाती है। प्यार की मंजिल अनन्त को छूती है, प्यार की धरती मानती है। आकाश

उसे प्यार करता है और लिख देता है युग इतिहास जो युग-युग तक चला जाता है। मिर्जा-साहिबाँ, शीरी-फरहाद, लैला-मजनू और सोनी-महिवाल। शशि-कुन्हू भी भुलाये नहीं जाते, न रोमियो-जुलियट ही। जब प्यार की पतवार चलती है; तो प्यार की नदिया छल-छल करती है। जब प्यार अपने में अमर होता है, तो वह सिर पर चढ़ कर बोलता है और जब प्याले बजते हैं तो जल-तरंग की आवाज आती है। ऐसे-ही बजती है शहनाई अनोखे प्यार की, जहाँ ज़िन्दगी हार जाती है और प्यार जीतता है।

कुमारमाधव कोतवाली का फाटक पार कर चौक में घुस चुके थे। वहाँ रात में प्रभात नजर आ रहा था। विद्युत बल्ब अपनी आभा प्रसारित कर रहे थे। सामने एक ट्रक खड़ा था जिस पर लिखा डी० पी० पुलिस। उसके बगल में खड़ी थी पेट्रोल कार, सिपाही, चीफ और दरोगा सभी कार्यरत थे। और पुरुष-बन्दी-गृह में सामने ही खड़ा था जयन्त, जो कुमारमाधव को देख होंठ चबा रहा था, मुट्ठियाँ भींच रहा था।

लेकिन कुमारमाधव थे सभी ओर से अनभिज्ञ वे अपनी दुनिया में ही खो रहे थे। वे सरोज के प्रति सोच रहे थे कि बहन कह देना आसान है, उसका निर्वाह उतना-ही कठिन। जीवन पाना एक सांसारिक क्रिया है; किन्तु संसार से मिल-जुल कर चलना कठिन। जिन्दगी एक स्वप्न है, वह सत्य भी। जिन्दगी एक धोखा है और विश्वास भी। परिस्थियाँ पहेली हैं और पारस भी। पराकाष्ठा चुनौती है और दिग्विजय भी। पराक्रम हार है और जीत भी। प्यार धोखा है और जिन्दगी भी। जब जिन्दगी छली जाती है सरोज की तरह, तो उसमें न रस रहता है और न विष। वह रेगिस्तान बन जाती है, जहाँ बालू-ही-बालू नजर आती है।

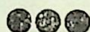
कुमारमाधय कोतवाली की चौक में खड़े थे। वे न इधर बढ़ रहे थे न उधर। उनका अन्तर्द्वन्द्व उन्हें अपना साथी बना रहा था और वे सोच रहे थे कि कर्त्तव्य जिन्दगी का वह ध्येय है जो सर्वोपरि है और जिसकी दुनिया पूजा करती है। मैं कर्त्तव्य-ही पालन करने आया हूँ यहाँ और मुझे उसकी लाज रखनी है। कैसे जाऊँ किससे कहूँ। भले आदमियों का यह काम नहीं कि

वह कचहरी-अदालत दौड़ें, पुलिस थाने जायें। ये जगहें शरीफों के लिये नहीं, जो समाज के कोढ़-खाज हैं, उनके लिये बनी हैं।

इस तरह सोचते रहे कुमारमाधव। लगभग आध घण्टा हो गया। तब तक एक सिपाही ने उन्हें टोक दिया आप कैसे। उत्तर में उन्होंने अपना मंतव्य बतलाया और बात कोतवाली इन्चार्ज तक पहुँची। सिपाही ले गया कुमारमाधव को और उन्हें इन्चार्ज के सम्मुख हाजिर कर दिया।

तब कुमारमाधव के काटो तो बदन में लोहू नहीं, उनके मुँह में जिह्वा नहीं। उनकी संज्ञा साथ नहीं, उनका विवेक था पथभ्रष्ट। वे ऐसे हो रहे थे, मानो अभी गिर जायेंगे। उनके बदन में था कम्पन्न। वे रुकने की हालत में थे। उनकी वाणी वाचाल नहीं थी।

४३



पति चाहे जितनी बेरहमी करे; लेकिन पत्नी उसे चाहती है। वह उसके सुख के लिये अपने को मिटा देती है, यही है हमारी भारतीय नारी की परम्परा कि पति हमेशा पत्नी को दुत्कारता है, लेकिन वह उसे सिर-आँखों पर लिये रहती है। ऐसा नहीं था सरोज के साथ। वह देर तक बँगले में बैठी रही फिर कुमारमाधव के पास जा धीरे-धीरे बोली—"उनकी जमानत तो कर लाओ भइया। वे बुरे हैं, खराब हैं लेकिन मेरे हैं। उन्हें जल्दी से छुड़ा लाओ, मेरा कलेजा नुचा जा रहा है।"

"अरे सरोज, तुम अशोक की पत्नी हो। उसे क्या जवाब दोगी ? पिछले रिश्ते भूल जाओ। पुरानी बातों को याद न करो। जयन्त का नाम न लो, अपना काम देखो वह······।"

अभी कुमारमाधव इतना-ही कह पाये थे कि सरोज तत्क्षण ही बोल

उठी—"नहीं भइया, नहीं, तुम्हें अपनी बहन की कसम जल्दी से जाओ और जयन्त की जमानत कर लाओ। वह बिल्कुल ठीक होगा। मैं ठीक कर लूंगी। अगर सरोज को बहन की तरह चाहते हो, तो तुम्हें जाना-ही पड़ेगा।

इसके आगे कुमारमाधव कुछ नहीं बोले। वे चुपचाप बँगले से चल दिये यद्यपि जयन्त की जमानत होना बहुत ही टेढ़ी खीर थी, लेकिन फिर भी कुमारमाधव ने यह राह आसान कर ली। वे जयन्त को छुड़ा लाये और अपने साथ बँगले लाये।

रात का पहला पहर बीता ही था कि दूसरे की सवारी आ गई थी। जयन्त गुमसुम बैठा था। कुमारमाधव ने उसे छेड़ा। वे बोले—"तुमने मुझ पर हमला क्यों किया था जयन्त? तुमने सरोज का गला दाबा। खैर, कोई बात नहीं, अब आगे तुमने क्या सोचा है।"

"सोचा है यही कि तुमको मौत के घाट उतार दूं और सरोज को भी मार डालूं। मुझे जिन्दगी का पुराना खण्डहर अच्छा नहीं लगता। मैं अपनी दुनिया अलग नहीं बसा सकता। तुमने सरोज का व्याह कर दिया। तुम्हीं हो वह आदमी जिसने पति-पत्नी को अलग-अलग कर दिया। तुमने किसी की मजबूरियाँ नहीं समझीं, तुमने किसी को अपनाया नहीं। मैं तुम्हें नेश्त नाबूद न कर दूं तो मेरा नाम जयन्त नहीं।

जयन्य की यह बातें सुन कुमारमाधव सन्नाटे में आ गये। वे सोचने लगे कि इस आदमी से जान का खतरा है। इसके साथ सीधापन ही काम देगा, तर्क और कानून नहीं। इसे समझाना पड़ेगा। इसे भ्रम है इसे वहम है और भ्रम जब हो जाता है जिन्दगी में तो कलेजे में दरारें पड़ जाती हैं और हृदय बार-बार कहता है कि चलो यहाँ से कहीं दूर भाग चलें।

सरोज और जयन्त अपनी-अपनी समस्या के शिकार हो रहे थे। कुमारमाधव दोनों की गतिविधि निरख रहे थे। और खड़ी थी मूक-बधिर-सी सुनीता। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है?

जब कुमारमाधव ने स्थिति को स्पष्ट किया, तो जयन्त बोला कि मुझे

जेल जाने दो मेरी दुनिया वही है । लेकिन जाने से पहिले मैं दो खून जरूर करूंगा—एक सरोज का और एक आप का; क्योंकि मेरी जिन्दगी तो नाचीज बन गई है।"

"सोचो जयन्त, तनिक गहराई से सोचो । तुम कैसी पागलपन की बातें करते हो । मेरी तो सुनो । न सरोज का दोष है और न मेरी गलती । तुमने मरने का बहाना क्यों किया, इससे तुम्हारी दुनिया बदल गई । तुमने जिन्दगी को पास से नहीं दूर से देखा । यही तुम्हारी भूल है । तुम दूसरे को धोखा देकर जीना चाहते थे, इसीलिए पर्दाफाश हो गया । सरोज का ब्याह हो चुका है । वह माँ बनने वाली है । मुक़दमा चलेगा ही, तुम्हें सजा जरूर होगी । उससे कोई नहीं बचा सकता । अब भी आँखें खोलो जयन्त । मैं सब कुछ ठीक कर लूंगा । मेरे हाथ में बहुत बड़ी ताकत है ।"

जयन्त सुनता रहा, सरोज उसके सामने बैठी थी । उसे बार-बार क्रोध आ रहा था उसी पर कि इस माटी को गुड़िया ने ही मेरी साने की जिन्दगी को माटी बना दिया ।

कुमारमाधव और जयन्त की बातें देर तक होती रहीं । अब रात भीग आई थी, लगभग आँधी हो रही थी । किसी तरह कुमारमाधव ने जयन्त को अपनी ओर मोड़ा । उसे भूत, भविष्य और वर्तमान समझाया । सरोज की ज्वलन्त समस्या उसके सम्मुख रख दी और यहाँ तक कहा कि सरोज से अगर तुम्हें सच्चा प्यार है, तो उसके रास्ते से हट जाओ, यही सच्चा सुख है । जो जिसे प्यार करता है, वह उसके लिये हँसते-हँसते जान भी दे देता है और प्यार में जीत कहाँ पगले । जब देखो तब हार है ।

जब जयन्त कुमारमाधव की बातों से अत्याधिक प्रभावित हो गया तो वे बोले छुरा नहीं, चाकू नहीं, ये लो पिस्तौल और मेरे गोली मार दो । सरोज को भी मौत के घाट उतार दो । कर सकते हो ऐसा ? क्योंकि जो बादल गरजते है वे बरसते नहीं ।

जयन्त कुछ नहीं बोला । उसने पिस्तौल छुई भी नहीं और कुमारमाधव ने देखा उसकी आँखों से दो बड़े-बड़े आँसू फर्श पर चू पड़े हैं ।

सुनीता और सरोज दोनों यह दृश्य देख रही थीं। आगे कुमारमाधव कुछ नहीं बोले। जयन्त भी मौन रहा और फिर उसके बाद कुमारमाधव ने जयन्त के लिए खाना मँगाया। उसे जबरदस्ती जिद करके खिलाया। जयन्त ने खाया। वह कुमारमाधव के कमरे में ही लेटा दूसरी चारपाई पर। वे जब तक जागते रहे, उसे नसीहत देते रहे कि जयन्त दूसरे को सुख दो, तुम्हें संतोष मिलेगा। किसी की शांति न छीनो, ईश्वर तुम्हें बरदान देगा। एक भूल के बाद बार-बार भूलें न करो। हर गल्ती का अन्जाम होता है हर भूल की सज़ा। हर जिन्दगी एक पैगाम होती है, हर इन्सान एक दरिंदा। कोई किसी का नहीं जयन्त दुनिया में सब मुँह देखे का रिश्ता है।

इसके बाद कुमारमाधव सो गये। जयन्त जागता रहा; वह सोचता रहा कि कुमार माधव ठीक कहते हैं। मुझे सरोज के रास्ते से हट जाना चाहिये। मैं समझ लूंगा कि मैंने अपनी माटी की गुड़िया किसी दूसरे को सौंप दी। गुड़िया मुस्कराये तो। मेरी सरोज माँ बनेगी। गर्भिणी की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। बदल दूँ अपने को। भूल जाऊँ माटी की गुड़िया। राज्य चला जाता है, दुश्मन किला फतेह कर लेता है और देखता ही तो रह गया था मोहम्मद शाह जब नादिरशाह ने उससे इमामा बदला था। उसमें हीरा था और वही जालिम ले गया तख़्तताऊस, मयूर-सिंहासन। मैं हँसकर क्यों न दूँ अपनी जिन्दगी। सरोज का दोष नहीं, गलती अशोक की भी नहीं। कुमारमाधव बेचारे सहयोगी हैं। मैं सहयोग का गला क्यों घोटूँ?

सोचता रहा जयन्त; रात भीगती रही। जब पौ फटने को हुई, बँगले के सब लोग सो रहे थे, तो वह धीरे से उठा। उसने सोचा मैं चुपचाप चल दूँ। मेरी इस समाज में जरूरत नहीं। मैं इससे दूर हो चुका। समाज प्रतिष्ठा का वह मन्दिर है जहाँ सभ्यता साँस लेती है, मर्यादा मुस्कराती है। जहाँ जिन्दगी ऐसे सूत्र में बंधती है, जिसे कहते हैं गृहस्थी। मैं समाज से दूर हो चुका हूँ। हर कुसूर की सजा है, हर अपराध का दण्ड। मुझे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। यहीं पर मिट या बुझ जाना चाहिये। बस, चल दूँ यहीं

मौका है यही अवसर।

सवेरे जब कुमारमाधव सोकर उठे, तो जयन्त का विस्तर खाली था। वे सन्नाटे में आ गये और सरोज ने कहा—"जयन्त चले गये भइया। शायद उनका गुस्सा ठंडा नहीं हुआ। मैं अब नहीं जाऊँगी यहाँ से। मुझे उनसे डर लगता है। वे खूनी है न। और कातिल में दया नहीं होती। वह बड़ा बेरहम होता हैं।"

"कुछ भी नहीं कहा जा सकता सरोज कि जयन्त अपने मन में नेकी लेकर गया है या बदी। देखो, क्या होता है। वह आयेगा जरूर। मैंने उसके साथ घर जैसा व्यवहार किया है। डरती हो, तो यहीं रहो। लेकिन अब वह खतरे का बिन्दु नहीं, उसकी आँखें खुल गईं।

कुमारमाधव के उस कथन का सुनीता ने समर्थन किया। वह बोली—"जब तक आदमी को असलियत मालूम नहीं होती, वह उलटा रहता है। और वास्तविकता का बोध होने पर वही अपने को पहचान जाता है। जयन्त को अगर कुछ करना होता, बदला लेना होता, तो वह यहाँ से जाता नहीं। वह गया है कुछ सोचकर और शायद अब आयेगा नहीं।"

ठीक तभी दम्पति ने देखा कि सरोज की आँखों में आँसू भर आये हैं। वह रोने-रोने को हो रही है। उनके भी नेत्र आर्द्र हो चले। वे अतीव करुणा से भर गये जयन्त तथा सरोज के प्रति।

४४

●●●

जयन्त जब कुमारमाधव के बँगले से निकला, तो वह चल दिया सीधा जमुना जी की ओर। पहले वह पहाड़ी धीरज आया फिर कुतुबरोड़ के चौराहे पर। वहाँ से सीधी राह पकड़ी फिर मिठाई वाला पुल पार किया।

फिर काश्मीरी गेट होता हुआ पहुँच गया जमुना के घाट पर। वहाँ माँ कालिन्दी हिलोरें ले रही थीं। वे अपने श्याम को बुला रही थीं कि तुमने ही नाथा था कालियानाग। तुम्हीं काली दाह में कूदे थे। हे कृष्ण आओ और इस कलियुग में मेरा उद्धार करो। मेरी साख मिट रही है, मेरा जल सूख रहा है। मैं धार बदलती जा रही हूँ, दूर होती जा रही हूँ अपने किनारों से। आओ कन्हैया आओ, मुझे उबार लो।

पो फट चुकी थी, प्राची के नीलम्बर की गोद में बाल-रवि अठखेलियाँ कर रहा था। वह नवजात था लाल सिंदूर की तरह। दूर जमुना के उस किनारे क्षितिज स्पष्ट हो रही थी। प्रवृत्ति-प्रिया हँस रही थी और वसुधा कह रही थी अपने प्रियतम आकाश से कि यह हमारा मिलन है। दिन वियोग की घड़ी है और रात एक युग। साँझ संगम है। हम दोनों तभी मिलेंगे। पक्षी कह रहे थे अपने मधुर राग अलाप-अलाप कि यह दुनिया है, यही जिन्दगी, यही स्वर्ग। यही रोशनी, यही रात, यही मौत और यही जिन्दगी।

जयन्त घाट की एक सीढ़ी पर बैठा था। उसके घुटनों तक पैर जल में डूब रहे थे। कछुवे गंगा के बेढब नहीं, जमुना के करामाती है। वे सिर निकालते फिर जल समाधि ले लेते। वे इतने थे हृष्ट-पुष्ट कि जिसका नाम नहीं। जयन्त उनकी चिन्ता नहीं करता। वह कभी जल के प्रवाह को देखता और कभी क्षितिज को। उसके मानस में विकराल आँधी चल रही थी, भयंकर तूफान उठ रहे थे। यह सोच रहा था कि मैंने यह अच्छा किया जो कुमारमाधव के बँगले से चला आया। यही एक राह थी, यही एक मार्ग। इसके अलावा और मैं कर ही क्या सकता था। जब राजा लड़ाई के मैदान में पराजित होता है, तो वह भागता है पीठ फेर। जब गृहस्थ अपना उत्तरदायित्व पालन नहीं करता तो वह आत्महत्या करता है। जब जिन्दगी का बसंत पतझड़ में बदल जाता है तो, आदमी अपने-आपको नेस्तनाबूद कर देता है। सरोज जिये और अशोक उसका अभिभावक बने। वह माँ बने। गोदी में लाल खिलाये। मेरी माटी की गुड़िया हँसे, तो उसके मुँह से फूल

झड़ें। वह रोये तो मोती। वह सोये, तो चाँदनी रात आ जाये, वह जागे तो प्रभात। कलियाँ उसको मुस्कुराहट दें, फूल उसको [जिन्दगी, और चमन दे वह रौनक जिसे सदाबहार कहते हैं। बस, मैं अभी कूदता हूँ जमुना में और अपना अन्त कर लेता हूँ।

यह सोचता रहा जयन्त और वह जमुना में अपनी बलि देने के लिए प्रस्तुत हो गया; वह उठा, बुर्ज तक गया। नीचे जल की राशि कल-कल कर रहीं थी। हवा थपेड़े ले रही थी। पानी घूम रहा था ऐसे जैसे चक्रवात। जयन्त देखता रहा। उसकी भावना व्यग्र हो चली कि जल्दी कूदो। तभी जल के भीतर झाँकी कर्त्तव्य की देवी। उसके हाथ में एक चिराग था। वह कहने लगी कि भावना से कर्त्तव्य ऊंचा है जयन्त। कर्तव्य की वेदी पर जूझो, यही तुम्हारी विजय होगी। जाओ, जल्दी जाओ, अपने को पुलिस के हाथों में सौंप दो। तुम अपराधी हो न। तुमने सजा कहाँ भुगती। डूब मरना कायरता है और जिन्दगी से लड़ना इन्सानियत। भाग बुजदिल, चल कायर। तू आत्महत्या करने चला है। तेरी छाती में बाल हैं। तू संघर्ष कर जिन्दगी से और अधिकारों के लिए लड़।

जयन्त खड़ा रहा; उसने कानों पर दोनों हाथ रख लिये। उसकी देह कांपी फिर उसके मानस में डंका बजा कि भाग जा, चला जा। जमुना ऐसे पापियों को अपनी गोद में स्थान नहीं देती। कायर की संज्ञा क्या—वह तो निरर्थक है, जड़ पदार्थ। बुझदिल का वैभव क्या—वह एक जुगनू है। काया की माया क्या—एक झूठा धोखा है। जो कुछ है सो मनुष्य की मर्यादा। और मर्यादा तभी साथ देती है जब आदमी कर्तव्य का पल्ला पकड़ लेता है।

अब सवेरा खुल कर हो चुका था। जमुना के घाट पर स्नानार्थियों की भीड़ उमड़ रही थी। भक्त डुबकियाँ ले रहे थे। पंडे यजमान को हाथों-हाथ ले रहे थे। बर्फी वाले चिल्ला रहे थे 'भोग जमुना माई'। और फूल लिये मालियों के पूत इधर-उधर खेल रहे थे। आने वाले आ रहे थे और जाने वाले चल रहे थे और किनारे पर लगी थीं नौकायें। केवट कहते कि

बाबू उस पार। जयन्त घूमा और वहाँ से चल दिया। वह चला और चलता गया और लाल किले के चौराहे आया। फिर घूमा चाँदनी चौक की तरफ जहाँ फुहारे के सम्मुख कोतवाली थी।

४५



जयन्त जब कोतवाली पहुँचा, तो एस० पी० सिटी की कार वहाँ से रवाना होने वाली थी। कोतवाली इन्चार्ज उनका आदाब बजा रहा था। सिपाही ऐसे खड़े थे जैसे चाकर और सुपरिन्टेन्डेन्ट-आफ-पुलिस ऐसे बिगड़ रहा था कि तुम लोग काम नहीं करते, तुम सब नालायक हो। तुमने उस खूनी जयन्त की जमानत कैसे कर दी। वह जमानत का हकदार ही नहीं था। तुम सब मूर्ख हो, नालायक, महानालायक।

"नालायक हुजूर। मैं आपका ताबेदार हूँ। मुझे जेल में ठूँस दो। मुझे वहीं की रोटियाँ खाने दो। मैं आपके पाँव पड़ता हूँ। आपका मुलजिम आ गया। इसकी खाल खीच लो। मुझे बाहर की दुनियाँ नहीं चाहिए। मुझे जेल में ही ठूँस दो।"

यह कह जयन्त एस० पी० सिटी के पैरों पर नाक रगड़ने लगा। वे चक्कर में आ गए। वे बोले कि इसकी जमानत हो चुकी है। इसे यहाँ से भेजो।

लेकिन जयन्त नहीं माना। वह हवालात में बन्द हुआ। सवेरे समाचार पत्रों में यह ताजी खबर छपी कि खूनी जयन्त ने आत्म-समर्पण कर दिया। वह अब पुलिस की हिरासत में रहना पसन्द करता है, बाहर नहीं। सरोज ने अखबार पढ़ा तो वह रो दी। कुमारमाधव ने भी एक लम्बी साँस ली और सुनीता कहने लगी कि जयन्त को दुख हुआ, इसीलिये उसने अपने हाथों जा कर अपने को पुलिस में दे दिया। आदमी जब जिन्दगी से हार जाता है,

झड़ें। वह रोये तो मोती। वह सोये, तो चाँदनी रात आ जाये, वह जागे तो प्रभात। कलियाँ उसको मुस्कुराहट दें, फूल उसको [जिन्दगी, और चमन दे वह रौनक जिसे सदाबहार कहते हैं। बस, मैं अभी कूदता हूँ जमुना में और अपना अन्त कर लेता हूँ।

यह सोचता रहा जयन्त और वह जमुना में अपनी बलि देने के लिए प्रस्तुत हो गया; वह उठा, बुर्ज तक गया। नीचे जल की राशि कल-कल कर रहीं थी। हवा थपेड़े ले रही थी। पानी घूम रहा था ऐसे जैसे चक्रवात। जयन्त देखता रहा। उसकी भावना व्यग्र हो चली कि जल्दी कूदो। तभी जल के भीतर झाँकी कर्त्तव्य की देवी। उसके हाथ में एक चिराग था। वह कहने लगी कि भावना से कर्त्तव्य ऊंचा है जयन्त। कर्तव्य की वेदी पर जूझो, यही तुम्हारी विजय होगी। जाओ, जल्दी जाओ, अपने को पुलिस के हाथों में सौंप दो। तुम अपराधी हो न। तुमने सजा कहाँ भुगती। डूब मरना कायरता है और जिन्दगी से लड़ना इन्सानियत। भाग बुजदिल, चल कायर। तू आत्महत्या करने चला है। तेरी छाती में बाल हैं। तू संघर्ष कर जिन्दगी से और अधिकारों के लिए लड़।

जयन्त खड़ा रहा; उसने कानों पर दोनों हाथ रख लिये। उसकी देह कांपी फिर उसके मानस में डंका बजा कि भाग जा, चला जा। जमुना ऐसे पापियों को अपनी गोद में स्थान नहीं देती। कायर की संज्ञा क्या—वह तो निरर्थक है, जड़ पदार्थ। बुझदिल का वैभव क्या—वह एक जुगनू है। काया की माया क्या—एक झूठा घोखा है। जो कुछ है सो मनुष्य की मर्यादा। और मर्यादा तभी साथ देती है जब आदमी कर्तव्य का पल्ला पकड़ लेता है।

अब सबेरा खुल कर हो चुका था। जमुना के घाट पर स्नानार्थियों की भीड़ उमड़ रही थी। भक्त डुबकियाँ ले रहे थे। पंडे यजमान को हाथों-हाथ ले रहे थे। बर्फी वाले चिल्ला रहे थे 'भोग जमुना माई'। और फूल लिये मालियों के पूत इधर-उधर खेल रहे थे। आने वाले आ रहे थे और जाने वाले चल रहे थे और किनारे पर लगी थीं नौकायें। केवट कहते कि

बाबू उस पार। जयन्त घूमा और वहाँ से चल दिया। वह चला और चलता गया और लाल किले के चौराहे आया। फिर घूमा चाँदनी चौक की तरफ़ जहाँ फुहारे के सम्मुख कोतवाली थी।

४५



जयन्त जब कोतवाली पहुँचा, तो एस० पी० सिटी की कार वहाँ से रवाना होने वाली थी। कोतवाली इन्चार्ज उनका आदाब बजा रहा था। सिपाही ऐसे खड़े थे जैसे चाकर और सुपरिन्टेन्डेन्ट-आफ-पुलिस ऐसे बिगड़ रहा था कि तुम लोग काम नहीं करते, तुम सब नालायक हो। तुमने उस खूनी जयन्त की जमानत कैसे कर दी। वह जमानत का हक़दार ही नहीं था। तुम सब मूर्ख हो, नालायक, महानालायक।

"नालायक हुजूर। मैं आपका ताबेदार हूँ। मुझे जेल में ठूँस दो। मुझे वहीं की रोटियाँ खाने दो। मैं आपके पाँव पड़ता हूँ। आपका मुलजिम आ गया। इसकी खाल खींच लो। मुझे बाहर की दुनियाँ नहीं चाहिए। मुझे जेल में ही ठूँस दो।"

यह कह जयन्त एस० पी० सिटी के पैरों पर नाक रगड़ने लगा। वे चक्कर में आ गए। वे बोले कि इसकी जमानत हो चुकी है। इसे यहाँ से भेजो।

लेकिन जयन्त नहीं माना। वह हवालात में बन्द हुआ। सवेरे समाचार पत्रों में यह ताजी खबर छपी कि खूनी जयन्त ने आत्म-समर्पण कर दिया। वह अब पुलिस की हिरासत में रहना पसन्द करता है, बाहर नहीं। सरोज ने अखबार पढ़ा तो वह रो दी। कुमारमाधव ने भी एक लम्बी साँस ली और सुनीता कहने लगी कि जयन्त को दुख हुआ, इसीलिये उसने अपने हाथों जा कर अपने को पुलिस में दे दिया। आदमी जब जिन्दगी से हार जाता है,

तो उसकी यही दशा होती है ।

कुमार माधव अलग चिन्तित थे । वे सोच रहे थे कि मैं एक बिगड़े हुए को राह पर नहीं लगा सका । मैं इन्सान को इन्सान की डगर नहीं दिखा सका । जयन्त प्रायश्चित करने आया था । मैंने उसे पाप की पताका दी । मैंने उसको नहीं समझा । मैंने उसको नहीं परखा । यह तो गति हुई वही कि वह राजा प्यासा था और एक पेड़ की शाख से बूँद-बूँद जल टपक रहा था । राजा ने पत्ते का दोना बनाया । पानी उसमें इकट्ठा होने लगा और जब भर गया वह दोना, तो राजा उसे पीने चला; लेकिन उसके बाज ने उसे गिरा दिया । राजा ने क्रोध में आ बाज को मार डाला । तब उसे पता चला कि एक साँप मर गया है । उसी के शव से बूंद-बूंद पानी टपक रहा है । अगर मैं यह पीता तो मर जाता । बाज ने मेरी जान बचाई और मैंने उसी को मार डाला ।

इस तरह कुमारमाधव के बँगले में मातम की लहर दौड़ गई । सरोज रोने लगी; सुनीता ने सिसकियाँ लीं और कुमारमाधव ने दीर्घोच्छ्वास । उस दिन उस बँगले में डिनर टेबिल नहीं सजी छुरी-काँटे नहीं खटके । उस दिन किसी ने भी कौर नहीं तोड़ा । सारे दिन मौत का मातम रहा ।

जब मौत का मातम घर में छाता है तो हर आदमी हतबुद्धि हो जाता है । दुख की कहानी कही नहीं जाती । वह आँसुओं से पूरी होती है । मौत जिन्दगी से लड़ती है, भावनायें कर्त्तव्य से । उद्देश्य अकर्मण्यता को कुचल डालता है । वह पकड़ता है साधना की बाँह और कहता है कि मेरा लक्ष्य तुम्हीं हो ।

लक्ष्य और उद्देश्य जिन्दगी के दो उदाहरण हैं, दो ही नाम । कर्त्तव्य उसकी काया है, प्रेम उसकी माया, पराकाष्ठा उसकी पताका है और मर्यादा उसकी महिमा । जिन्दगी एक सपना है, जिन्दगी एक संघर्ष । वही सार तत्व है, वही जीवन दामिनी संज्ञा । जब बुझदिल में जोर उमड़ता है, जब कायर श्रम को चूमता है, जब कर्त्तव्य चलता है आगे, कर्मठता अपने आप ही पैरों में सुहाग के नूपुर बाँध लेती है ।

सरोज सोच रही थी जयन्त के प्रति कि बस हो गया जिन्दगी का स्वांग

जो माटी की गुड़िया लाया था, वह मदारी मौत क मुँह में चला गया। जो सरोज का सपना था, वही अन्धकार बन गया। जो जिन्दगी था वही ख्वाब बना। जो आत्मा था वही मुझसे दूर हुआ।

सरोज सोचती रही, कुमारमाधव का भी मनोमन्थन चला और सुनीता भी गई डूब गहराई में। वह सोचने लगी कि जब आदमी योजना में सफल नहीं होता, तो वह जिन्दगी को नर्क समझने लगता है। यही जिन्दगी स्वर्ग है, यही नर्क। यही सुख है, यही दुख। लोग कहते क्यों हैं ? उर्दू के किसी घायल शायर ने कहा है कि जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या खाक जिया करते हैं। शायद जयन्त की जिन्दगी के दिये में जो तेल था उसमें मर्यादा का पानी भर गया और कर्त्तव्य की बत्तियाँ पानी में नहीं जलतीं; वे मर्यादा का तेल चाहती हैं। आदमी जब स्तर से गिर जाता है, तभी समाज उसकी उपेक्षा करता है।

और सरोज सोच रही थी कि ईश्वर मेरे जयन्त को कुछ न हो, नहीं तो मैं जान दे दूँगी। वह मौत के मुँह में चला गया। वह मुझ से रूठ गया। काश ! मेरी जान उसके काम आ सकती है और वह जिन्दगी का सुख भोग सकता। प्रेमी न कभी पराया होता है और न कभी पुराना। जो जिसको प्यार करता है, वह उसी का रहता है। आह जयन्त ! मर जाती मैं। न कुछ सुनती और न कुछ आँखों देखती।

४६

●●●

दूसरी साँझ को जब कुमारमाधव मिल से आये, सुनीता उनके सम्मुख आई। आते ही उनका प्रश्न हुआ सरोज कहाँ है। उत्तर में सुनीता की आँखों में आँसू आ गये। वह बोली—"सरोज की आँखें लाल हो गई हैं,

पलकें सूज गई हैं। वह रो रही है जयन्त के लिये। तुम जाओ जरा उसे समझाओ। आज न उसने कुछ खाया है, न पिया है।"

कुमारमाधव को चैन नहीं पड़ी; वे सीधे सरोज के कमरे में पहुँचे। वहाँ विरहनी के बाल बिखर रहे थे। उसकी सिसकियाँ उसे मासूम बना रही थीं। वह रो रही थी धीर-अधीर होकर। कुमारमाधव ने उसका सिर ऊपर उठाया और अपने रूमाल से आँसू पोंछे। वह बोले स्नेह-पगे स्वर में—"रोती है पगली ! आज मैं भी कुछ नहीं खाऊँगा, योंही पड़ा रहूँगा। बता, बता सरोज तू क्या चाहती है ?"

उत्तर में सरोज कुमारमाधव के वक्ष से लग गई और रोते-रोते बोली—"भइया उन्हें छुड़ा लाओ। उनकी जमानत कर लाओ। वे मेरे पहले पति हैं, मेरी जिन्दगी के पहले दावेदार। शरीर मैंने अशोक को दिया है, लेकिन मन उनके लिए सुरक्षित है। वे देवता हैं भइया, देवता ! मैं उनकी पूजा करूँगी।"

"लेकिन सरोज कुछ और भी सोचा है तुमने ?"

इस पर सरोज फौरन-ही बोल उठी—"सब सोचा है। सब समझ लिया है। आपके कहने और बतलाने की जरूरत नहीं। अशोक मेरी देह का स्वामी है तो जयन्त मेरी माटी की गुड़िया। अगर तुम चाहते हो, मुझसे स्नेह करते हो, तो मेरे जयन्त को मेरे सामने लाकर खड़ा कर दो। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ भइया। जाओ, देर न करो। मैं मुँह में अन्न तभी डालूँगी जब जयन्त मेरी आँखों के सामने होगा।"

"सुनो तो सरोज, मैं............।"

"नहीं ! नहीं !! नहीं !!! न कुछ सुनना है, न कुछ समझना है। अगर तुम जा सकते हो तो जाओ। नहीं तो मैं जाऊँगी। मैं जहर का प्याला पी सकती हूँ भइया। मेरे जयन्त को कोई बचा ले।"

जब सरोज ने कुमारमाधव की बात काट कर यह कहा—"तो आगे वे निरुत्तर हो गये और उसके कमरे से चले गये।

कुमारमाधव पैदल-ही बँगले से निकल कोतवाली पहुँचे। जमानत की हरचन्द कोशिश की; लेकिन जयन्त की जमानत नहीं हो सकी और दूसरे

दिन उसका चालान जेल भेज दिया गया।

उसी दिन कुमारमाधव सरोज को अपने साथ ले जयन्त से मिलने जेल पहुँचे। तब जयन्त ने सबसे पहले माँगी क्षमा कुमारमाधव से। वह बोला—"आप मुझ पर तरस खाइये। मेरे हाल पर रहम कीजिये। जेल-ही मेरी दुनिया है, कैद-ही मेरी जिन्दगी मेरी जिन्दगी। मुझसे न छीनो, मेरी दुनिया मुझसे अलग न करो। मैं न जमानत चाहता हूँ और न रिहाई।"

कुमारमाधव ने जयन्त को बहुत समझाया। सरोज तो केवल रोती भर ही रही। तब जयन्त बोला—"रोते नहीं सरोज! हिम्मत से काम लो। अशोक तुम्हारे साथ है। तुम समझ लो कि जयन्त मर गया, वह दुनिया से चला गया। मैंने तेरे ही लिए तो यह सब किया है पगली। तू रोती है? हँस, अरी हँस जयन्त की माटी की गुड़िया और हँसकर यहाँ से जा।'

अब तो सरोज बिलख-बिलख कर रोने लगी। जयन्त ने उसे समझाया उसने उसके आँसू पोंछे। फिर कहने लगा धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेर—"जयन्त को भूल जाओ सरोज। वह तुम्हारी जिन्दगी का एक छोटा-सा सपना था। अशोक सत्य बन चुका है। वह स्वप्न से आगे है। जाओ, अपनी दुनिया बसाओ और मेरे नाम पर आँसू न बहाओ। समझ लो कि जयन्त मर गया।"

सरोज रोती रही; सिसकती रही। कुमारमाधव भी उसे समझाते रहे। अन्त में मिलने का समय हो गया खत्म। अब कुमारमाधव और सरोज जेल से बाहर आये, तो जयन्त के भी गिरने लगे टप्-टप् आँसू। वह सोचने लगा कि जिन्दगी एक खिलौना नहीं; बल्कि मनुष्य-ही खिलवाड़ होता है। औरत बेपीर नहीं, वह मोम की पुतली है। सरोज कितना चाहती है मुझे! काश! इसे जिन्दगी में सुख मिल सकता। अगर खुशियों के खजाने न भरे मेरी माटी की गुड़िया की जिन्दगी में, तो मैं आग लगा दूँगा दुनिया में। मनुष्य जिसे प्यार करता है, उसे फला और फूला देखना चाहता है। आह सरोज! छोटी-सी मेरी माटी की गुड़िया! तू कितना रोती है मेरे लिये। किस्मत में हम दोनों का मिलन नहीं लिखा था। जुदाई से ही प्यार करो सरोज। जिन्दगी

की यह सबसे बड़ी अमानत है।

और सरोज कुमारमाधव के साथ जाती हुई इस भावना में बह रही थी कि जयन्त तुम मेरे होकर भी मेरे न हुए। मुझसे दूर हो गये। मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकती। मौत आ जाय मुझे, मर जाऊँ मैं। कौन कहेगा मुझे मेरी 'माटी की गुड़िया' कौन खींचेगा मेरी चोटी। बचपन, भूल जा अपनी कहानी। जवानी, याद न दिला बीती हुई बातें। आँसू आते हैं, कलेजे में टीस उठती हैं। किससे कहूँ, कैसे कहूँ कि मैं अपने जयन्त की माटी की गुड़िया हूँ। आह जयन्त ! मेरी जिन्दगी !! और मेरा सपना !!!

कुमारमाधव के सम्मुख यह पहली मिशाल थी कि एक पत्नी और दो पति। वे असमंजस में थे। सोच-ही नहीं पा रहे थे कि क्या करूँ। वे तथ्य को समझते थे। भविष्य से डरते थे; क्योंकि वर्तमान उनसे कह रहा था पुकार-पुकार कि अब कुछ नहीं हो सकता, कुछ भी नहीं हो सकता। सरोज अशोक की है, जयन्त की नहीं। यह तुम क्यों भूल जाते हो।

कुमारमाधव की विचारधारा अपने में ऐसी उलझ रही थी कि जैसे रस्सी। वे निरन्तर सोचते चले जा रहे थे कि जिस तरह नदी का प्रवाह नहीं रोका जा सकता। उसकी गति में मोड़ नहीं लाया जा सकता, ठीक वैसे-ही होती है इन्सान की जिन्दगी। वह कहानी बनती है और कैसी कथा, जिसे सुनकर हर एक कोई दाँतों के तले उँगली दबाता है। जब भाग्य अनुकूल नहीं होता तो जिन्दगी करवटें बदलती है और जब करवटें लेने में होता है दर्द, तो उसे ही प्यार की पीर कहा जाता है। प्यार कभी मरता नहीं, वह शाद और आबाद रहता है। ब्याह का बन्धन कुछ नहीं, यह तो स्त्री-पुरुष का मिलन कराता है। अशोक सरोज के लिए तारा है और जयन्त पूर्णिमा का चाँद। जब चाँद नहीं निकलता, तो तारों की ज्योति मन्द पड़ जाती है। ऐसे-ही बुझ जायेगी सरोज। उसकी जिन्दगी में कुछ नहीं रहेगा। वह हँसेगी कभी नहीं, उसे प्यार का लकवा मार जायेगा।



जिस दिन सरोज ने पुत्र प्रसव किया, उस दिन कुमारमाधव के बंगले में बन्दूकें छूटीं। रात में जश्न मनाया गया। और दूसरे दिन मंगतों और कंगलों को खिलाया गया और तीसरे दिन आ गया अशोक। वह पुत्र और पत्नी को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

इसके एक सप्ताह बाद-ही कुमारमाधव को पता चला कि जयन्त का मुकदमा शुरू हो गया है। वे अकेले कचहरी जाते बैठकर जयन्त का मुकदमा सुनते। जिस सिपाही के पेट में जयन्त ने छुरा भोंका था, वह मरा नहीं जिन्दा था। इसीलिए उसे तीन साल की सजा हुई। सरोज ने सुना, तो वह सारे दिन और सारी रात रोती रही।

दिन-पर-दिन बीतने लगे; जयन्त सजा काट रहा था। कुमारमाधव उससे मिलने जेल जाते, तो वह सरोज को पूछते और सरोज जाती कैसे? वह पार पराये बन्धन में थी। बन्धन वह पाश है, जो मनुष्य से उसके अधिकार छीन लेता है। ब्याह वह कैद है, जो जिन्दगी के लिए एक को दूसरे का गुलाम बना देता है।

जिस दिन मिलायी की तारीख होती, जयन्त सरोज की प्रतीक्षा करता। वह सोचता कि आज आयेगी मेरी माटी की गुड़िया। साथ में अपना लाल भी लायेगी। वह मेरा नहीं तो धर्म-पुत्र तो होगा। मैं उसे खिलाऊँगा, जी भरकर प्यार करूंगा और कहूँगा उस माटी की गुड़िया से कि देख इस खिलौने को सम्हाल कर रख। यही तो मेरी जिन्दगी का सुख है। यही मेरी राह का दिया।

किन्तु प्रतीक्षा की घड़ियाँ बीत जातीं, सरोज नहीं आती। कुमारमाधव पहुँचते, तो अपना-सा मुँह लिये हुए। वे सहानुभूति से पीछे नहीं रहते और जयन्त से पूँछते कि तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है।

उत्तर में जयन्त हँस देता। वह कहने लगता—"कष्ट कुछ नहीं, आराम

भी कुछ नहीं । जो कुछ है सो अकेलापन यह मुझे बहुत खलता है । सरोज कैसी है । अच्छी तो है ? जब जिन्दगी के सितार का तार एक बार टूट जाता है, तो राग नहीं निकलता, अनुराग नहीं जागता । मैंने खो दिया सरोज को । क्या यह मेरी भूल नहीं ?"

कुमारमाधव और जयन्त में जब-तक समय खत्म नहीं हो जाता, बातें होती रहतीं उन बातों का सिलसिला आदि में शुरू होता और अन्त में समा जाता ।

इधर सरोज सोचती जयन्त के प्रति कि वह क्या कहता होगा अपने मन में कि सरोज परायी हो गई है । औरत जब परायी बनती है, तो उसके हाथ-पैरों में बेड़ियाँ पड़ जाती है । वह बेपीर नहीं होती । स्वभावत: लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते । वह अपने में मिट जाती है पानी के उस बुल-बुले की तरह जो अमिट होता और जिसका कोई अस्तित्व नहीं ।

और जयन्त सोचता जेल में कि स्त्री परवश होती है । वह परायी थाती होती है, परायी अमानत । वह स्वच्छन्द नहीं, स्वेच्छाचारिता भी नहीं, वह जिन्दगी भी नहीं, एक स्वप्न होती है । जो देखी जाती है, सुनी और समझी जाती है । वह होती है अपने में स्थिर, इसीलिये उसे संरक्षण मिलता है ।

जयन्त कभी-कभी इतने अधिक प्रवाह में बह जाता वह । सोचने लगता कि मेरी आँखों के सामने से कोई सरोज को ले जाये, उसकी देह से खेले ! यह नहीं हो सकता, नहीं हो सकता ।

इस इरह जयन्त सरोज और कुमारमाधव तीनों ही परेशान थे उनकी समस्या उन्हें उलझा रही थी । ये सब एक अजीब उलझन में थे कि यह क्या से क्या हो गया ।

और होता भी है यही जब अनहोनी घटनाएं घट जातीं हैं । ऐसी स्थिति में आ मनुष्य अपना विवेक भूल, पथभ्रष्ट होता है । वह सोचता कुछ है, करता कुछ । कर्तव्यपरायणता का पाठ तो वह बिल्कुल भूल हीं जाता है । अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, समय किसी का साथी नहीं बनता । और इंसान, वह होता है अनभिज्ञ । उसे मौत और जिन्दगी का पता नहीं

चलता ।

जयन्त को सरोज जितना-ही भुलाने का प्रयत्न करती, उतना-ही वह उसकी आँखों में बसता चला जाता । वह उसके मन का तार बनता और उसके हृदय का राग । वह कभी-कभी एकान्त में होती, चित स्थिर होता, तो गाने लगती फिल्म 'दिल्लगी' का एक प्रचलित गीत—"तू मेरा चाँद मैं तेरी चाँदनी, मैं तेरा राग तू मेरी रागिनी । नहीं दिल का लगाना कोई दिल्लगी कोई दिल्लगी ।"

इस तरह जी रही थी सरोज । उसका मर्म उसे जीवन्मृत बनाये था । वह आँसुओं को पीती; लम्बी-लम्बी साँसें लेती । वह अपने जयन्त को याद करती जिसकी माटी की गुड़िया थी ।

४८



सरोज सोचती कि मैं जयन्त को देख आऊँ । वह कैसा है ? वह कारागार में बन्द है और मैं सुख की साँसें ले रही हूँ । कहाँ से फँस गई जंजाल में । मैंने अशोक से ब्याह क्यों कर लिया । प्रेमी का प्यार अमर होता है और पति का प्रेम, एक दुनियादारी । पति-पत्नी तो जगविदित हैं; लेकिन प्रेमी और प्रेमिका बहुत कम । कैसा था महिवाल जब सोहनी ने उससे कहा था कि मुझे मछली चाहिये, तो वह अपनी रान की मछली काट कर पका लाया । सोहनी की ननद ने धोखा दिया । यह पक्का घड़ा लेकर चिनाब में उतरती थी और अपने महिवाल से मिलती थी । लेकिन रख दिया ननद ने कच्चा घड़ा । सोहनी और महिवाल दोनों गले में बाहें डाल चिनाब में डूब गये ।

जयन्त को दुःख न होता, तो वह पुलिस के हाथों में अपने को क्यों सौंपता ? सरोज सोचती थी कि कैसा था फरहाद ? जिसने अपने शीरी

के लिये दूध की नहर खोदी थी। मजनू लैला पर मर मिटा। वामिक अजरा के लिए कुर्बान हो गया। राँझे के लिये जान दे दी। शशि कुन्हू को नहीं पा सका। ये हैं हमारे देश की मिशालें। फिर भला जयन्त मेरा क्यों बनता ? मैं कैसे जाऊँ उससे मिलने ! मैं किसी की पत्नी हूँ और किसी की माँ बन चुकी हूँ।

इस तरह अहर्निश सोचती रहती सरोज। वह इच्छा होते हुए भी जयन्त से मिलने जेल नहीं जा पाती। जब अशोक पूँछता कि आजकल तुम कुछ उदास-उदास नजर आती हो ? तो वह कहती कि यह तुम्हारी भूल है। मैं पहले तुम्हारी पत्नी थी न। लेकिन आजकल किसी की माँ हूँ, इसीलिए प्यार बँट गया है।

इस पर अशोक मुस्करा देता, वह सोचता कि बचपन में लड़की जवान होने की कामना करती है और जब जवानी आकर उसे घेर लेती है, तो वह पिया की राह देखती है। वह प्रणय के झूले पर झूलती है, प्रेम के गीत गाती है और फिर जब बन जाती है बालक की माँ, तो पुरुष से कहती है कि मुझसे दूर रहो। मैंने तुम्हारा हक तुम्हें दे दिया। मैंने पुत्र प्रसव कर दिया। तब पत्नी पति को उतना नहीं चाहती जितना अपने पुत्र को। ठीक यही दशा है सरोज की। अब उसे प्यार की भूख नहीं रह गई है।

अशोक यह सोचकर प्रसन्न था; सरोज अपने में चिन्तित थी और चिन्ता की दो धारायें भी बह रही थीं दायें-बायें। एक सुनीता से टकराती तो दूसरी कुमारमाधव से टक्कर लेती। दोनों आपस में यही बातें करते कि सरोज का क्या होगा ? दो पति हैं एक पत्नी। यह एक नया नमूना है। एक ने उसको बचपन से प्यार किया, दूसरा जवानी का साथी बना। जो हक जयन्त को है, वह अशोक को नहीं।

और सरोज सोचती कि मर क्यों नहीं जाती माटी की गुड़िया ? माटी में क्यों नहीं मिल जाती ? जब प्यार का रंग फीका पड़ने लगता है तभी तो आदमी आत्महत्या करता है। माफ कर दो जयन्त ! मैं तुम्हारे योग्य नहीं रही।

दिन धीरे-धीरे बीतते गये; जयन्त की रिहाई का समय आ गया। वह जेल से छूटा, तो सीधा पहुँचा अपनी सरोज के घर। तब अशोक मिल में था। दोनों एक दूसरे को देख कर खूब रोये। बच्चा तीन साल का था। वह पैरों चलता था। जयन्त ने उसे प्यार किया और कहा कि सरोज यह मेरा धर्म का बेटा है।

जब जयन्त जाने लगा, तो सरोज ने उसे रोका। वह बोली—"खाना खाकर जाओ, मैं अभी बनाती हूँ तुम्हें तुम्हारे धर्म-पुत्र की कसम! तुम बिना खाये नहीं जाओगे।"

जयन्त ने सरोज का आग्रह सहर्ष स्वीकार कर लिया। सरोज ने दूध में पूड़ियाँ तलीं। उसने घी में भी पूड़ियाँ पकायीं। जयन्त ने खाया और फिर जब वह जाने लगा तो सरोज रोकर बोली—"मुझे किसके सहारे छोड़े जा रहे हो जयन्त! मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकती। मुझे अशोक प्यारा नहीं, तुम्हीं मेरी जिन्दगी हो।"

"भूलती हो सरोज! जो राहें अपने-आप थक जाती हैं, जो इन्सान परिस्थितियों में पड़ जाते हैं, वे ही तो कहलाते हैं अधिकार वंचित। अब तुम जयन्त की माटी की गुड़िया नहीं, अशोक की रानी हो, सोने की गुड़िया। संतोष करो सरोज जिन्दगी में दुख-सुख बराबर मिलता है। जो दुख के घूंट पीता है उसे सुख मिलता है। जो काँटों की सेजों पर सोता है उसे ही मखमल मिलते हैं। भूल जाओ, अतीत वर्तमान को देखो। कितना सुखद है, कितना सुन्दर। अशोक हेडक्लर्क है मिल का और मैं तो एक गिरहकट। संतोष करो, अपना भविष्य देखो, जयन्त को मिट जाने दो। वह अच्छा आदमी नहीं।"

"मुझे अच्छाई नहीं चाहिये! मुझे सोना नहीं चाहिए!! और सुख की मुझे जरूरत नहीं!!! मैं गरीब की लड़की हूँ। मुझे सूखी रोटी चाहिये और अपना पुराना प्यार। देखो तो जयन्त, तुम्हारी माटी की गुड़िया कैसी हो गई है। तुम उसकी परवाह नहीं करते। शायद उसे चाहते नहीं।"

जब यह कहा सरोज ने तो जयन्त की आँखों में आँसू भर आये। वह बोला—"कैसी बातें करती है पगली? जिस दिन माटी की गुड़िया नहीं

रहेगी, मैं दुनिया में आग लगा दूंगा। अगर मेरा प्यार चिता में धू-धू करके जला, तो मैं दुनिया का दुश्मन हो जाऊँगा। बस आगे कुछ न बोल पगली। मैं तेरे सुख से सुखी हूँ। तू जिन्दगी की बहार लूट। भूल जा जयन्त को। तुझे भगवान ने बहुत कुछ दिया है।"

"मुझसे कहते हो कि भूल जाओ। फिर तुम क्यों आये? मेरे सोये अलम में तुम आग लगाने चले आये। यह क्या हो गया जयन्त? हम दोनों की दुनिया ही बदल गई। दोनों मजबूर हो गये, पर कटे पक्षी की तरह। हाय किस्मत! हाय दुनिया!! हाय जिन्दगी!!! तू प्यार की दुश्मन है। तू प्यार को कभी पनपने नहीं देती, जिन्दा ही मार डालती है।"

यह कहने के साथ-ही सरोज फूट-फूट कर रोने लगी। जयन्त भी रो दिया; लेकिन उसने उनको छुआ नहीं, दूर ही खड़ा रहा और जब सरोज उसकी ओर लपकी तो वह बोला—"सरोज यह विश्वासघात होगा अशोक के साथ। तुम उसकी पत्नी हो। कहता तो हूँ कि भूल जाओ बीती बातें। अगर तुम रोओगी, तो मैं कभी नहीं आऊँगा।"

"अच्छा नहीं रोऊँगी। आँसू पोंछ लेती हूँ। तुम रोज आओगे जयन्त। तुम्हें मेरी कसम। तुम कितने अच्छे आदमी हो। तुमने अपने कलेजे पर पत्थर रख लिया। मैं तुम्हारी जिन्दगी भर पूजा करूँगी, तुम्हारे नाम की माला जपूंगी और याद करती रहूँगी वे दिन जब मेरी चोटी पकड़ी जाती थी। मैं पानी में छप-छप करके भागती थी और कोई कहता था कि चल मेरी माटी की गुड़िया। याद है वह दिन जब पानी बरसा था और माटी की गुड़िया के सभी रंग धुल गये थे। क्या कहा था कि मैं इसका साज करूँगा, शृंगार करूँगा। दुख न करो, सरोज। मैं इसमें सब रंग भर दूँगा। इसकी माँग सिन्दूर से भर दूँगा। मुझसे कहते हो कि रोऊँ न। तो और क्या करूँ।"

अब जयन्त तनिक स्थिर हुआ और धीरे से कहा—"पुराने दर्द न छेड़ो, पुराने गीत न गाओ और न दोहराओ पुराने प्यार की कहानी। सब कुछ भूल जाओ सरोज प्यार का यही अन्जाम होता है। मैं रोज आऊँगा अपनी माटी की गुड़िया को देखने। अब तो चुप हो जा पगली। तू रोती है

तो मेरे कलेजे में घाव बन जाते हैं। हँस-हँस मेरी माटी की गुड़िया और हँसते-हँसते मुझे विदा कर।"

सरोज ने होंठ दाँतों से चबाये। उसने हँसने की कोशिश की। जयन्त भी जबरदस्ती मुस्कराया। वह चौखट के बाहर हो गया। तब सरोज रो दी मुँह फाड़। वह रोते-रोते सोचने लगी कि ईश्वर मुझे मौत दे दो। मुझे नयी जिन्दगी दे। मैं जयन्त की हूँ और उसी की रहूँगी जनम-जनम। कितनी समाई है उसमें। उसने अपने प्राण सौंप दिये कर्त्तव्य के हाथों में। वह आदमी नहीं, देवता है। आह जयन्त! मैं दो दिन तुम्हारे साथ दुनिया का सुख नहीं भोग सकी। मेरी जिन्दगी में बसन्त आया, वह भी जल्दी-जल्दी। कोयल बोल कर चली गई। सावन बरसा, वह भी धीरे-धीरे और मल्हार तो गाई-ही नहीं गयी। हम दोनों होली में रंग अबीर नहीं खेले। दिवाली के दिये नहीं जलाये। आह! जुदायी ही लिखी थी भाग्य में। वह मिली।

और जयन्त, वह जब चला तो रास्ते में सोचता गया कि सरोज की स्थिति अच्छी नहीं। वह पागल हो सकती है। प्यार की पीर उसे बेकाबू कर रही है। वह अपने में अधीर है। प्यार जिसका पूरा उतरता है? उसका निभता है? रोमियो-जूलियट दोनों ही नेस्तनाबूद हो गये और मिट गईं इसी तरह कितनी ही हस्तियाँ। दुनिया प्यार को एक गुनाह समझती है और कुछ नहीं। प्यार की अंकुर जमते-ही उस पर दुनिया की कुदृष्टि का पाला पड़ जाता है। कैसे समझाऊँ उस नादान को? वह भोली है, उसमें समझ नहीं।



स्वतंत्रता प्राप्ति के बात भारत सरकार का उत्तरदायित्व इतना अधिक बढ़ गया कि देश के लिये नवनिर्माण की अग्रणी हो चली। हर शहर में जहाँ घनी-घनी बस्तियाँ थीं, वहाँ आबादी शहर के बाहर बस्तियों में बसी। हर नगर खूब बढ़ा। अपने से दुगना और चौगुना। कस्बों का उद्धार हुआ। गाँव में बिजली पहुँची, और फिर देहली। वह तो भारत की रानी है, साम्राज्ञी युग युग की। वहाँ तो इतनी नयी कालोनी बनीं कि जिनका नाम नहीं। बड़े शहरों में आदमी बेकार नहीं रहता। उसे कुछ-न-कुछ काम मिल ही जाता है। सो जयन्त पहुँच गया जमुना के उस पार। गाँधी नगर की नयी कालोनी में सैकड़ों मकान बन रहे थे। उसने मजदूरी की। दिन भर सिर पर ईंटें ढोयीं। दोपहर को जब सब मजदूरों ने खाना खाया, किसी ने चबेना लिया, तो उसने पी लिया भर पेट ठंडा पानी। साँझ को मजदूरी मिली दो रुपये नकद, तो वह पैदल ही चल दिया। चाँदनी चौक में आ उसने एक रुपये के खिलौने खरीदे, काठ का घोड़ा और झुनझुना और एक ली रेशमी चोटी जिसकी कीमत एक रुपया थी। जब वह सरोज के घर पहुँचा, तो वह राह पर आँखें बिछाये बैठी थी। अशोक आता था आजकल रात को नौ बजे।

जयन्त ने सामान सरोज के सामने रख दिया और बोला—"लो, मै आ गया। अब तो तुम्हें शिकायत नहीं है? अच्छा, अब जल्दी ही चलूंगा; क्योंकि अशोक आता होगा। उसने कहीं मुझे देख लिया तो, तुम्हारी जिन्दगी नर्क बन जायेगी।"

'मैं उस नर्क को ही स्वर्ग समझ लूंगी जयन्त। तुम जाओगे नहीं, अभी आये हो, थोड़ी देर बैठो। आज मैं खीर बनाऊँगी, तुम खाकर जाओगे। मुझे अशोक का डर नहीं। मुझे दुनिया का डर नहीं। डर तो है सिर्फ भाग्य का कि कहीं वह पहले की तरह करवट न बदल दे।"

यह कह सरोज रसोई की ओर चल दी। वह व्यंजन बनाने लगी अपने जयन्त के लिए। रसोई में ही बैठे-बैठे उसने वह सुनहली चोटी बाँधी, जो जयन्त लाया था। वह गाती रही धीरे-धीरे—"मेरे पिया आये हैं द्वार सजनियाँ नाचूँगी। वे लाये ढेर-सा प्यार, में उनकी बन जाऊँगी। मेरे पिया······"

खाना बन चुका था, जयन्त ने खाया। तब रात के आठ बजे थे। उसके बाद दोनों की बातें ही खत्म नहीं हुईं और नौ बज गये। अशोक मिल से आ गया। आँगन की चौखट तक आते-आते उसने सरोज को किसी से बतलाते सुना। वह ठिठक गया और चुपचाप खड़ा होकर सुनने लगा।

"अब जाता हूँ सरोज। अशोक आता होगा। मेरी वजह से अगर कोई कहीं बात हो गयी, तो तुम्हारा भविष्य खतरे में पड़ जायेगा। और हाँ देखो मुन्ने का ख्याल रखना। बड़ा चंचल हो गया है। बार-बार बाहर निकल जाता है।"

यह कहकर जयन्त जैसे ही बाहर जाने लगा वैसे ही अशोक ने सुना सरोज का शब्द। वह आग्रह की डोर में बाँध उससे कह रही थी—"हाँ खाना कल यहीं खाना। और रहते कहाँ हो? क्या करते हो? आखिर तुमने सोचा क्या है अपने लिये?"

"अब सोचना और विचारना क्या है माटी की गुड़िया। मेरी जिन्दगी तो बन बिगड़ चुकी। मेरी चिन्ता न करो सरोज। जिनके दामन में दाग लग जाता है, वो दुनिया के सामाजिक-द्वार से दूर कर दिए जाते हैं। उन्हें लोग अच्छी निगाह से नहीं देखते। समझ लो कहीं रहता हूँ। धरती मेरा बिस्तर है, आकाश मेरी चादर। हाँ मेहनत करके कुछ कमाता हूँ। अब मैं भलाई ही करूँगा सरोज। बुराई के रंग में अपने हाथों को नहीं रंगूँगा।"

जयन्त ने एक साँस में यह कहा और वह फिर जाने को उद्यत हुआ। तब रोने लगी सरोज। वह सुबक-सुबक कर बोली—"यह हालत तुम्हारी हो गई जयन्त! मेरा तो कलेजा मुँह को आता है। अरे निष्ठुर! तू मरने का ढोंग न करता, तू सहज ही पुलिस की पकड़ में आ जाता तो यह सब क्यों

होता ? अच्छा जाओ, लेकिन आना कल जरूर। मैं तुम्हारी राह देखूँगी।"

"हर काम आदमी अपनी अच्छाई और भलाई के लिए करता है। वह कभी सोचता ही नहीं सरोज कि पाँसे उल्टे भी पड़ सकते हैं। जो भी हुआ उसे भूल जाओ। तुमने कहा न कि किस्मत में हम दोनों का मिलन नहीं जुदाई लिखी थी। फिर रोने लगी। हंस सरोज हँस दे मेरी माँटी की गुड़िया और हँस-कर ही विदा कर।"

जयन्त के मुँह से यह सुन माँटी की गुड़िया ने आँसू पोंछे और हँसने का उपक्रम वापस करने लगी। और तभी चल दिया जयन्त वह मुस्कराया और जाते-जाते बोला—"जियो सरोज जब तक गंगा-जमुना में पानी रहे, तुम्हारी माँग सिन्दूर से भरी रहे। यह मेरा आशीर्वाद है। बैठो, देर बहुत हो गई है।"

जयन्त को बाहर आते देख अशोक किवाड़ों की ओट में छिप गया। वह चला गया, अशोक खड़ा-खड़ा देखता रहा। आँगन में खड़ी सरोज अब भी सिसक रही थी। जैसे-ही अशोक ने अन्दर पैर रखा, वह सजग हो गई। भीतर-ही भीतर डर गई सरोज कि कहीं इन्होंने मेरी और जयन्त की बातें सुन तो नहीं लीं। ऐं! समय का ध्यान नहीं रहा। ईश्वर लाज रख लेना। क्योंकि औरत पर सन्देह आदमी बहुत जल्दी करता है।

किन्तु कुछ भी प्रकट नहीं किया अशोक ने। वह सारे तथ्य को पी गया। उसने सरोज से पूँछा—"मुन्ना सो गया क्या? आज बड़ी देर कर दी खाना बनाने में। क्या बँगले चली गई थीं? खैर छोड़ो, लाओ, जल्दी करो, मुझे भूख लगी है।"

अब सरोज की जान में जान पड़ी कि नहीं इन्होंने कुछ भी नहीं सुना। उसके हाथों में जैसे बिजली भर गई। उसके गात में स्फूर्ति आ गई। वह मृदु-स्वर में धीरे-धीरे कहने लगी—"बड़ा ढीट हो गया है मुन्ना। अभी-अभी तो सोया है। बँगले नहीं गई थी मैं। एक पड़ौसिन आ गई थीं। देर तक बैठी रहीं। चलो खाना तैयार है।"

सरोज ने जल्दी से थाली लगाई। अशोक जब खाने बैठा तो खूब बातें

करता रहा ।

और आज अशोक ने देखा एक नया आश्चर्य । सरोज जब उसके लिये गिलास में दूध लेकर आई, तो उसका सिर खुल गया था, सुनहली चोटी लटक रही थी । अरे ! यह चोटी तो कभी बाँधती नहीं । इसे फीतों से प्रेम है । आज यह सिंगार क्यों ? शायद इसका कोई पुराना प्रेमी आया था ।

सरोज कमरे से चली गई और अशोक को गहन चिन्ता के समुद्र में छोड़ गई । वह सोचने लगा कि यह जयन्त कौन है जो जुदाई और मिलन की बातें कर रहा था । बड़ा मुश्किल है । जाना नहीं जाता कि किसके मन में क्या है । मैं इसे बहुत भोली समझता था । हाँ याद आया । एक दिन कहा था सरोज ने कि मेरा जयन्त मुझे माटी की गुड़िया कहता था । लेकिन वह मर गया । यह दूसरा जयन्त कहाँ से आ गया ? भेद कुछ समझ में नहीं आता । वास्तव में नारी एक पहेली होती है । ऐसी-ही बातों को लेकर पति-पत्नी का खून कर देता है । ऐसी ही बातों को लेकर भेद-भाव उत्पन्न हो जाता है । ऐसे-ही तलाक ली और दी जाती है । कल कुमारमाधव और सुनीता से कहूँ । नहीं, अभी बात अपने तक ही रखना ठीक है ।

इस तरह अशोक को सारी रात नींद नहीं आई । वह सरोज और जयन्त के प्रति ही सोचता रहा । मन में जब विकार घर कर लेता है तो भावनायें अपने आप बदल जाती हैं । स्थिर रहना चाहता है मनुष्य । वह दृढ़ता से भी खेलता है । लेकिन क्रोध रूपी दुर्बलता उसके संयम को डगमग कर देती है । इसीलिए तो सबेरे जब अशोक उठा, तो नित्य की भाँति उसमें प्रफुल्लता नहीं; एक अजीब-अजीब सा रूखापन था । वह उठते ही मुन्ने का मुँह चूमना भूल गया और सरोज को भी नहीं पुकारा । राउन्ड टेबिल पर अँग्रेजी का दैनिक पत्र पड़ा था । वह उसे उठाकर पढ़ने लगा ।

सरोज पूरी पगली थी । उसे यह सब कुछ नया नहीं लगा ।

५०



यदि दम्पति में झगड़ा हो जाता है और झगड़े का माध्यम बनता है वाक्-युद्ध, तो मेल बड़ी जल्दी हो जाता है। किसी के भी मन में मैल नहीं रहता। किन्तु जब आग भीतर-ही भीतर सुलगती है तो उससे धुआँ उठता है। यह आवेश और क्रोध का धुआँ काला नहीं होता। इसका कोई रूप नहीं होता। यह साँसों में घुल-मिल जाता है। जब ग्रन्थि आकर बीच में पड़ जाती है, तभी उठ जाता है दीवाल का घेरा और यह घेरा ही तनाव कहलाता है। इसी तरह अशोक में परिवर्तन आ गया था। वह उस दिन कुछ रूखा-रूखा ही रहा जब-तक मिल नहीं गया और आफिस गया भी तो चिन्ता की गठरी अपने साथ ले गया।

× × ×

जयन्त ने आज भी मजदूरी की। शाम को उसको दो रुपये मिलें। उसने फिर लिये एक रुपए के खिलौने और एक की मिटाइयाँ। जब वह पहुँचा तो उसकी माटी की गुड़िया राह देख रही थी। जयन्त जाते-ही बोला—"लो सरोज ये खिलौनें मुन्ने के लिए हैं। कुछ थोड़े-से टाँफी और बिस्कुट ले आया हूँ और जानती हो, तुम्हारे लिए एक चीज लाया हूँ—वही रेबड़ियाँ। तुम्हें बहुत अच्छी लगती हैं न।"

"रोज-रोज मुन्ने के लिए खिलौने न लाया करो जयन्त। आखिर वे (अशोक) देखेंगे, तो पूछेंगे जरूर और मेरा भी ख्याल तुम रखा करो। मैं तो पराई हो गई हूँ न। बैठो, अभी खाना बनाती हूँ। देर नहीं लगेगी। तुम अब घर बसा लो जयन्त। जिन्दगी अकेले पार नहीं होती।"

अब जयन्त तनिक मुस्कुराया। उपेक्षापूर्वक बोला—"घर बसा था। उस घर में माटी की गुड़िया आयी थी। उसकी दीवालें सोने की हो गईं। उसकी छत स्वर्ग को छूने लगी। लेकिन वज्रपात हो गया सरोज। माटी की गुड़िया सोने की हो गई और मेरा घर उजड़ गया। अब मैं दूसरा कदम नहीं

उठाऊँगा। मैं ब्याह नहीं करूँगा। मैं जिन्दगी में अकेला ही रहूँगा। कोई और बात करो। इन बातों का कोई मतलब नहीं।"

सरोज सुनकर चुप रह गई। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया। स्टोव जला। उस पर एक सब्जी छौंक दी गई। बुरादे की अंगीठी पर भात चढ़ा। और चूल्हे पर डाल दी गई दाल। ऐसे-ही कोयले की अंगीठी पर भात चढ़ा। फिर आटा गूँधते-गूँधते बोली—"तो तुम बहुत चाहते हो अपनी माटी की गुड़िया को; लेकिन गुड़िया तुम्हें बिल्कुल नहीं चाहती। वह तुमसे नफरत करती है।"

"ओह नफरत! उसी नफरत को तो प्यार कहते हैं पगली।" यह कहने के साथ जयन्त हँस पड़ा और सरोज भी खिलखिलाने लगी। खेलते-खेलते मुन्ना आया। वह जयन्त की गोद में बैठ गया। तब बजे थे रात के आठ और एक काली छाया आकर बाहर चौखट पर रुक गई थी।

अशोक को दफ्तर में चैन नहीं पड़ी। समय उससे काटे नहीं कट रहा था। उसने आज कोई भी काम नहीं किया, हाथ पर हाथ रखे बैठा रहा। सात बजे वह उठकर चल दिया कि जयन्त आज भी आया होगा। आज भी उसे खाना खिलायेगी। दोनों बातें कर रहे होंगे। चलूँ मैं जल्दी से।

सो इस तरह अशोक आकर खड़ा हो गया था बाहर चौखट पर किवाड़ों की ओट में। उसने सुनी दोनों की खिल-खिलाहट। उसके तनबदन में आग लग गई।

खाना बना, जयन्त ने खाया। मुन्ना सो गया था। अशोक जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। जब जयन्त विदा हुआ, तो वह अन्दर आया। उसने कुछ भी नहीं कहा। चुपचाप खाने बैठ गया।

और फिर इसके बाद जयन्त रोज आता रहा। वह मजदूरी करता, शाम को जो पैसे पाता, सब खर्च कर देता सरोज तथा उसके बच्चे पर। अशोक दोनों की गतिविधि नित्य परखता। वह उबल-उबलकर रह जाता, लेकिन कहता कुछ नहीं। वह अपना मन्तव्य प्रकट नहीं करता।

सरोज सर्वथा अनभिज्ञ थी अशोक की ओर से। अशोक अपने मन में

बहुत चिन्तित था, बहुत व्याकुल और जयन्त सोच रहा था। कुछ और ही कि, मैं जो कुछ भी कमाऊँगा वह सब सरोज के बच्चे के लिये, मुन्ने के लिये। मैं उसे बड़ा आदमी बनाऊँगा। अशोक तो सिर्फ हेडक्लर्क है। अगर मैं जिन्दा रहा, तो अपने मुन्ने को बहुत ऊँचे ओहदे पर पहुँचाऊँगा। पत्नी परायी हो गई। उसने मुझे धर्म-पुत्र दिया। मैं उस पुत्र के लिए अगर जरूरत पड़ी, तो आसमान के तारे भी तोड़ लाऊँगा। यही है प्यार का निर्वाह, यही प्यार की मंजिल, यही है कर्त्तव्य की वेदी, यही है इन्सानियत का दायरा। सरोज सुखी है, यह क्या कम हर्ष की बात है। वह पूर्णतया सम्पन्न है, यह क्या उसका सौभाग्य नहीं! उसकी गोदी में लाल है, क्या यह भारतीय नारी का गौरव नहीं! वह भोली है, नादान माटी की गुड़िया। क्या यह नारी सुलभ सरलता नहीं। वह जिन्दगी का गीत है, एक मधुर रागिनी। क्या वह प्यार की प्रतीक नहीं। क्या यह प्यार की प्रतिमा नहीं। वह नारी नहीं देवी है। वह कहीं पर भी कलुषित नहीं, खरा सोना है। वह जिन्दा है, तूफान नहीं। वह शान्ति है, अशान्ति नहीं। वह सपनों की रानी नहीं, मेरी दुनिया है।

इस तरह सोचता रहता जयन्त। उसे दिन-रात सरोज-ही-सरोज नजर आती। वह घूमने के लिए महत्वकांक्षाएँ करता और कामना करता अपनी माटी की गुड़िया के लिये कल्याण की। वह सारा परिश्रम भूल जाता, जब सरोज के सामने पहुँच जाता। वह जब मुन्ने को गोद में लेता, तो उसका हृदय अपने-आप धड़कने लगता। वह पाता एक स्वर्गीय सुख, जो बिरलों को ही मिलता है और जिस सुख की कल्पना की ही नहीं जा सकती।



रोज आता जयन्त; सरोज उसका जी भर स्वागत करती। अशोक भी नित्य देखता यह दृश्य। वह मन-ही-मन कुढ़ कर रह जाता, जल-भुन जाता। वह सोचता कि दागी फल बेमजा होता है, बेस्वाद। सरोज का चरित्र अच्छा नहीं। उसका लगाव है पुराने प्रेमी से। क्या करूँ, दोनों को गोली मार दूँ। और मैं भी फाँसी पर चढ़ जाऊँ या जयन्त को ही मार डालूँ, सारा किस्सा खत्म हो जाय।

इस तरह सरोज अनभिज्ञ थी—और अशोक के सम्मुख स्थिति स्पष्ट नहीं हो रही थी। परिस्थिति गम्भीर हो रही थी। सरोज सोचती कि मैं सुखी हूँ दो नावों पर पैर रखकर। लेकिन यह उसकी भूल थी। हवा उसके खिलाफ बह रही थी। अशोक उसे छल रहा था उस छलिया की तरह जो न ईश्वर का होता है, न समाज का और न अपने तन का।

आता रहा जयन्त; रोज-ही सरोज उससे प्रेमालाप करती और देखता रहा अशोक भी रोज-रोज का वह मेला। एक दिन ज्वार आया और अशोक ने सोचा। वह सारी रात सोचता रहा कि क्यों न तलाक दे दूँ सरोज को अब वह हमारे मतलब की नहीं रही। मैं एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हूँ। ऊँचे ओहदे पर नौकर हूँ। ब्याह मेरी पोर-पोर का हो जायेगा। अब मैं आवारा और बेकार नहीं। न कुछ पूछना है सुनीता से, न सलाह लेनी है कुमारमाधव से। मुझे कल-ही जाकर अदालत में दरखास्त दे देनी है तलाक की कि मुझे अपनी पत्नी पर सन्देह है इसलिये मैं उससे सम्बन्ध विच्छेद करता हूँ।

इस प्रकार सोचता रहा अशोक और सचमुच उसने जाकर प्रार्थना-पत्र दे दिया न्यायालय में। सरोज अदालत में पेश हुई। तलाक मंजूर हो गई और अशोक ने छोड़ दिया उसी दिन घर। न वह बँगले गया और न घर में रहा।

कुमारमाधव बहुत-ही चिन्तित हुए इस अनहोनी को देख। वे मन ही मन कहने लगे कि आदमी जब पेड़ लगाता है। उसे सींचता है यह सोचकर कि पौधा पेड़ बनेगा, उसमें फूल लगेंगे। फिर आयेंगे फल और पेड़ झूम-झूम उठेगा। मैंने भी सोचा था यही कि अशोक और सरोज दोनों की दुनिया आबाद होगी लेकिन नहीं कुछ का कुछ हो गया। इसे ही कहते हैं भाग्य और इसे ही अनहोनी।

कुमारमाधव सोचते और सोचते-ही चले जाते। उनके दुख का अन्त नहीं होता। वे जब सरोज को देखते तो रो देते। वे अपने मन की व्यथा मन-ही-मन पीते और कहते भगवान से कि तू बड़ा निष्ठुर है। बहुत दिन हुए तब मैंने देखा था एक फिल्म। उसका नाम था 'चाँद'। उसका गीत आज याद आता है कि दो दिलों की यह दुनिया मिलने ही नहीं देती। इन्साफ की कलियों को खिलने ही नहीं देती। दो दिलों को............। क्या यही हो रहा है सरोज के साथ? क्या उसकी जिन्दगी में सुख नहीं? क्या यह माटी की गुड़िया माटी की ही रहेगी। दुनिया तू कितनी निर्दयी है जो सीधे और सरल लोगों के ही गिन-गिनकर थप्पड़ लगाती है। अरे पकड़ उनको, जो धूर्त हैं, दुष्ट हैं, तेरे नाम पर कलंक हैं। तू भूल क्यों जाती है कि सच्चाई ही इन्सान की जिन्दगी है। रहम कर मेरी सरोज पर। यह कितनी भोली है, कितनी नादान! अभी उसके होठों में लार बहती है। वह शरमाती है शिशु की तरह। लजाती है चाँद जैसी। वह सम्भ्रान्त ललना है। उसे दुःख न दे। उसे सुख दे भगवान, मेरी यही विनय है।

और सुनीता सरोज को गले लगा खूब फूट-फूटकर रोती। वह रोते-रोते कहती कि सरोज यह जो कुछ भी हुआ सब मेरे-ही पापों का प्रभाव है। अगर मैं पापिन न होती तो आज को गोद में लाल खेलाती। तुम्हारी आँखों में आँसू हैं और तुम्हें दुखी देख मैं मर जैसी जाती हूँ और मेरा कलेजा जैसे फट जैसा जाता है। मैं जब तक जिन्दा हूँ, तुम्हें फूल समझूँगी सरोज। तुम्हें दुनिया की कोई भी व्यथा छू नहीं सकती। सुनीता अपनी जान दे देगी। दुख न करो सरोज। रोओ मत। मैं तुम्हारे भाग्य को बदल दूँगी, जान की बाजी

लगा दूँगी। आखिर बड़ी बहन होती किसलिये है। तुम्हारे सिर पर साया है। तुम निश्चिन्त रहो।

और जब जयन्त को मालूम हुआ यह, तो वह बच्चों की तरह धीर-अधीर होकर रोया। उसने कहा कि यह बुरा हुआ सरोज। तुम्हारे भविष्य ने तुम्हें गुड़ दिखलाकर ईंट मार दी। अब क्या होगा? मैं जो चाहता नहीं था, वही हुआ। खैर, मैं मनाऊँगा अशोक को। उसके पैरों पर नाक रगड़ूँगा। प्यार के लिये आदमी क्या नहीं करता। वह हँसते-हँसते कुर्बान हो जाता है। सरोज मेरी जिन्दगी! मेरी दुनिया!! अगर तू मिट गई तो, मैं कहीं का नहीं रहूँगा। तू रोयी, मुझे दुख हुआ तो मैं बेमौत मर जाऊँगा। आह पगली! यह क्या हुआ? यह तो बसन्त में पतझड़ आ गया। तुझमें तनिक भी बुद्धि नहीं। तू माटी है माटी। बोल पगली, यह सब कैसे हुआ? क्यों हुआ? इसका कारण क्या है?

उत्तर में सरोज रोते-रोते बोली कि मुझसे कुछ भी न पूँछो जयन्त। मैं कुछ भी नहीं जानती। मुझे जहर ला दो। मैं मर जाऊँगी। मैं जीना नहीं चाहती हूँ। मौत मेरी राह देख रही है।

"तुझसे पहले मुझे मौत आ जाय सरोज। यह सुख मैं देख रहा हूँ। तू जयन्त को ही जहर खिला दे। मत रो, मत रो माटी की गुड़िया। मैं तेरी आँखों में आँसू नहीं तेरे होठों पर हँसी देखना चाहता हूँ।"

यह कह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा जयन्त। सरोज भी रोयी। वह जयन्त के गले से लगने लगी और जयन्त ने भी चाहा कि उसे वक्ष से लगा ले फिर खूब जी भर रो ले। लेकिन दोनों दूर-दूर रहे। उन्होंने एक दूसरे को नहीं हुआ। दोनों रोते रहे, सिसकते रहे और पास-पास होते हुए भी एक नहीं हो पाये।

५२



जब अशोक ने घर छोड़ा, तो कुमारमाधव ने सोचा कि कल वह मिल जरूर जायेगा। लेकिन उसकी आशा पर तुषारपात हो गया। अशोक दफ्तर नहीं गया। एक, दो और चार इसी तरह वीत गया सप्ताह। अशोक का कुछ पता नहीं चला कि वह कहाँ गया।

और एक दिन कुमारमाधव अचरज में डूब गये, जब डाक द्वारा उनको अशोक का त्यागपत्र मिला। यह पत्र देहली से छोड़ा गया था। बस फिर क्या था, तलाश होने लगी अशोक की। देहली का कोना-कोना छान डाला गया। सरोज, सुनीता और कुमारमाधव तीनों कार पर बैठते। वे खूब ढूँढते अशोक को। लेकिन उनकी कोशिशें कामयाबी की मंजिल तक नहीं पहुँच पातीं।

ढूँढ़ता जयन्त भी अशोक को। वह निरन्तर उसकी खोज में लगा रहता। वह सोचता और ऊब-ऊब कर लम्बी-लम्बी साँसें लेता कि मेरी सरोज का क्या होगा। वह दो दिन भी हँस नहीं पायी। मौज का मेला उसने घूमा ही नहीं। उसके पैरों की मेंहदी मैली नहीं हुई। उसकी माँग के सिन्दूर ने उसकी लाज नहीं रखी। भाग्य ने उसके चुटकी काटी और वह फिर वही हो गई जैसी थी शराबी बाप की बेटी। आह सरोज! मैं तुम्हें सुखी न कर सका, तो मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं तुम्हारे लिये ही जीवित हूँ वरना कब का मर चुका होता।

ऐसे-ही दिन-रात सोचा करता जयन्त। लेकिन उस सोचने का अर्थ कुछ भी नहीं निकलता। वह जब आता तो सरोज को रोते ही पाता।

एक दिन जयन्त गया कुमारमाधव के बँगले। वह सुनीता दम्पत्ति से मिला। उसने सरोज की समस्या उनके सम्मुख रखी और कहा कि अशोक बम्बई में रह आया है। उसे बम्बई की हवा लगी है। मेरा मन कहता है कि वह बम्बई ही गया है। क्यों न चला जाऊँ मैं और उसे खोज लाऊँ।

इस पर कुमारमाधव धीरे से बोले—"पागल हुए हो जयन्त। बम्बई कितना बड़ा शहर है। वहाँ तुम अशोक को कहाँ ढूंढ़ोगे। वह जानता था कि देहली में रहने पर मुझ पर दबाव पड़ेगा। मुझे सरोज को स्वीकार करना पड़ेगा। इसीलिये तो चला गया, वैसे कहीं नहीं जाता।

जयन्त पर नयी-ही धुन सवार थी कि वह बम्बई जायगा और वह अशोक को ढूँढ़कर ही रहेगा। इसीलिये वह लगातार अपनी ही कहता रहा कि मैं बम्बई जाऊँगा। चाहे जितना बड़ा शहर हो, मैं तो उसे ढूँढ़ निकालूँगा। मैं भूख प्यास छोड़कर उसका पता करूँगा और मिलेगा वह कहीं न कहीं अवश्य। मेरी आत्मा गवाही देती है।

इस तरह कुमारमाधव और सुनीता के सम्मुख जयन्त ने अपने तर्क पेश किये। सुना सरोज ने भी। वह सोचने लगी कि जयन्त के मनाने से अशोक आ जायगा, यह असम्भव है। जयन्त जितना सरल है उतना ही गम्भीर।

सरल आदमी को चाहे नाक पकड़ कर जोतो, चाहे कान पकड़ और गम्भीर आदमी तो एक साँप होता है, साँप शराफत का। वह अपना मन्त्र नहीं देता इसीलिए उससे कोई भी आशा रखना व्यर्थ है।

और सुनीता सोचती कि क्या हर्ज है अगर जयन्त बम्बई चला जाय। सौ-पचास रुपये का खर्च ही सही। उसे अवश्य जाना चाहिये, यह जरूरी है।

और कुमारमाधव, वे अत्यधिक चिन्तित थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वे जयन्त को लक्ष्य कर धीरे से बोले—"ठीक है तुम जा सकते हो। लेकिन सबसे पहले जाकर हमारे मिल के डिपार्टमेंट में पता करना। रुपये जितने चाहियें ले जाओ। सब मेरी सरोज पर निछावर है। जाओ जयन्त, तुम चले ही जाओ। दिल को कुछ तसल्ली मिलेगी।"

जयन्त तैयार हो गया जाने के लिए। सुनीता ने कुछ आवश्यक कपड़े एक अटैची में रख दिये और कुमारमाधव खरीद लाये टिकट। चलते समय उन्होंने सौ-सौ के तीन नोट दिये। वे बोले—"देखो संकोच न करना जयन्त अगर रुपयों की जरूरत पड़े तो और मँगवा लेना। अशोक का पता लगते ही

मुझे तार देना। मैं आऊँगा और उसे ले आऊँगा। वह आयेगा कैसे नहीं मेरे सामने तो बात करे।

इस तरह कुमारमाधव राजी हो गये। सुनीता भी सहमत थी। सरोज के पास केवल आँसू थे और कुछ नहीं। वह रोती रही, जयन्त का बिस्तर बँधा। कुमारमाधव उसे स्टेशन तक पहुँचाने गये। वे जब लौटकर आये तो उन्होंने दीर्घोच्छ्वास ली। सुनीता आकाश की तरफ आँखें उठाकर देखने लगी और सरोज सोचने लगी कि जयन्त भी एक आदमी है। उसका कलेजा हाथ भर का है। उसे भी गुस्सा आया था एक दिन, लेकिन उस पर काबू पा गया। यह अशोक कैसा, जिसमें इन्सानियत नहीं। शायद उसने मेरी और जयन्त की बातें सुन ली है तभी यह हुआ। वह मुझसे तो कुछ कहता, कुछ पूँछता। उसे धोखा हुआ है, जिसकी असलियत कुछ भी नहीं। जब आदमी धोखे के भ्रमजाल में फँस जाता है, तो उसकी गति ऐसी हो जाती है। वह अपनी आँखें फोड़ लेता है और कान बहरे कर लेता है। देखने गया है जयन्त। क्या होता है ? अशोक मिलेगा भी तो क्या उसके साथ आ जायेगा ? मेरी समझ में नहीं आता।

इस तरह अहर्निश सोचती रहती सरोज। उसे शान्ति एक क्षण के लिये भी नहीं मिलती। उसमें एक घुटन होती भीतर ही भीतर ऐसी, जिसे गहरा दुख कहा जाता है और सदमा और सदमा जब आदमी पर सवार हो जाता है, तो वह पागल से भी गया-बीता कहलाता है।

५३



बम्बई जयन्त के लिये नयी नगरी थी। उसके आगे देहली पानी भरती थी। सात-सात मंजिल की उच्च अट्टालिकायें। सड़कें ऐसी जैसे शीशा।

उसमें अपना मुंह देख लो। ट्राम दो मंजिलों की हर पाँच मिनट बाद अपने स्टाप पर मिलतीं। यात्रियों का 'क्यू' लगा रहता। बसें भी डबल स्टोरी। दोनों मंजिलों में मुसाफिर बैठते। वे भी मिलतीं अपने नियत स्थान पर हर पाँच मिनट बाद। यात्रियों की लाइन लगी रहती। कन्डेक्टर उतने ही टिकट बाँटता जितनी बस में जगह होती। इसके अलावा सबसे बड़ी खूबी यह बम्बई की कि वहाँ बिजली की रेलें चलतीं, दादर से शाँताक्रुज, बिलापारला, अँधेरी, कल्याण और भायखला। ऐसे ही शहर में एक मुहल्ले के दूसरे मुहल्ले जाने के लिये विविध रेलों का जाल बिछा था। स्टेशन इतने थे जिनकी कि गणना नहीं। नगर इतना समृद्धि कि जिसकी मिशाल नहीं। सवेरे से उठकर साँझ तक बम्बई घूमे और तीस दिन तक घूमता रहे; लेकिन फिर भी बम्बई बड़ी ही बनी रहेगी। यही तो वह नगर है जो संसार के समृद्धिशाली नगरों से टक्कर लेता है। लन्दन में वह रुग्राब नहीं जो बम्बई के मोती का पानी बना है। बर्लिन की वह साख नहीं, जो बम्बई के वैभव में है। और टोकियो जो जापान की राजधानी है, उससे भी आगे है बम्बई क्योंकि यहाँ भूकम्प नहीं आते। मास्को में हवा के साथ बर्फ की फुहार पड़ती है। जबकि बम्बई सदा सुहागिन रहती है। यहाँ सदाबहार रहती है। पैरिस में प्लास्टिक की सड़कें भले ही हों; किन्तु बम्बई की चौड़ी सड़कों के आगे वे शरमाती हैं। यही एक नगर है। यही भारत की जान जिसके आगे राजधानी देहली छोटी है और कलकत्ता एक पुराना शहर। बम्बई में जाकर आँखें खुल जाती हैं। स्वर्ग ही स्वर्ग नजर आता है।

यह सब देखा जयन्त ने। वह चकाचौंध में पड़ गया। वह भूल गया अपना ध्येय। बिसर गई उसके तन की सुधि भी और उसके मन ने स्वयं दाद दी कि वाकई बम्बई देखने लायक है। तो इतने बड़े शहर में जहाँ अपार जन समुद्र उमड़ रहा है मैं कहाँ ढूंढू अशोक को। यह शहर नहीं, यह तो पूरा हिन्दुस्तान है। सुना है गेट-वे-आफ इण्डिया का नाम। जहाँ पानी वाले जहाज चलते हैं जहाँ बन्दरगाह है। क्या वहाँ होगा अशोक। मैं कहाँ जाऊँ? यहाँ के जिन्दा और मुर्दा अजायबघर दोनों एक में ही हैं जिसे

रानीबाग कहते हैं जो मीलों की गिर्द में है । वहाँ क्या होगा वह । ऐसे-ही जुहूँ और चौपाटी में शायद-ही मिले । खैर फिर भी ढूंढना तो है ही । मैं चप्पा-चप्पा छानूंगा ।

जयन्त पैदल-ही दिन भर सड़कें नापता । वह चला जाता, किसी से नहीं पूंछता । वह भटकता रहता; लेकिन फिर भी नहीं थकता । वह रात को यह सोचकर सोता कि अशोक जरूर बम्बई ही आया है । मैं उसका पता करके ही रहूँगा । वह मिलेगा कैसे नहीं । कल का दिन कामयाब रहेगा । मेरी मंजिल फतेह होगी । मैं अशोक को पाऊँगा और उसे अपने साथ दिल्ली ले जाऊंगा ।

किन्तु मनुष्य जितने सुन्दर सपने देखता है, जितनी बढ़िया-बढ़िया कल्पनायें करता है, होता है उनके विपरीत । उसे कुछ नहीं मिलता बल्कि परिस्थितियों के बीच गुजरना पड़ता है । वह जिन्दगी को चाँदनी रात समझता है, इसीलिये तो उसके भाग्य की किरण कुहासे से ढक जाती हैं ।

जयन्त असफलता के हाथों बिका; निराशा ने उसका शिकार किया और समस्याओं ने कहा धुत्त यह काम तेरे बस का नहीं । तू जा, लौट जा । तेरे-ही कारण तो यह सब कुछ हुआ । विष की गाँठ तू है । जा चला जा । यह बम्बई है । यहाँ लाखों मिटते हैं तब एक बनता है ।

सो इस तरह चला आया जयन्त । वह चाँदनी चौक के बृहत स्टेशन पर उतरा । फिर जाकर खड़ा हुआ कुमारमाधव के पास जहाँ सरोज बुझी हुई सी बैठी थी । जब आदमी विजय का डंका बजाकर आता है या पताका लहराता है, तो उसके पैर फूल से पड़ते, उसके दाँत अनारदाने बन जाते । उसके होठ बन्द नहीं होते, हँसी के मिस खुले-ही रहते और जब आदमी लौटता है निराश, तो उसका चेहरा जिन्दा नहीं मुर्दा हो जाता है ।

रोने लगी सरोज जयन्त का मुँह देखकर । कुमारमाधव भी दुखी हो गये । सुनीता पूंछने आई थी कि क्या हुआ । लेकिन उसके भी आँसू आ गये जब उसने परिस्थिति को पहचाना ।

जयन्त और कुमारमाधव की बातें हुईं जिसका निष्कर्ष सरोज ने यह

निकाला कि अशोक बम्बई में नहीं, कहीं और चला गया है। अब वह मिलेगा नहीं। मेरी जिन्दगी अकार्थ जायेगी।

और कुमारमाधव इस तथ्य पर पहुँचे कि अशोक भ्रम का शिकार हो गया है। जब भ्रम आदमी में समा जाता है, तो वह अपना विवेक भूल जाता है। भ्रम न हो, आदमी भ्रमर जाल में न पढ़े। तो मायाजाल की संज्ञा कैसे सार्थक हो। हर क्षण एक भ्रम है, हर घड़ी एक धोखा। हर जिन्दगी फानी है और हर इन्सान एक कहानी। दुनिया यही कहती चली आई है और कहती रहेगी जब तक वह जियेगी।

५४



अशोक ने यह तय कर लिया था कि अब उसे देहली में नहीं रहना है। इसीलिए तो चला आया बम्बई। अपने आफिस में काम करने लगा। वहाँ उसने सबको हिदायत कर दी थी कि मेरा किसी को पता न चले कि मैं यहाँ हूँ। इसलिए तो जयन्त दफ्तर के अन्दर घुसने न पाया, बाहर से ही लौट आया।

अशोक सरोज को भूल चुका था, साथ ही कुमारमाधव को भी। वह अतीत के चित्र छोड़ वर्तमान से नाता जोड़ रहा था। एक दिन पड़ा आवश्यक काम। उसे बम्बई से देहली जाने की अनुमति मिली। विवश अशोक मेल-ट्रेन पर सवार हो गया। वह देहली के लिए चला देहली मैं आते-आते ट्रेन-दुर्घटना हो गई। एक पैसिन्जर से मेल टकरा गई। डिब्बे पटरी से नीचे उतर गये और दोनों इंजन हो गये ऐसे खड़े जैसे हाथ में हाथ। बोगियाँ पलट गईं; यात्री घायल हुए क्रेन ने आकर इन्जन यथा स्थान किया और उसी ने उठाईं वे बोगियाँ जो जमीन पर चित हो गई थीं। घायलों को इरविन

अस्पताल पहुँचाया गया। उनके नाम समाचार पत्र में छपे। सरोज ने पढ़ा। कुमारमाधव ने भी अखबार देखा और जयन्त भी लाया बाहर से खबर कि अशोक रेल-दुर्घटना में घायल हुआ है। वह इरविन अस्पताल में है।

तभी कुमारमाधव चल दिये सुनीता, सरोज और जयन्त को लेकर। वे अस्पताल पहुँचे। अशोक के हाथों पैरों पर पट्टियाँ बंधी थीं। वह निष्चेष्ट-सा लेटा था। कुमारमाधव के टोकते ही उसमें संज्ञा जागी। वह उनसे बोला और अपने दुख दर्द की कहानी सुनायी। उसने सुनीता को भी नमस्ते किया; किन्तु न देखा सरोज की ओर और न जयन्त की ओर ही उसने रुख किया।

वह दिन ऐसे बीता और दूसरे दिन कुमारमाधव ने अशोक के सम्मुख स्थिति को स्पष्ट किया कि सरोज पर तुम्हारा सन्देह करना निर्मूल है। वह कभी जयन्त की पत्नी थी लेकिन आजकल नहीं। हालाँकि जयन्त उसका भूतपूर्व पति है; लेकिन उसने उसकी देह को नहीं छुआ, ईश्वर साक्षी है। जयन्त तुम्हारी दाहिनी बाँह है अशोक। वह सरोज को बहुत चाहता है। उस पर अविश्वास मत करो। इस आदमी ने अपने को इतना बदल लिया है जैसे नर नारायण बन जाता है।

सुनीता ने भी पति की बातों का समर्थन किया। उसने समझाया अशोक को। वह दृष्टान्त देती हुई बोली—"अशोक सन्देह वह पदार्थ है जो मनुष्य का अनिष्ट ही करता है कभी इष्ट का भागी नहीं बनता। संदेह करके-ही तो आदमी अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता हैं। जयन्त को देवता समझो। वह सरोज को उस दृष्टि से देखता है जैसे बच्चा खिलौना। तुम भूलते हो। तुम्हारे साथ विश्वासघात नहीं; वल्कि सहयोग की वह कड़ी जुड़ रही है जिसे कहते हैं शान्ति और संतोष।"

जब तक कुमारमाधव और सुनीता बैठे रहे दोनों अशोक को समझाते रहे। जयन्त मुँह से कुछ नहीं बोला। वह ऐसे खड़ा रहा जैसे माटी का बुत। जब तीनों अस्पताल से बाहर आये, तो सरोज पीछे-पीछे चली। उसकी आँखों में न आँसू थे। न उसके होठों पर हँसी। वह माटी की गुड़िया नहीं एक बुझी हुई चिनगारी थी। जिसका अस्तित्व नहीं। वह जो कुछ भी थी, एक

ऐसी दोषी नदी जिसमें नीर तो बहता है लेकिन किनारे प्यासे-ही रहते हैं। वह थी दो पतियों की पत्नी। एक को परिस्थितियों ने छीना और दूसरे ने तलाक दे दी। माटी की गुड़िया सोने की रानी बनने चली थी। लेकिन भाग्य ने उसे पत्थर बना दिया। पत्थर होता क्या है—एक बेपीर। जो उपेक्षित है। जिसकी कोई सार्थकता नहीं।

कार देहली गेट पार कर चुकी थी। सुनीता ड्राइव कर रही थी और कुमारमाधव बैठे थे जैसे उन्हें लकवा मार गया हो। जयन्त के माथे पर भी चिन्ता की रेखायें थीं और सरोज संज्ञा शून्य। मानो उसे बिजली का करन्ट मार गया हो।

जब अस्पताल से ये सब लोग विदा हुए तो अशोक सोचने लगा कि जयन्त बहुत चाहता है सरोज को। वह उसका पुराना प्रेमी है। पुराना प्यार मर मर कर जिन्दा होता है। पुरानी प्रीति में हो तो चार चाँद लगते हैं। अच्छा किया मैंने जो उसे तलाक दे दी। यहाँ आई क्यों? मेरे जख्मों पर नमक छिड़कने। औरत किसी की नहीं। वह वासना की छलकती हुई प्याली है। वह पति की नहीं, पुत्र की नहीं, दुनिया की भी नहीं; अपने मन की रानी है। वह जब आँख उठाती है, तो संसार स्वर्ग बन जाता है। उसकी जब भृकुटी चढ़ती है तो किला ढह जाता है। वह हँसे तो फरेब, वह मुस्कराये तो धोखा। वह मीठी वाणी बोले तो समझ लो स्वार्थ की पूर्ति चाहती है। वह कर्कश होकर गरजे, तो त्रिया चरित्र दिखलाती है। वह नाक-भौं सिकोड़े तो कपड़ों की माँग। वह गुमसुम बैठे तो कपट क्रिया की तैयारी। जो नारी देवी है वही दुष्टा। जो अर्धांगिनी बनती है वही व्यभिचारिणी की संज्ञा पाती है। मनुष्य के उतने रूप नहीं जितने नारी के। नारी एक पहेली-ही नहीं; वह एक समस्या है। वह मनुष्य की जिन्दगी भी, मौत भी। वही माँ है, वही प्रेमिका भी। वही दासी है, वही रानी भी। नारी ही सृष्टि की एक अकेली कहानी है।



नित्य अशोक को देखने कुमारमाधव सपरिवार जाते रहे। सरोज और जयन्त से अशोक ने कभी बात नहीं की वह जब दोनों को देखता, तो उसके तन बदन में आग लग जाती। वह सोचता कि इच्छा होती है दोनों के गोली मार दूँ। यह नहीं चल सकता कि जयन्त सरोज को प्यार करे।

सरोज भी रूठी अशोक से। वह उससे नहीं बोलती; क्योंकि उसने उसे तलाक दी थी। पुरुष जब नारी का अधिकार छीनता है, उसे असह्य दुख देता है, तो वह भी हो जाती है उसकी ओर बेपीर और घृणा उसके मन में घर कर लेती है। ऐसे ही हो रही थी सरोज। अशोक उसकी दृष्टि में मनुष्य नहीं, स्वार्थ का एक पुतला था।

कुमारमाधव और सुनीता समझ रहे थे इस तथ्य को कि जयन्त का अस्पताल आना अशोक को बुरा लगता है। प्रतिद्वन्द्वी जब सामने आ जाता है, तो मनुष्य की आँखों में खून उतर आता है। लेकिन संयोग को कैसे टाला जाय। अनहोनी से कैसे बचा जाय। यह भी तो एक समस्या है मनुष्य के सम्मुख; क्योंकि इन्सान जो सोचता है वह होता कभी नहीं। जब दुःख के काले बादल घर की अटारी पर मँडराते हैं तो आँगन रो देता और हर चौखट कहने लगती है कि नाश, महानाश। घर क्या है—वह सूत जिसमें परिवार की ऐसी कड़ियाँ जुड़ती हैं जो संगठन, स्नेह और सहयोग की माला बनाती हैं। यही माला जिसके गले में नहीं होती, वही अकेला कहलाता है, वही एकाकी, वही आवारा।

इस तरह परिस्थितियाँ अलग करवटें ले रही थीं। समस्यायें समाधान की भूखी थीं और ज्वलन्त जिन्दगी कह रही थी कि एक नदी के दो पाट तो होते हैं; लेकिन उनका नीर एक ही होता है।

कुमारमाधव अशोक से कुछ नहीं कहते। सुनीता भी फूँक-फूँक कर कदम रखती। वह स्वस्थ होकर आ चुका था उनके बँगले में; किन्तु सरोज उसके

लिये परायी थी और जयन्त उसका दुश्मन । वह सोचता कि सरोज माटी की गुड़िया नहीं, विष की पुड़िया वह मेरी नहीं जयन्त की है । मैं इसको जिन्दा नहीं रखूंगा; क्योंकि मैंने केवल जिन्दगी में प्यार किया है । जब फूल एक होता है और काँटे दो, तभी संघर्ष होता है । न होती जयन्त की दासी पुत्री संयोगिता, न पृथ्वीराज चौहान को आकर कैद करता मुहम्मद गौरी । औरत जहाँ एक ओर माया है, एक ओर लक्ष्मी, वहाँ वह विनाश की सृष्टि है । अगर जयचन्द और पृथ्वीराज भाई-भाई बन कर रहते, तो देश मुसलमानों के हाथ कभी नहीं जाता । औरत की निगाह बदली तो समझ लो कि नाश हो गया और उसकी आँखों में शर्म आई तो समझ लो घर स्वर्ग बन गया । खैर कुछ भी हो या जयन्त रहेगा या मैं । मैं सरोज को मौत के घाट उतार दूंगा, सोचा मैंने यही है ।

इस तरह सोचता रहता अशोक; किन्तु उसका निष्कर्ष उसे तथ्य तक पहुँचने नहीं देता ।

समय चल रहा था अपनी नपी-तुली चाल । परिस्थितियाँ बेजोड़ थीं । उनका कहना था कि स्याह करूँ या सफेद इन्सान कुछ नहीं, वह तो माटी का खिलौना है । इन्सान एक माया है । समय एक धन । परिस्थितियाँ कसौटी हैं । समस्यायें निष्कर्ष । जिन्दगी इन्हीं गुत्थियों के इर्द-गिर्द तो घूमती है और घूमता है मनुष्य भी जब वह अपना पराया भूल जाता है ।

अशोक का क्रोध दिन-प्रतिदिन उग्र होता जा रहा था । उस क्रोध के अलख में आग जल चुकी थी । वह चिनगारी ही नहीं शोला बन चुकी थी । और शोला कह रहा था कि मैं चाट जाऊँगा शबनम सरोज को । कैसी है यह सरोज जो जयन्त को अब भी प्यार करती है । माना कि परिस्थितियों ने मोड़ लिया । अन्जान में दूसरा ब्याह हो गया, तो इसका मतलब यह नहीं कि पुरानी ढपली का राग अब भी चलता रहे । जो व्यक्ति अपने सम्पर्क से दूर हो जाता है उससे फिर लगाव कैसा ? प्यार कैसा ? जो अपने उत्तर-दायित्व का पालन नहीं कर पाता, वह इन्सान कैसा, मर्द कैसा ? फिर क्या है जयन्त ? सरोज उसकी पूजा क्यों करती है ? काश ! यह जयन्त मेरी दुनिया

में न आता, तो मेरे हरे-भरे संसार में आग नहीं लगती और न बुझ जाता मेरी आशा का दिया। आह जयन्त! आह सरोज!! तुम दोनों मेरे लिए एक समस्या बन गए।

इस भाँति अशोक के अन्तर्द्वन्द्व का अन्त ही नहीं होता वह जितना सोचता, उतना ही उलझ जाता। वह अन्तर से सरोज को क्षमा कर देना चाहता था; लेकिन प्रतिक्रियावादी भावनायें उसमें समावेश कर रही थीं। परिशोध जागा; जलन ने भी अँगड़ाई ली और कहा ईर्ष्या ने हाथ फटकार कि अशोक तुम उस माटी की गुड़िया को ही माटी में मिला दो। बस, जयन्त हाथ मलकर रह जाएगा द्वेष उसके कन्धे हिलाता। वह कहता कि सरकिये और उकसाती उसे अपनी हार। वह कहती कि विजय की माला शान्ति के हाथों में है। चाहे तुम पहन लो, चाहे जयन्त को दे दो।

५६



सरोज ने जब परिस्थितियों का रंग बदलता हुआ देखा, तो अपने मकान में चली गई। जयन्त उसकी सुरक्षा के लिये दिन रात नियुक्त रहता। अशोक को इन सब बातों का आभास था वह भीतर-ही-भीतर जला-भुना करता, कुढ़ता रहता। जो मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु होती है यदि वह उसे नहीं मिलती, तो वह उसे नष्ट कर देता है। बच्चा अपना खिलौना दूसरे को नहीं देता वह उस पर अपना अधिकार समझता है। पुरुष जब दूसरी पत्नी ले आता है, तो द्वितीया के सम्मुख पहली संतोष करती है, किन्तु जब भूलवश स्त्री दूसरा अभिभावक ढूँढ़ लेती है, तो पहले पति में क्रोध की लपटें उठने लगती हैं। फिर जब आता है सामांजश तो प्रथम पति उसे यह कह कर क्षमा कर देता है कि भूल उसकी नहीं मेरी थी। वह शाद रहे, आबाद रहे। लेकिन

दूसरा पति उसे क्षमा नहीं करता। वह उसकी जान का ग्राहक बन जाता है।

ठीक ऐसी-ही स्थिति हो रही थी अशोक की। वह अपने में उतावला हो रहा था, अपने में उदीप्त। उसका इन्सान भूखा शेर हो रहा था। उसका मन जैसे पागल। उसकी परिस्थितियाँ उसका कान पकड़ रही थीं। उसकी भावनायें उसे झकझोर रही थीं। वह सरोज के खून का प्यासा था। वह उसकी वलि देना चाहता था। तभी तो जागा उसमें ऐसा विचार कि मैं कुमारमाधव की पिस्तौल ले जाऊँ और सरोज को सोते में ही मौत के घाट उतार दूँ। नानावती हत्याकांड का जीता जागता सबूत दुनिया के सामने पेश कर दूँ। नहीं रह सकतीं एक म्यान में दो तलवारें। तलाक एक झूठा-मूठा बहाना है। भला कसक कभी मिटती है! वही तो संघर्ष में बदल जाती है। पाँडवों के बदले अगर द्रोपदी कौरवों को मिली होती, उसका प्रिय पति अर्जुन नहीं दुर्योधन होता, तो क्यों होता महाभारत और अठारह अक्षौहिणी सेना कट जाती। अर्जुन कर्ण जैसे वीर-विज्ञान-वेत्ता चले गये। भीष्मपितामह जैसे युगदर्शी लोग अस्त हो गये। विश्व का अद्वितीय पुरुष द्रोणाचार्य साधारण सी मौत का अधिकारी बना। भीम और दुर्योधन जैसे गदाधारी, महाबली आपस में ही लड़ मरे। द्रोणाचार्य, अश्वस्थामा, ये रत्न हमसे छिन गये। नारी अगर संसार बसाती है, तो वही प्रलय में अपना चमत्कार दिखलाती है।

चाँदनी रात में हवा का आँचल फर-फर हो रहा था। ज्योत्सना हँस रही थी मुँह खोल। आज उसने चाँदी के जूते पहने थे। जमुना के किनारे श्वेत बालू की वेदी पर वह भ्रमण कर रही थी और कह रही थी जमुना से कि तुम युगों पुरानी हो। मैंने भी सदियाँ देखी हैं। आओ आज हम रास खेलें कृष्ण कन्हैया की तरह। तुम क्यों नहीं बुला लेती उसी कान्हा को? तुम्हारे सारे दुख दूर हो जायँ।

जमुना शान्त थी; वह मुस्करा दी। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया। और चन्द्रका चाँदी की देह धरे रुपहली चादर ओढ़ उसके किनारे-किनारे टहलती रही। ऊपर से चाँद उसे देख-देख इतराता रहा। आसमान भी था गर्वित। उसकी नीली देह में से चाँदी के रोम खिले थे, जो फूल जैसे हँस रहे थे।

वह सितारों की दुनिया में हो रहा था और धरती भी रही थी खूब हँस । उसके दाँत ही दूधिया नहीं, सारी देह गोरी हो गई थी । सरोज जब सोयी, तो जयन्त ने मुन्ने को अपने पास लिटा लिया ; वह सो गई; किन्तु जयन्त जागता रहा । वह सोचता रहा अपने नन्हें-मुन्ने के प्रति कि एक दिन वह आयेगा जब मेरा यह बच्चा जवान होगा । मेरा मुन्ना युवक बनेगा । मेरे मुन्ने का ब्याह होगा और हाँ, यह बच्चा ही बाप बनेगा । यह क्या कम सुख की अनुभूति होगी ? मैं एड़ी से लेकर चोटी तक का जोर लगा दूँगा और अपने मुन्ने को बड़ा आदमी बनाऊँगा । कितना खुश होता है बाप जब उसका लड़का तरक्की करता है । अमीरी की गोद तो बच्चे के भविष्य पर कुल्हाड़ी मारती है । मुझे नहीं चाहिये अमीरी । वह मनुष्य के जीने की सबसे बड़ी सजा है । गरीबी वह धन है जिसमें सन्तोष वास करता है ।

इस तरह सोच रहा था जयन्त और रात की रंगत निखर कर अब ढलने पर आ गई थी । चाँद चाँदनी से धुल गया था । आकाश नीला-ही नहीं, सुथरा हो चला था । वैसे ही हुई 'ठायँ' की आवाज और एक गोली आकर जयन्त की बाँह में लगी । सरोज जाग गई, मुन्ना भी रोने लगा और आततायी भागा ऐसे जैसे चोर सिर पर पैर रख कर ।

सरोज ने देखा कि जयन्त की बाँह से खून बह रहा है । वह चीखी-चिलाई । पुलिस-पुलिस । बाहर दरवाजे पर गश्त के सिपाही की सीटियाँ बज रही थीं । उनके बूटों की चर-मर हो रही थी । आततायी घर से बाहर नहीं जा सका उसके हाथ में पिस्तौल थर-थर काँप रही थी जयन्त हो गया था बेहोश । गोली उसकी बाँह में घुस गई थी । सरोज अब भी चीख रही थी । बच्चा जार बेजार रो रहा था । जिस आँगन में चाँदनी छिटकी थी फूल की तरह उसी चाँदनी की खून माँग भर रहा था । धरती प्यासी थी वह खून पी रही थी और बाहर सीटियाँ बज रही थीं; क्योंकि पुलिस वालों ने पिस्तौल की आवाज सुन ली थी ।



कुण्डी खटकी ; किवाड़ों पर दस्तक हुई। सरोज ने निःसंकोच किवाड़ खोल दिये। वह जानती थी कि पुलिस आ गई। अब आततायी ने भागने का प्रयत्न किया, जो पहले से छिपा हुआ था। लेकिन वैसे-ही पुलिस ने लिया उसे पकड़। उसके हाथ में पिस्तौल थी। सरोज ने पहचाना वह अशोक था।

पुलिस अशोक को लेकर चली गई। सरोज ने संतोष की साँस ली। बात पहुँची कुमारमाधव तक। दम्पति दौड़े आये। वैसे ही बुलाया गया कुमार-माधव का फैमिली डाक्टर। उसने आकर जयन्त की बाँह से गोली निकाली। वह कुछ स्वस्थ हुआ और शान्तिपूर्वक चुपचाप लेटा रहा। फिर वह गया दूसरे दिन जेल अशोक से मिलने। उसने कहा—"तुम सरोज को अंगीकार कर लो वह निर्दोष है। वह मेरी प्रियसी नहीं, अब प्रियपात्री है।"

किन्तु अशोक अपनी विचारधारा न बदल सका। वह बोला—"जूठी पत्तल कोई नहीं चाटता जयन्त। औरत जब एक की नहीं होती, तो हरजाई कहलाती हैं। सरोज पर से मेरा विश्वास उतर गया। मैं उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता। दोष तुम्हारा नहीं, गलती उसकी है।"

तब रोने लगा जयन्त और रोते-रोते अशोक से बोला—"तुम भूलते हो भाई। सरोज माटी की गुड़िया है। बिल्कुल माटी की पुतली। उसमें चालाकी नहीं, एक अजीब भोलापन है। जिसने उस पर विश्वास न किया समझ लो वही दुनिया को धोखा देगा। जिसने उसे गलत समझा, समझ लो वही कपटी और क्रूर है। उस पर क्रोध न करो अशोक। तुमसे मेरी यही मिन्नत है।"

"खूब ! बहुत खूब ! ! क्रोध न करूँ, तो क्या उसकी आरती उतारूँ। वह तुम्हारे लिए सब कुछ है ; लेकिन मैं समझता हूँ नाचीज। जब औरत का प्यार बँट जाता है। वह अपनी श्रेणियाँ बना लेता है तो उसकी जिन्दगी पर पड़ जाता है पाला। या तो उसकी हत्या कर दी जाती है या वह स्वयं आत्म-घात कर लेती है।"

इस तरह भरसक प्रयत्न किया जयन्त ने लेकिन अशोक के विचार नहीं बदले। जिसमें संदेह घर कर लेता है, वह उसी का हो जाता है। संदेह-ही तो सर्वनाश की संज्ञा है। 'विनाश काले विपरीति बुद्धि' यही पुरानी कहावत है जो अब तक चरितार्थ होती चली आ रही है। अशोक पर सनक सवार थी। वह सरोज के खून का प्यासा था, उसने एक भी नहीं सुनी जयन्त की। वह चुपचाप जेल से लौट आया।

रास्ते में घर तक सोचता गया जयन्त कि सरोज की जिन्दगी दलदल में फँस गई है। अशोक उसे बहुत दुख देगा, यह मैं जानता हूँ। जो प्यार का लगाव होता है, वही प्रेम का प्रतीक बनता है और जो होता है उन्माद और जवानी का नशा, वह सिर्फ केलिक्रीड़ा चाहता है। इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं। सरोज औरत थी औरत सिर्फ! अशोक ने यही समझकर उससे खेला। क्षमा के बदले वही उसकी जान का घातक है। कैसा वह पति जिसने अपनी पत्नी पर गोली चलायी।

राह तय हो रही थी। जयन्त के मन में विचार दौड़-भाग कर रहे थे। सरोज को लेकर उसे जितना छोह था अशोक के प्रति उतना-ही रोष। इन्सान के विश्वास को जब चोट लगती है तभी तो वह तिलमिला जाता है। यद्यपि जयन्त आपे से बाहर हो रहा था; लेकिन फिर भी वह संतुलित था। उसकी सीमायें थीं मर्यादाबद्ध और कर्त्तव्य ने तो जैसे उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दी थीं। उसने तय कर लिया कि वह सरोज को कुछ भी नहीं बतायेगा। यही कहेगा कि तुम्हारे लिए रोता था अशोक और पूँछता था कि सरोज कैसी है।

और अशोक वह दूसरी दुनिया देख रहा था जिसमें सरोज अपराधिनी थी और गुनाहगार जयन्त। वह अपने प्रति खीझ रहा था कि उसका दुर्भाग्य। अफसोस जो ऐसी पत्नी मिली। तलाक दे दो, फिर भी क्रोध काबू नहीं पाता। मैंने अन्त कर देना चाहा था सरोज का। लेकिन उसकी जिन्दगी जीत गई। कहा तो जाता है कि पापी मनुष्य जल्दी मरता नहीं। उसकी उमर लम्बी हो जाती है।

अशोक अपने में एक आग लिये बैठा था, जो उसका ही घर नहीं, सारा

संसार जला डालना चाहती थी। उस आग में चिनगारियाँ नहीं शोले थे, वे भी खूब दहकते हुए। वह मौत-जिन्दगी से लड़ रहा था। करता क्या विवश था, जो जेल में बन्द था।

बलवान जब कैद में जाता है, तो वह लानत खाता है स्वयं अपने पर। ऐसे-ही खीज रहा था अशोक कि सरोज मर जाती और मुझे फाँसी की सजा होती। यह तो खिलवाड़ हुआ। दूसरा मतलब कुछ भी नहीं। याद आती है उर्दू की वह शेर जो किसी पुर दर्द ने कही थी—"न खुदा ही मिला न विशाले सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए।"

इस तरह सोचता रहा अशोक जयन्त के जाने के बाद। उसका क्रोध भड़का ही। उसे शान्ति नहीं मिली और जब चित बहुत अस्थिर हो गया, तो उठकर टहने लगा।

५८



अशोक का मुकदमा आरम्भ हो गया। मामला सेशनकोर्ट में चल रहा था। जयन्त साक्षी था। साथ-ही कुमारमाधव भी कि अशोक उस दिन जयन्त के विशेष निमन्त्रण पर सरोज के घर गया था। कुमारमाधव ने उसे सुरक्षा के लिए अपनी पिस्तौल दे दी थी और बड़े आदमियों का शौक भी होता है यह कि बन्दूक या पिस्तौल लेकर चलें। उसी रात डाकुओं का हमला हुआ। अशोक ने उन पर गोली चलाई। डाकू भाग गये। निशाना चूक गया और गोली जयन्त के बाँह में लगी।

इस तरह अशोक कुमारमाधव और जयन्त की साक्षी से एक साथ बच गया। कुमारमाधव अदालत से उसे अपने साथ बंगले लाये। वहाँ वह ग्लानि से भरता रहा, क्षोभ से डरता रहा। किसी तरह उसने वह साँझ विताई और

जब रात भीगी, दूसरा पहर पमान पर आया, तो वह चल दिया बँगले से बाहर एक अनिश्चित दिशा की ओर। मनुष्य एकान्त तभी चाहता है जब उसे कोई दुख होता है। या फिर वह विचाराधीन होता है। या अपने में परेशान। तभी आदमी घर छोड़ता है। तभी वह दूर चला जाता है; क्योंकि उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती।

अशोक गायब हो गया। सरोज और कुमारमाधव की चिन्ता बढ़ी। दोनों ही सोचने लगे अलग-अलग कि कैसे चला गया अशोक। वह कहाँ गया ? सरोज ने सोचा कि अशोक जयन्त के कारण चौंक गया है। इसीलिए उसने मुझे तलाक दी, इसीलिए मुझ पर नाराज हुआ और अब चला गया हम दोनों से दूर। उसे कैसे समझाऊँ, कैसे मनाऊँ। जब तनिक भी शक हो जाता है तो आदमी फूँक-फूँक कर कदम रखने लगता है।

और कुमारमाधव, उनकी स्थिति यह थी। वह अपनी उधेड़बुन में व्यस्त थे कि आखिर गया कहाँ अशोक। वह बिना बताये क्यों चला गया। आदमी के अधिकार जब छिन जाते हैं, तो वह अपने में शून्य हो जाता है। अधिकार ही जिन्दगी है, अवलम्ब ही साँसें और विश्वास एक बल है प्रेरणा एक शक्ति। जीवन के श्रोत क्या हैं—मनुष्य की इच्छायें। जिन्दगी क्या है—एक परीक्षा, जिसमें कभी इन्सान पूरा उतरता है कभी अधूरा। हर आदमी अपने हक का दावेदार है। लेकिन समाज की अदालत अदले जहाँगीर जैसी है जहाँ खून के बदले खून और इन्साफ तराजू पर तौलकर किया जाता था।

अशोक लापता हो गया; जयन्त को इसकी चिन्ता बढ़ी। उसने सोचा कि कि वह जरूर गया होगा बम्बई और वहीं मिलेगा। उसने देखा घर में सरोज रो रही है। उसकी आँखें लाल हैं। उसने कुमारमाधव और सुनीता से कुछ भी परामर्श नहीं किया, स्वयं ही निश्चय कर लिया कि वह बम्बई जाएगा और अशोक को ढूँढ कर रहेगा।

जयन्त जिस समय ट्रेन में बैठा, तब वह सोच रहा था कि अशोक मिल गया तो बहुत अच्छा। अगर न मिला तो क्या जवाब आकर दूँगा सरोज को। अवश्य वह बम्बई ही गया है। क्या मैं जाऊँ फिर ? जाऊँ क्या,

जाना ही पड़ेगा। समस्या जब जटिल हो जाती है, तो वह गुत्थी सुलझती नहीं, उलझती और उलझती चली जाती है।

ट्रेन आगे बढ़ रही थी। वह स्टेशन पर स्टेशन छोड़ रही थी और जयन्त की विचारधारा ज्यों की त्यों चल रही थी कि क्या किया था सरोज ने पिछले जन्म में, उसको जो यह सजा मिल रही है। इस देश में नारी की इतनी दुर्गति क्यों होती है ? यह तो बड़े शर्म की बात है। क्या सरोज सुखी नहीं हो सकती ? मेरे ही कारण वह देहली आई। मेरे ही कारण उसने कष्ट झेले। स्त्री होती है पुरुष के अधीन, तभी तो वह उस पर मनमाने अत्याचार करता है। अगर वह सहयोग की भावना लेकर आगे बढ़े, नारी के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चले, तो इसी श्रृष्टि से फूल खिल सकते हैं उन्नति के। गली-गली में सुरभि अपना सौरभ लेकर उतरे। हर इन्सान के होठों पर हँसी हो। हर एक की बाहों में बल। संगठन का मतलब होता है एक अपरिमित शक्ति। जहाँ संगठन नहीं, वहीं तो विनाश की बेल लहलहाती है।

ट्रेन चली जा रही थी। जयन्त उधेड़बुन में व्यस्त था। उसके सोचने का क्रम तब तक नहीं टूटा जब तक वह सो नहीं गया और बम्बई नहीं पहुँचा।

५६



अब बम्बई जयन्त के लिये कोई नयी बात नहीं थी। वह उसकी देखी सुनी हो चुकी थी। वह जानता था कि ऐसी जगहें जहाँ भूले-भटके लोग मिलते हैं। इनमें से एक तो थी चोर बाजार। हीरा बाग, मोती बाग, जुहू और चौपाटी। वह यह भी जानता था कि खाना बदोश लोगों का समुद्र भी

आश्रय बनता है। वे वहाँ जाकर बैठते हैं और शान्ति का अनुभव करते हैं। हो सकता है अशोक वहीं हो। उसे ढूंढ़ना तो है ही इसीलिये मैं बम्बई आया हूँ। पहले भी आया था। लेकिन तब वह यहाँ मौजूद था लेकिन मुझे नहीं मिला और इस बार मैं जल्दी नहीं करूँगा। उसे पूरे जीवट के साथ तलाश करूँगा। वह मिलेगा कैसे नहीं, जायेगा कहाँ।

जब आदमी दृढ़ निश्चय कर लेता है, तो उसका आत्म-बल जाग जाता है। उसकी स्फूर्ति कहने लगती है अपने आप कि कुछ करो, कुछ करो। उसका साहस उसका साथ देता है। उसका संयम उसे राह दिखलाता है और उसकी अनुभूतियाँ कहती हैं तूलिका फेर कि यह उचित है, इसी में गति है। इन्सान जब भलाई करने चलता है तो उसे अनेक रास्ते मिल जाते हैं। उसी तरह जयन्त हो गया था कटिबद्ध कि इस बार वह खाली नहीं लौटेगा। वह अपने साथ लायेगा अशोक को चाहे जहाँ भी मिले।

जयन्त ने गरम तालाब देखा जो लालवाड़ी मोहल्ले में स्थित था। रानी बाग भी उसने खूब ढूंढ़ा। चोर बाजार के चक्कर काटे। समुद्री किनारे उसने खूब देखे; किन्तु उतने बड़े नगर में अशोक सुई की तरह था। वह कैसे मिलता। यह असम्भव था।

तब जयन्त हिम्मत हार कर नहीं लौटा। उसने कोशिशें कीं। वह इधर भटका, उधर भटका। भूखा और प्यासा रहा। लेकिन सार कुछ भी नहीं निकला। अशोक उसे नहीं मिला और अन्त में निराशा ने उसके माथे पर टीका लगा दिया।

जयन्त जब चौपाटी पहुँचा, तो वहाँ उसने एक ठंडी साँस ली। आज उसे बम्बई आये आठ-दस दिन हो चुके थे। कामयाबी दूर रही; वहाँ उसकी झलक तक नहीं मिली। वह बुझा हुआ-सा बैठा था एक अशोक वृक्ष के नीचे वह सोच रहा था भविष्य के प्रति कि आखिर नाव पार कैसे लगेगी। मैं जिस काम के लिये यहाँ आया, वह पूरा नहीं हो सका और न उसकी सम्भा- बना है। क्या करूँ, क्या न करूँ कुछ भी समझ में नहीं आता।

तभी जयन्त ने सुना अशोक का स्वर। चौंक कर सामने देखने लगा

उसने देखा कि अशोक एक जापानी महिला का हाथ पकड़े आगे जा रहा है। दोनों में चुहल हो रही है, दोनों खिलखिला रहे हैं। दोनों ही मदमस्त हैं। उनकी जवानी ज्वार बनकर मचल रही है। वह देखता रहा। फिर बैठा न रह सका। उठ कर खड़ा हुआ। वह लपका अशोक की ओर और जाते ही एक भरपूर थप्पड़ दिया उसके गाल पर। फिर हंस कर बोला—"अपनी औरत छोड़ विजातीय को गले लगाता है, तुझे शरम नहीं आती ?'

अशोक ने जयन्त को देखा तो उसकी आँखों में खून उतर आया। वह हो गया क्रोध से बेकाबू और ईंट का जवाब पत्थर से देता बोला—"तू आ गया। तेरी यह हिम्मत कैसे पड़ी ? तूने मुझ पर हाथ क्यों छोड़ा ? खबर-दार ! जो मेरे किसी काम में भी दखल दिया।"

"मैं दखल दूंगा खूब ! और तुम्हें मनमानी नहीं करने दूंगा। तुम गिर रहे हो अशोक। मुझे तुम्हें ऊँचा उठाना है। यह जापानी औरत तुम्हारी दोस्त है चन्द घन्टों की, चन्द मिनटों की। आदमी काम करता है इज्जत का तभी उसे यश मिलता है और जब वह जूठी पत्तलें चाटने लगता है, तो कुत्ते की श्रेणी में गिना जाता है। तुम·········।

"क्या कहा ? कुत्ता ! मैं कुत्ता हूँ ? आ निबट ले आज। या तू नहीं या मैं नहीं।"

यह कहने के साथ बाज की तरह टूट पड़ा अशोक जयन्त पर। दोनों में हाथा पाई होने लगी। जापानी महिला अलग खड़ी हो गई। लोग तब तक बीच बचाव के लिए दौड़े-दौड़े तब तक अशोक ने जयन्त को उठा कर पटक दिया एक पत्थर पर। उसका सिर फूट गया। उससे खून की धार बह चली।

आश्रय बनता है। वे वहाँ जाकर बैठते हैं और शान्ति का अनुभव करते हैं। हो सकता है अशोक वहीं हो। उसे ढूंढ़ना तो है ही इसीलिये मैं बम्बई आया हूँ। पहले भी आया था। लेकिन तब वह यहाँ मौजूद था लेकिन मुझे नहीं मिला और इस बार मैं जल्दी नहीं करूँगा। उसे पूरे जीवट के साथ तलाश करूँगा। वह मिलेगा कैसे नहीं, जायेगा कहाँ।

जब आदमी दृढ़ निश्चय कर लेता है, तो उसका आत्म-बल जाग जाता है। उसकी स्फूर्ति कहने लगती है अपने आप कि कुछ करो, कुछ करो। उसका साहस उसका साथ देता है। उसका संयम उसे राह दिखलाता है और उसकी अनुभूतियाँ कहती हैं तूलिका फेर कि यह उचित है, इसी में गति है। इन्सान जब भलाई करने चलता है तो उसे अनेक रास्ते मिल जाते हैं। उसी तरह जयन्त हो गया था कटिबद्ध कि इस बार वह खाली नहीं लौटेगा। वह अपने साथ लायेगा अशोक को चाहे जहाँ भी मिले।

जयन्त ने गरम तालाब देखा जो लालवाड़ी मोहल्ले में स्थित था। रानी बाग भी उसने खूब ढूंढ़ा। चोर बाजार के चक्कर काटे। समुद्री किनारे उसने खूब देखे; किन्तु उतने बड़े नगर में अशोक सुई की तरह था। वह कैसे मिलता। यह असम्भव था।

तब जयन्त हिम्मत हार कर नहीं लौटा। उसने कोशिशें कीं। वह इधर भटका, उधर भटका। भूखा और प्यासा रहा। लेकिन सार कुछ भी नहीं निकला। अशोक उसे नहीं मिला और अन्त में निराशा ने उसके माथे पर टीका लगा दिया।

जयन्त जब चौपाटी पहुँचा, तो वहाँ उसने एक ठंडी साँस ली। आज उसे बम्बई आये आठ-दस दिन हो चुके थे। कामयाबी दूर रही; वहाँ उसकी झलक तक नहीं मिली। वह बुझा हुआ-सा बैठा था एक अशोक वृक्ष के नीचे वह सोच रहा था भविष्य के प्रति कि आखिर नाव पार कैसे लगेगी। मैं जिस काम के लिये यहाँ आया, वह पूरा नहीं हो सका और न उसकी सम्भावना है। क्या करूँ, क्या न करूँ कुछ भी समझ में नहीं आता।

तभी जयन्त ने सुना अशोक का स्वर। चौंक कर सामने देखने लगा।

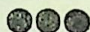
उसने देखा कि अशोक एक जापानी महिला का हाथ पकड़े आगे जा रहा है। दोनों में चुहल हो रही है, दोनों खिलखिला रहे हैं। दोनों ही मदमस्त हैं। उनकी जवानी ज्वार बनकर मचल रही है। वह देखता रहा। फिर बैठा न रह सका। उठ कर खड़ा हुआ। वह लपका अशोक की ओर और जाते ही एक भरपूर थप्पड़ दिया उसके गाल पर। फिर हंस कर बोला—"अपनी औरत छोड़ विजातीय को गले लगाता है, तुझे शरम नहीं आती ?'

अशोक ने जयन्त को देखा तो उसकी आँखों में खून उतर आया। वह हो गया क्रोध से बेकाबू और ईंट का जवाब पत्थर से देता बोला—"तू आ गया। तेरी यह हिम्मत कैसे पड़ी ? तूने मुझ पर हाथ क्यों छोड़ा ? खबरदार ! जो मेरे किसी काम में भी दखल दिया।"

"मैं दखल दूंगा खूब ! और तुम्हें मनमानी नहीं करने दूंगा। तुम गिर रहे हो अशोक। मुझे तुम्हें ऊँचा उठाना है। यह जापानी औरत तुम्हारी दोस्त है चन्द घन्टों की, चन्द मिनटों की। आदमी काम करता है इज्जत का तभी उसे यश मिलता है और जब वह जूठी पत्तलें चाटने लगता है, तो कुत्ते की श्रेणी में गिना जाता है। तुम·········।

"क्या कहा ? कुत्ता ! मैं कुत्ता हूँ ? आ निबट ले आज। या तू नहीं या मैं नहीं।"

यह कहने के साथ बाज की तरह टूट पड़ा अशोक जयन्त पर। दोनों में हाथा पाई होने लगी। जापानी महिला अलग खड़ी हो गई। लोग तब तक बीच बचाव के लिए दौड़े-दौड़े तब तक अशोक ने जयन्त को उठा कर पटक दिया एक पत्थर पर। उसका सिर फूट गया। उससे खून की धार बह चली।



अशोक चला गया; जयन्त जहाँ-का-तहाँ पड़ा रहा। लोगों ने उसे उठाया। उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। उसका मुँह धोया गया। उस पर पानी के छींटे पड़े। देर बाद वह होश में आया। अब रात हो आई थी। यह फिर कहीं नहीं गया। सो गया वहीं चौपाटी की उस जमात में जहाँ खाना बदोश लोग बसेरा लेते हैं।

सवेरे का सूरज जयन्त को समुद्र तट पर निकला। उसने उसे सन्देश दिया कि आगे बढ़ो, हिम्मत मत हारो। हिम्मत ही तो इन्सान की पूँजी है, इसके बिना वह अधूरा है। अशोक मिलेगा, फिर मिलेगा। वह तुम्हारी बात मानेगा। तुम्हें सरोज के लिए उसे खोजना ही होगा, उसे पाना ही होगा। जाओ, अपनी मंजिल तय करो। तुम्हारी राह आसान हो जायेगी।

सो चल दिया जयन्त मन में दृढ़ता भर कर। वह गेट-वे-आफ इण्डिया पहुँचा। वह देर तक खड़ा रहा। आने वाले जहाज चिमनी से धुँआ उगल रहे थे। जो खड़े थे उनकी डेक पर खलासी आपस में बातें कर रहे थे। कहीं पासपोर्ट देखे जा रहे थे। कहीं तस्कर व्यापारियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा हो रही थी। कहीं मुर्गी के अंडे आये थे अमरीका से जो बहुत ही गरुये थे। वे तोले गये। उनके अन्दर प्लास्टिक का खोल निकला और अन्दर सोना। कहीं कोई फ्राँस से मक्खन के डिब्बे चुरा कर लाया था। उसके सामने रेडियो लैम्प की रोशनी फेंकी गई। मक्खन पिघलने लगा। चोर पकड़ा गया। कहीं किसी के थर्मस में बर्फ के नीचे निकले हीरे, जो इंगलैंड से आये थे। जयन्त देखता रहा और सोचता रहा कि आदमी संसार की आँखों में धूल झोंकता है। वह खड़ा रहा सवेरे से साँझ तक। जहाज आये और खड़े रहे। रूस का गेहूँ उतरा लाल गेरू जैसा। अमरीका के गेहूँ में सफेदी थी। मिश्र की कपास में एक चमक थी और अर्जटाइना का गेहूँ था गोल-मटोल। उसने सब देखा, सभी कुछ अनुभव किया। फिर भी खड़ा

रहा कि शायद अशोक यहाँ आयेगा।

जब साँझ-टली और तारों ने अगवानी की चन्दा मामा की तब अशोक जयन्त को दिखलायी दिया। एक चीनी लड़की के साथ। वह मदभरी यौवन की प्याली छलक रही थी। अशोक कह रहा था—"हलो डार्लिंग, आई लव यू, हाऊ ब्यूटीफुल यू आर! वर्ड इज हैवेन एण्ड यू आर ए गाडेस। आई प्रे यू, आई लव यू।"

"ओह! तुम बोलता क्या है। तुम प्यार नहीं करता। तुम हिन्दुस्तानी है। आई लव यू माई डार्लिंग।"

जयन्त ने जब चीनी बाला के ये बोल सुने, तो वह अपने में काफूर हो गया। उसने सफाई बहुत की; लेकिन उसे सह्य नहीं हुआ। पहले उसे क्रोध आया; लेकिन उसने उस पर काबू पाया। फिर वह गिर पड़ा जाकर अशोक के पैरों पर और रो-रोकर उससे सरोज के लिए भीख माँगने लगा।

तभी अशोक ने दी उसके मुँह पर लात। उसकी नाक फूट गई। उससे खून बह निकला। वह चला गया उसे छोड़। तब समुद्र की लहरें शान्त थीं। बन्दरगाह पर अच्छी-खासी चहल-पहल थी। जयन्त की नाक से खून टपक रहा था। वह बेहोश पड़ा था। उसका कोई पुरुषाहाल नहीं था। न कोई हमदर्द। वह नाक दाबे पड़ा रहा। देर हो गई, बहुत देर। जब होश आया तो उसने समुद्र-तट पर जाकर अपना मुँह धोया। तभी उसमें अन्तर्द्वन्द्व मचला कि अशोक को मैं कैसे ले जाऊँगा देहली। वह मेरे बस का नहीं। वह तो तूफान बन रहा है।

जयन्त सोचता रहा। वह समुद्र तट से उठ कर बन्दरगाह पर आया। वहाँ अभी-अभी पुर्तगाल से आकर एक जहाज रुका था। जिस पर से पकड़े गए थे कई तस्कर व्यापारी। कोई स्वीटजर लैण्ड की घड़ियाँ लाया था, कोई सोना और कोई चाँदी। सभी तस्कर व्यापारी पकड़े गये। वे हवालात में बन्द हुये। यह अवैध कार्य अनुचित परिणाम था जो भोगना पड़ा उन गुनाहगारों को जिनको सताया था स्वार्थ ने। जयन्त को यह देख-सुन दुख की सीमा नहीं रही।

६०



अशोक चला गया; जयन्त जहाँ-का-तहाँ पड़ा रहा। लोगों ने उसे उठाया। उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। उसका मुँह धोया गया। उस पर पानी के छींटे पड़े। देर बाद वह होश में आया। अब रात हो आई थी। यह फिर कहीं नहीं गया। सो गया वहीं चौपाटी की उस जमात में जहाँ खाना बदोश लोग बसेरा लेते हैं।

सवेरे का सूरज जयन्त को समुद्र तट पर निकला। उसने उसे सन्देश दिया कि आगे बढ़ो, हिम्मत मत हारो। हिम्मत ही तो इन्सान की पूँजी है, इसके बिना वह अधूरा है। अशोक मिलेगा, फिर मिलेगा। वह तुम्हारी बात मानेगा। तुम्हें सरोज के लिए उसे खोजना ही होगा, उसे पाना ही होगा। जाओ, अपनी मंजिल तय करो। तुम्हारी राह आसान हो जायेगी।

सो चल दिया जयन्त मन में दृढ़ता भर कर। वह गेट-वे-आफ इण्डिया पहुँचा। वह देर तक खड़ा रहा। आने वाले जहाज चिमनी से धुँआ उगल रहे थे। जो खड़े थे उनकी डेक पर खलासी आपस में बातें कर रहे थे। कहीं पासपोर्ट देखे जा रहे थे। कहीं तस्कर व्यापारियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा हो रही थी। कहीं मुर्गी के अंडे आये थे अमरीका से जो बहुत ही गरुये थे। वे तोले गये। उनके अन्दर प्लास्टिक का खोल निकला और अन्दर सोना। कहीं कोई फ्राँस से मक्खन के डिब्बे चुरा कर लाया था। उसके सामने रेडियो लैम्प की रोशनी फेंकी गई। मक्खन पिघलने लगा। चोर पकड़ा गया। कहीं किसी के थर्मस में बर्फ के नीचे निकले हीरे, जो इंगलैंड से आये थे। जयन्त देखता रहा और सोचता रहा कि आदमी संसार की आँखों में धूल झोंकता है। वह खड़ा रहा सवेरे से साँझ तक। जहाज आये और खड़े रहे। रूस का गेहूँ उतरा लाल गेरू जैसा। अमरीका के गेहूँ में सफेदी थी। मिश्र की कपास में एक चमक थी और अर्जंटाइना का गेहूँ था गोल-मटोल। उसने सब देखा, सभी कुछ अनुभव किया। फिर भी खड़ा

रहा कि शायद अशोक यहाँ आयेगा।

जब साँझ-टली और तारों ने अगवानी की चन्दा मामा की तब अशोक जयन्त को दिखलायी दिया। एक चीनी लड़की के साथ। वह मदभरी यौवन की प्याली छलक रही थी। अशोक कह रहा था—"हलो डार्लिंग, आई लव यू, हाऊ ब्यूटीफुल यू आर! वर्ड इज हैवेन एण्ड यू आर ए गाडेस। आई प्रे यू, आई लव यू।"

"ओह! तुम बोलता क्या है। तुम प्यार नहीं करता। तुम हिन्दुस्तानी है। आई लव यू माई डार्लिंग।"

जयन्त ने जब चीनी बाला के ये बोल सुने, तो वह अपने में काफूर हो गया। उसने सफाई बहुत की; लेकिन उसे सह्य नहीं हुआ। पहले उसे क्रोध आया; लेकिन उसने उस पर काबू पाया। फिर वह गिर पड़ा जाकर अशोक के पैरों पर और रो-रोकर उससे सरोज के लिए भीख माँगने लगा।

तभी अशोक ने दी उसके मुँह पर लात। उसकी नाक फूट गई। उससे खून बह निकला। वह चला गया उसे छोड़। तब समुद्र की लहरें शान्त थीं। बन्दरगाह पर अच्छी-खासी चहल-पहल थी। जयन्त की नाक से खून टपक रहा था। वह बेहोश पड़ा था। उसका कोई पुरुषाहाल नहीं था। न कोई हमदर्द। वह नाक दाबे पड़ा रहा। देर हो गई, बहुत देर। जब होश आया तो उसने समुद्र-तट पर जाकर अपना मुँह धोया। तभी उसमें अन्तर्द्वन्द्व मचला कि अशोक को मैं कैसे ले जाऊँगा देहली। वह मेरे बस का नहीं। वह तो तूफान बन रहा है।

जयन्त सोचता रहा। वह समुद्र तट से उठ कर बन्दरगाह पर आया। वहाँ अभी-अभी पुर्तगाल से आकर एक जहाज रुका था। जिस पर से पकड़े गए थे कई तस्कर व्यापारी। कोई स्वीटजर लैण्ड की घड़ियाँ लाया था, कोई सोना और कोई चाँदी। सभी तस्कर व्यापारी पकड़े गये। वे हवालात में बन्द हुये। यह अवैध कार्य अनुचित परिणाम था जो भोगना पड़ा उन गुनाहगारों को जिनको सताया था स्वार्थ ने। जयन्त को यह देख-सुन दुख की सीमा नहीं रही।



जयन्त अब समझ गया कि अशोक दूसरी दुनिया में है। उसे सरोज की परवाह नहीं रह गई। वह शायद ब्याह के सूत्र में भी बँधना नहीं चाहता। तभी तो कभी जापानी युवती, कभी चीनी महिला और कभी कोई, कभी कोई उसके साथ परछायीं जैसी दिखलाई पड़ती है। परिवर्तन का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य पतन की ओर चला जाय। लेकिन उसकी भी दो धारायें हैं। जो परिवर्तन जान-बूझ कर किया जाता है, उसका प्रभाव मनुष्य पर सीधा-सीधा पड़ता है और जो अचानक ही हो जाता है उसकी प्रतिक्रिया होती है आदमी पर। तभी शायद वह पथभ्रष्ट हो जाता है। तो बदल गया अशोक। लेकिन मेरा भी नाम जयन्त नहीं, अगर उसे रास्ते पर न लाया। सोचना यह है कि इसके पास खर्च के रुपये कहाँ से आते हैं। होगा अपना कोई फण्ड; क्योंकि जब सरोज को तलाक दी थी, तो सारा सामान यों ही छोड़ दिया था। जुहू, चौपाटी और गेट-वे-आफ इण्डिया इसके केन्द्र हैं। आज देखूँ होटल ताजमहल। मुझे लगता है कि अशोक वहीं मिलेगा। वह इन जगहों में नहीं जायेगा, जहाँ मुझे मिल चुका है।

यह सोच जयन्त होटल ताजमहल की ओर चला। जिसकी बेजोड़ इमारत अपने पर इतरा रही थी और जिसके भीतर बज रहा था मोहक स्वरों में आरकेस्ट्रा। पाश्चात्य प्रणाली का नृत्य चल रहा था स्टेज पर। एक ईसाई बाला अशोक का हाथ में हाथ लिए 'राक एण्ड राल' डान्स कर रही थी। जयन्त देखता रहा। वह प्रतीक्षा में रत रहा कि कब यह नाच खत्म हो और मैं अशोक के पास पहुंचूं।

और नाचते-नाचते अशोक ने भी देख लिया जयन्त को। उसकी भौंहों में बल पड़ गए। वह उसे जलाने के लिये ईसाई बाला का हाथ पकड़ एक डिनर टेबिल पर आ बैठा। उसने ह्विस्की के दो गिलास मँगवाये। दोनों जाम पीने लगे। तब जयन्त बैठा न रह सका। वह फौरन गया अशोक के पास और

उसके हाथ से गिलास लेकर फोड़ दिया। होटल में ही हाथापाई होने लगी। लोग देखते और हँसते। क्लबों और बड़े-बड़े होटलों में तो ऐसे दृश्य चलते ही रहते हैं। जयन्त यद्यपि दुबला हो रहा था; लेकिन फिर भी वह शक्ति में अशोक से दुगना था। उसे अन्य कोई चारा न मिला, तो वह दोनों हाथ पकड़ अशोक को होटल के बाहर खींच लाया और खींचता ही गया। अशोक विवश था। उसका बल जैसे काफूर हो गया था।

जयन्त ने एक स्क्यूटर रिक्शा किया। उस पर अशोक को बैठाया। फिर वह उसे लाया अँधेरी और एक सुनसान में बैठाकर समझाने लगा। उसने कहा—"अशोक क्रोध पर हावी नहीं होना चाहिये। सन्देह करने से पहले अपने को परख लेना चाहिये। बस, बहुत हो चुका। अब मेरे साथ देहली चलो। तलाक खारिज करवाओ। सरोज को स्वीकार करो। मैं तुम्हें भटकने नहीं दूँगा। तुम बाप हो, तुम पति हो, तुम गृहस्थ हो अशोक। तुम जिन्दगी का दिया जलाओ। वह बुझ गया है। उसमें अपना प्यार भर दो और विश्वास की बत्तियाँ डालो। देखो, चिराग कैसा रोशन होता है। क्या भूल गये अपने मुन्ने को ? क्या सरोज तुम्हें याद नहीं आती। मैं तो जानता था अशोक मेरी माटी की गुड़िया अब तो सोने की रानी बन गई है ; लेकिन रानी रंक बन गई यह किसी ने नहीं सोचा था।

यह कहते-कहते जयन्त की हिल्की भर आई। अशोक ने कोई भी प्रतिरोध नहीं किया। वह चुपचाप बैठा रहा अँधेरी बम्बई का वह बृहत्तम मोहल्ला है जिसे छोटा-मोटा नगर कहा जा सकता है। अन्धेरी में एक नहीं, अनेक फिल्म स्टूडियो हैं। लेकिन ट्रेन का स्टेशन चम-चम करता हुआ। लेकिन वहाँ जितनी रोशनी है उतना अँधेरा भी, जितनी बस्ती है उतना श्मशान भी। लेकिन जहाँ मिल हैं या दियासलाई आदि के कारखाने। उनके ही पीछे बनी हैं बड़ी-बड़ी बाड़ियाँ। हर बाड़ी के आगे मैदान, कहीं चिकू के बाग, तो खड़े कहीं सुपाड़ी झाड़, बादाम के पेड़। इसी लिए तो ऐसी जगहें रात में भयानक लगती हैं। वहाँ लोग बहुत कम जाते हैं।

सो जयन्त बैठा था एक खोजामेमन की बाड़ी के सम्मुख जहाँ उजाले

में भी अँधेरा काँप रहा था। घने पेड़ों की परछाइयाँ कह रही थीं कि सायँ-सायँ। सन्नाटा-ही सर्वस्व, सन्नाटा-ही साँस और सन्नाटा-ही जिन्दगी। दोनों ही खानाबदोश थे। दोनों के रहने और ठहरने का कोई इन्तजाम नहीं। अशोक मौन था और जयन्त कह रहा था—"तुम्हें कभी कुमारमाधव बाबू का ख्याल नहीं आता ! वे कितने सज्जन पुरुष हैं। उनकी पत्नी देवी हैं देवी। सुनीता ने ही सरोज का उद्धार किया, वर्ना उसका क्या होता। अगर तुम सरोज को फिर से स्वीकार कर लेते हो तो दम्पति कितने खुश होंगे। मेरे लिये नहीं उन्हीं के लिये मान जाओ अशोक। जयन्त तुम्हारी खुशामत करता है।"

जो अशोक सनका हुआ घोड़ा था जब उसके मुँह में आदर्श की लगाम न लगी, तो मस्तिष्क ने उसे संतुलन दिया। उसकी क्षमता ने उसे प्यार दिया और उसके विवेक ने कहा कि हाँ जयन्त कहता तो ठीक है। सुनीता की ही तरह अगर कुमारमाधव बाबू न होते तो मेरी जिन्दगी नहीं बन सकती थी। मैं तो जमुना में कूदा था आत्महत्या के लिये; लेकिन उन्होंने मुझे पुलिस से छुड़ाया, मिल में नौकरी दी, व्याह किया सरोज से। मैं ऐसे धर्मात्मा आदमी की बात नहीं टालूँगा। मैं देहली जाऊँगा, उन्हें समझाने की कोशिश करूँगा लेकिन सरोज को फिर से अंगीकार करना, यह समझ में नहीं आता।

"क्या सोच रहे हो अशोक ? तुमने मेरी एक भी बात का जवाब नहीं दिया। देहली चल रहे हो कि नहीं ? बोलो, जवाब दो ? अब मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूँगा। अगर इन्कार कर दोगे, तो चला जाऊँगा।"

यह कहा था जयन्त ने परिस्थिति का रुख देख कर। वह जानता था कि उसकी हर बात अशोक में समा रही है। तभी तो प्रतिवाद नहीं हुआ, वाक्-युद्ध नहीं हुआ। यही वह क्षण है, यही वह मौका कहा जाता है कि वह उँगली पकड़ कर पहुँचा पकड़ लिया। सामने एक स्टूडियो में किसी फिल्म की शूटिंग हो रही थी। शूटिंग बरात की थी। बरात उठी थी, इसलिये गोला दगा था।

उस गोले के छूटते ही जैसे चौंक गया अशोक। वह उठकर खड़ा हो गया और धीरे-से बोला—"उठो जयन्त भाई। हम लोग चलें। कहाँ ठहरे हो ?"

जयन्त मुस्कराया; उसकी बाछें खिल उठीं वह भी उठ, उसका हाथ पकड़

हँसता हुआ बोला—"गरीबों का कोई ठिकाना नहीं होता अशोक। इसीलिये तो सरकार नगर-नगर में रैन बसेरे बना रही है। है कोई रैन बसेरा यहाँ ? तुम कहाँ रहते हो ?"

"अपनी भी जिन्दगी आवारा ही समझो भाई। जब आदमी गृहस्थी से बाहर हो जाता है, तो चाहे जितना लखपती हो, उसे फटे हाल-ही समझो। आज इस होटल में, कल उस होटल में। बस बैंक बैलेंस भी थोड़ा-सा ही रह गया है। तो आओ हम लोग किसी होटल में ही ठहरें। सवेरे हम लोग देहली चलेंगे।"

यह कहने के साथ-ही अशोक आगे बढ़ चला। जयन्त उसका हमराही था। दोनों एक होटल में पहुँचे। वहाँ पेट की ज्वाला शान्त की। फिर सोये पैर पसार। सवेरे बिजली की गाड़ी चली, जो विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन से कल्याण आई। वहाँ ही है लोको बम्बई का। वहीं से भाप-पानी वाला इन्जन जुड़ा और धुआँ उड़ाता हुआ पहुँचा देहली। कुमारमाधव ने जब जयन्त के साथ अशोक को आते देखा, तो उन्हें एक बार अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ तो वे पलकें मूँदने और खोलने लगे कि कहीं कोई तन्द्रा तो नहीं। यह जागती हुई बेला का कोई स्वप्न तो नहीं।

अशोक निकट आ गया। उसने आते-ही कुमारमाधव को अभिवादन किया। वे प्रसन्न हो गये। वे उसके सिर पर हाथ फेरने लगे स्नेहपूर्ण स्वर में—"कहाँ चले गये थे अशोक ? हम लोग बड़ी चिन्ता में पड़ गये। आओ, अन्दर चलो। तुम्हारी भाभी······"

"भाभी खुद-ही आ रही है अशोक के पास। रूठे को मनाने।" यह कहती हुई सुनीता भी वहाँ आ खड़ी हुई।

अशोक शर्मिन्दा था। वह कुछ बोल-ही नहीं पा रहा था। उसकी जबान तालू मे लग गई थी। उसके होंठ जैसे झूठे पड़ गये थे। वह स्वीकार कर रहा था अपनी भूल कि उसने जो कुछ भी किया वह उचित नहीं किया।

अब कुमारमाधव और सुनीता दोनों अशोक को कमरे में लिवा गये। जयन्त को यह आदेश हुआ कि वह जाकर सरोज को उसके घर से लिवा

लाए।

उधर जयन्त सरोज के घर गया और इधर आतिथ्य होने लगा अशोक का। आज नीमा भी बहुत प्रसन्न थी। घर में जब कोई उल्लास पर्व मनाया जाता है तो बच्चे स्वभावतः फूले नहीं समाते हैं। वे उछले-उछले फिरते हैं। ऐसे-ही वे दुःख और झंझट के समय घबड़ा जाते हैं, मासूम जो ठहरे।

नाश्ता करते हुए अशोक से कुमारमाधव ने कहा—"कोई बात नहीं अशोक। सुबह का भूला अगर शाम को घर लौट आता है, तो वह भूला नहीं कहाता। जो गलती आवेश में हो जाती है, उसका प्रायश्चित करना नितान्त आवश्यक हो जाता है। सब कुछ भूल जाओ बीते दिन और पिछली बातें। अदालत में दरख्वास्त दो, सरोज की तलाक खारिज करवाओ। मैं नहीं समझता अच्छा इस तलाक के कानून को। इससे घर बिगड़ते ही हैं, बनते नहीं। मुझे यकीन है कि तुम मेरी बात मानोगे और उस पर अमल करोगे।"

कुमारमाधव कहते रहे; अशोक चुपचाप बैठा सुनता रहा और सुनीता भी बीच-बीच पति के समर्थन में बोल उठतीं। नीमा सबका मुँह देखती। उसे भी यह आभास हो रहा था कि कोई अच्छा काम होने वाला है। सरोज बुआ और अशोक फूफा में जो लड़ाई हो गई थी, पिता जी उनका मेल करवा रहे हैं।

अशोक निरुत्तर ही रहा। कुमारमाधव ने उसे और समझाया। वे बोले—"तुम जयन्त को गलत न समझो अशोक। वह आदमी हीरा है। वह सरोज का भुतपूर्व पति है इसीलिए उसे प्यार करता है। सरोज भी पूर्णतया निर्दोष है। तुमने व्यर्थ वहम किया। तुम्हें पहले खूब सोच विचार लेना चाहिये था। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। अपनी गृहस्थी सम्हालो। जो सुख घर में है, वह बाहर नहीं। जो शान्ति, परिवार में है, वह बाहर की दुनिया में नहीं। नादानी मत करो। नादानी के ही कारण आदमी मुसीबत उठाता है।"

कुमारमाधव और अशोक की बातें हो रही थीं कि जयन्त अपने साथ लेकर पहुँच गया सरोज को। उसके साथ मुन्ना भी आया था। वह देखते-ही बाप की गोद में जाकर बैठ गया। तब अशोक अपने को नहीं रोक सका।

उसने उसका मुँह चूम लिया।

यह देखा सरोज ने तो उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह स्वयं जैसे अपने तई कायल हो गई। वह बोल नहीं पायी; क्योंकि उससे सम्बन्धित सारा उत्तरदायित्व कुमारमाधव ने अपने सिर पर ओढ़ रखा था। वह सोचने लगी कि जहाँ पर बड़े बोल रहे हों। वे बातें कर रहे हो। वहाँ कुछ कहना-सुनना छोटे के लिए न्यायसंगत नहीं। वह चुपचाप खड़ी रही। न अशोक ने उसकी ओर देखा और न उसने। दोनों-ही जैसे तने हुए थे और दोनों में से कोई भी पहले आगे बढ़ने को तैयार नहीं था।

कुमारमाधव की एक भी बात का जवाब नहीं दिया अशोक ने। वह बुत बना बैठा रहा। इससे उन्हें संतोष हुआ और सुनीता को भी शान्ति मिली कि चलो बिगड़ी बनी। ईश्वर ऐसी सबकी बनाये। काश! यह सब न होता, तो सरोज कितनी सुखी होती।

६२



उस दिन ही नहीं, दूसरे दिन भी कुमारमाधव ने समझाया अशोक को। दोनों साथ-साथ न्यायालय गये और तलाक खारिज करवाने के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। सरोज को भी वहाँ पहुँचना पड़ा। दम्पति पुनः प्रणय-सूत्र में बँध गये। उनका पुनरोद्धार हुआ। उनका सोया जीवन जागा। उसमें आयी ऐसी उमंग जो सावन की बरसात में मोर बन नाच उठी। उसमें एक अलौकिक जागा, जिसे संसारी लोग कहते हैं अनुराग।

इस तरह सरोज तथा अशोक की दुनिया फिर बस गई। दम्पति वह सब भूल गये जो अतीत के गर्भ में समा चुका था। वर्तमान से भी उन्हें कोई विशेष प्रयोजन नहीं था। वे तो देख रहे थे भविष्य के सुनहले सपने। जिनमें एक

और स्वर्ग बस रहा था और दूसरी बस रही थी धरती माँ।

कुमारमाधव प्रसन्न था सुनीता अपने में पूर्णतया संतुष्ट और सरोज, वह तो थी फिर माटी की गुड़िया ही। इतनी भोली, इतनी सरल कि जब हंसती तो उसके मुँह से फूल झड़ते और रोती तो मोती। अशोक भी अपने प्रत्यावर्तन से आत्मतुष्ट था और सबसे ज्यादा मुद्रित था जयन्त। उसे जैसे ईश्वर की बहुत बड़ी सौगात मिल गई थी। वह मुन्ने को दिन-भर छाती से चिपकाये रहता। घर गृहस्थी के काम में सरोज का हाथ बँटाता। अब वह मेहनत-मजदूरी नहीं करता क्योंकि अशोक ने कह दिया था कि तुम्हें क्या कमी है जयन्त भइया। बँगले जाओ, तो तुम्हारा आदर होगा और यहाँ तो सिर आँखों पर हो ही। मैं तुम्हें काम नहीं करने दूँगा। तुम्हारी अकेली जिन्दगी है, यहीं निर्वाह होने दो। तुम आदमी नहीं, देवता हो।

जयन्त भी मान गया अशोक की बात। वह उस घर में एक बुजुर्ग बन कर रहने लगा। दिन बीते, सप्ताहों ने महीने की माँग भरी और जब बीतने पर आया पूरा वर्ष, तो एक दिन दफ़्तर से लौटते समय अशोक ने देखा कि सरोज बैठी जयन्त से बातें कर रही है। वह रो रही है और रो-रो कर कह रही है—"तुमने मेरी दुनिया में फिर से हरा-भरा बाग लगा दिया जयन्त। तुम क्या ऐसे-ही रहोगे ? तुम्हें मेरी कसम, ब्याह कर लो। तुम्हारी उमर-ही क्या है ! मैं फिर कहती हूँ कि सरोज इस जन्म में नहीं, तुम्हें अगले जन्म में जरूर मिलेगी। जो जिसका होता है वह उसे जरूर मिलता है। प्यार अमर होता है और इन्सान मर जाता है।"

"नहीं माटी की गुड़िया। मेरा ब्याह तो अब मौत से होगा। जिन्दगी में केवल एक बार प्यार किया जाता है, बार-बार नहीं। तुम्हें खुश देखता हूँ, बस मेरा सुख यही है। भाग्य ने हम दोनों को जुदा-जुदा कर दिया। यह हमारी किस्मत का फेर है। सुखी रहो सरोज, खूब फलो-फूलो। जयन्त इसी में प्रसन्न है।"

जयन्त की ये बातें सुन सरोज दूने वेग से रो दी। वह आर्त-स्वर में बोली—"नहीं जयन्त, नहीं। तुम सुखी नहीं हो। तुम अपने सीने में आग

दबाये हो और जब आग कलेजे को खाक कर देगी, तो तुम हाथ पसार कर चल दोगे। मर जायेगी सरोज। अगर तुम्हें कुछ हो गया। तुम्हें मेरी कसम ब्याह कर लो। अपना घर बसाओ।"

अब जयन्त हँस दिया। वह हँसते-हँसते बोला—"रोती है पगली। तू मुझे प्यार क्यों करती है ? मैं तेरा हूँ। जिन्दगी भर तेरा ही रहूँगा। मैं ब्याह नहीं करूँगा, दुनिया नहीं बनाऊँगा, अपनी सरोज को ही देखकर जीवित रहूँगा।"

यह सब सुना अशोक ने। उसके मन में फिर सन्देह का कीड़ा रेंगा। वह सोचने लगा कि दोषी जयन्त नहीं, अपराधिनी सरोज है। मैंने उस पर विश्वास किया। यह बहुत बड़ी भूल की। निर्वाह होगा नहीं; क्योंकि परिस्थितियाँ फिर पहले जैसे हो रही हैं।

इसी तथ्य के आधारभूत को लेकर अशोक में परिवर्तन हुआ। वह सरोज से खिचता चला गया। तब जयन्त ने सोचा कि मैं-ही वह कारण हूँ जिससे सरोज को तलाक मिली। मैं ही वह पदार्थ हूँ जो दोनों के बीच लठ बना बैठा हूँ। फिर तनाव आया है दम्पति में। फिर कहा सुनी होगी। दोनों का दाम्पत्य जीवन नर्क हो जायेगा। मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं। क्यों न चल दूँ और तीर्थयात्रा कर आऊँ। जब जिन्दगी का कोई ध्येय न हो तो उसे धर्म-कार्य में लगाना चाहिए। मेरा यहाँ से हट जाना ही श्रेयकर है। समझदार आदमी परिस्थिति को देखते ही अपना रुख बदल देता है। मैंने भूल की जो सरोज के सम्पर्क में रहा।

इधर ऐसा सोचता जयन्त और उधर अशोक अपने में विक्लत भर रहा था कि निकले हुए दाँत अन्दर नहीं होते। खोया हुआ प्यार कोई भूल नहीं जाता। पुराना लगाव कभी खत्म नहीं होता यह ध्रुव सत्य है। सरोज जयन्त को चाहती है और जयन्त उसे। वे दोनों मेरी आड़ चाहते हैं सो उन्हें मिल गई। आड़ से ही तो शिकार खेला जाता है। औरत के भुलावे में जो आता है, वही इन्सान धोखा खाता है। क्या करूँ ? मैं नहीं जानता था ऐसा वरना सरोज को कभी स्वीकार नहीं करता। अब मेरे बस की स्थिति

नहीं रही। वही सरोज है, वही जयन्त, वही प्यार की बातें और दुनिया।

सरोज भी गई थी कुछ-कुछ चौंक। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि जयन्त आजकल कम क्यों बोलता है। अशोक खिचा-खिचा सा क्यों रहता है। क्या फिर कुछ होने वाला है पहले की ही तरह। अगर कुछ नेक-बद हुआ तो मैं बेमौत मर जाऊँगी। भगवान तू क्या औरत को दुःख सहने के लिए ही बनाता है। उसने क्या कुसूर किया है, जो उसे दुनिया नाहक ही सजा देती है।

और जयन्त ने कर लिया था दृढ़ निश्चय कि अब वह देहली में नहीं रुकेगा। वह तीर्थयात्रा पर चला जायगा और कभी लौटेगा नहीं। वह सोचता कि मैंने मुन्ने के लिये न जाने कितने सपने देखे थे, सपने साकार नहीं होते, केवल कुछ क्षण-तक मनुष्य का मन भर देते है। क्षणिक सुख उतना ही घातक होता है, जितना नीम हकीम। और लम्बा एक अनुभव बन जाता है जिन्दगी का प्रतीक। इस तरह मेरी यात्रा तय है। मैं जरूर जाऊँगा।

जब जयन्त ने अपनी तीर्थयात्रा का प्रस्ताव कुमारमाधव के सम्मुख रखा, तो उन्होंने उसे बहुत समझाया। सुनीता ने भी कहा कि अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जयन्त भइया। जब तक बालों पर सफेदी नहीं आती, तीर्थयात्रा शोभा नहीं देती। किन्तु जयन्त एक ही रट लगाये रहा कि वह जायेगा, मानेगा नहीं। सरोज भी उसे मना नहीं पायी। और न रोका अशोक ने। एक दिन साँझ समय वह तीर्थ-यात्रा पर चला गया। तब सरोज रोकर रह गई और कुमारमाधव ने एक दीर्घोच्छ्वास ली।



जयन्त के जाने के बाद दूसरे दिन जो रसोई बनी उसमें केवल इने-गिने ही व्यंजन थे। अरहर की दाल, आलू की सूखी सब्जी, रोटियाँ कोई बड़ी और कोई छोटी। चावल इसके अलावा न चटनी न रायता और न अचार। अशोक जब खाने बैठा, तो उसने अनुभव किया कि मुझमें और जयन्त में इतना अन्तर है। उसने कुछ नहीं पूछा, गुमसुम हो गया और सोचने लगा कि देखूँ रात की रसोई में क्या बनता है।

रात भी आ गई उदासी को गोद में लिये। मृतप्राय सी सरोज उठी। उसने स्टोव जलाया और खीर चढ़ा दी और कुछ नहीं। अशोक ने केवल खीर खा ली। उसने सरोज की इस गतिविधि को भी परखा और फिर प्रतीक्षा में रत रहा कि देखूँ कल क्या होता है।

फिर उस रात के बाद जो कल आया, वह एक कदम आगे था। दाल में नमक नहीं, सब्जी चूल्हे पर ही जल गई और यही नहीं जल गई सरोज की उँगलियाँ भी तवे पर रोटी पलटते समय। कोई कोई रोटी भी जल गई थी। चावलों में रह गई थी किनकी। वे खाने में पचर पचर होते। अब नहीं सह सका अशोक। वह जोर से तड़पा—"यह क्या शरारत है सरोज? जयन्त के लिए तो रोज रात में दूध की पूड़ियाँ तलती थी। खीर में केशर पड़ती। कभी पूड़ियाँ बनतीं तो कभी कचौड़ियाँ। और दोपहर में कच्चे खाने के साथ अचार, रायता और चटनी जरूर। क्या उसके जाने का दुख है। तो दो चार दिन के लिये बँगले चली जाओ। मुझे गफलत पसन्द नहीं और मैं जानता हूँ तुम जो कुछ हो।"

सरोज की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे। वह पति का मुँह देखकर रह गई। वह पी गई अपनी व्यथा भीतर ही भीतर। उसने नहीं बतलाया कि उसकी भी उँगलियाँ जल गई हैं। लेकिन अशोक को सरोज की खामोशी अच्छी नहीं लगी। उसने वह भी शरारत समझी। वह तेज गले से बोला—

"यह बतलाओ कि तुम दोनों ने मुझे जान-बूझ कर उल्लू क्यों बनाया ? मैंने तलाक दी थी। तुम उससे ब्याह कर लेतीं। कोई हर्ज था क्या। दूसरे को धोखा देना अच्छा नहीं सरोज ; अपने लिये नर्क का निमन्त्रण मँगवाना है। आज मैं कई दिन से देख रहा हूँ, जो नाटक मेरे घर में हो रहा है। तभी तो जयन्त चला गया। चोर की दाढ़ी में तिनका होता है। अगर वह चोर न होता तो भाग न जाता।"

"यह सब क्या कह रहे हो तुम ? तुम्हें क्या हो गया है ? तुम्हारा शक अभी दूर नहीं हुआ ? तुम कैसे आदमी हो ? खाने में थोड़ी सी भूल हो गई, बस सजा देने लगे। इसके पहले भी कभी ऐसा हुआ। तुमने मुझे कुछ कहा ? आज............।"

अभी सरोज इतना ही कह पाई थी कि अशोक को आ गया क्रोध। उसने खाना छोड़ दिया और तड़ाक से एक थप्पड़ खींचकर उसके गाल पर मारता हुआ बोला—"मैं अब रियायत नहीं कर सकता। मैं आज ही कुमारमाधव बाबू से कहूँगा और सुनीता को बुलाकर यह भोजन खिलाऊँगा, मैं बहस पसन्द नहीं करता। मैं औरत से लड़ने का आदी नहीं।"

सरोज देखती रही ; अशोक बड़बड़ाता हुआ चला गया। उसके जाने के बाद वह सोचती रही कि अब मैं सावधानी से सब काम करूँगी। कोई भी कमी नहीं रक्खूँगी खाने में। देखूँ रात को वे क्या खाते हैं। एक नहीं मैं चार चीजें बनाऊँगी।

यद्यपि सरोज के दाहिने हाथ की दो उँगलियाँ जल गई थीं ; लेकिन फिर भी उसने दाल पीसी। खस्ते की कचौड़ियाँ बनायीं। परवर का झोलदार साग। भिण्डी सूखी। उसने आज दूध में पूड़ियाँ तलीं। अचार निकालकर रखा, करौंदे की चटनी और बनाया पालक का साग भी। नौ सवा नौ बजे नित्य अशोक आता था। किन्तु आज दस बज गये अशोक का पता नहीं। सरोज चिन्ताकुल हो उठी कि क्या बात हुई, आज आये नहीं। देर हो रही है। बड़े वहमी हैं। जितना पहले मुझ पर विश्वास था उतना ही अविश्वास हो गया है। क्या फिर कुछ होने वाला है। मैं अनहोनी

से वहुत डरती हूँ। भाग्य की मार खाते-खाते थक गई हूँ।

पहला पहर तो नया पुराना हो चुका था। दूसरे की भी आधी उमर हो गई और अशोक नहीं आया, तो सरोज अकुलाहट से भर गई। वह आँगन में आई। दरवाजे तक झाँक आई। ग्यारह के बाद क्लाक ने बारह चोटें कीं। खूब आधी रात हो गई और वे आये नहीं।

सरोज दरवाजे पर ही खड़ी रही। लिबर्टी में दूसरा शो छूटा, तब एक बज रहा था। उसने देखा कि धीरे-धीरे घर की ओर आ रहा है अशोक। आते ही वह बोली—"आज बहुत देर कर दी। कहीं चले गये थे क्या? खाना ठंडा हो रहा है।"

"जी हाँ मेम साहब, आज सिनेमा चला गया था और खाना होटल में खा लिया था आफिस से आते ही। तुम बेकार हैरान हुईं। तुमसे कहा था न कि दो चार दिन के लिये बँगले चली जाओ।"

यह कहने के साथ अशोक कुर्सी पर बैठ गया। वह बूट खोलने लगा, तो सरोज सामने आ गई। अभी उसने टाई की गाँठ हाथ में पकड़ी ही थी खोलने को कि सहसा अशोक ने उसका हाथ झिड़क दिया। वह बोला—"यह सब कुछ नहीं। अभी तो तुम्हारे मातम मनाने के दिन हैं। जब अच्छे दिन आयेंगे तो सब चलेगा। अभी कुछ नहीं।"

सरोज सन्नाटे में आ गई। वह दूर हट कर खड़ी हो गई। वह रात दोनों को जागते बीती। रसोई ज्यों-की-त्यों पड़ी रही। उसके किवाड़ें भी वन्द नहीं हुए। सबेरे सरोज़ ने देखा कि बिल्ली ने दूध की पुड़ियाँ गिरा दी हैं। पकौड़ियाँ भी चूहों ने खाईं, खूब फैलायीं। सारी रसोई अस्त-व्यस्त थी। उसके आँसू आ गये, तो उन्हें आँचल से पोंछ डाला।

आज सरोज रसोई में इस तरह सतर्क बैठी थी जैसे गणित का परीक्षार्थी। उसने खड़े मसूर बघारे। आलू-छोले भी बनाये। चावल ऐसा डाला कि सारा घर महक गया और आटा मूंदने जा रही थी कि अशोक रसोई के दरवाजे पर आया। वह बोला—"आज मुझे जल्दी जाना है सरोज। मैं कहना भूल ही गया। खाना आने भर को बनातीं। अब रात को ही खाऊँगा। बस चल

रहा हूँ। जरूरी काम है।"

सरोज ने सुना तो उसकी जान सूख गई। वह अवाक् रह गई। वह कुछ भी न कह पाई, न पूँछ। बूट चरमराये और अशोक वहाँ से चला गया।

जिन महिलाओं को सम्भ्रान्त की संज्ञा मिलती है, वे प्रकट में बड़ी से बड़ी बात सह जाती हैं। उन्हें क्रोध आता है, तो एकान्त में झुँझला लेतीं, रो लेतीं। वे दुनिया को तमाशा नहीं दिखलातीं; क्योंकि उनकी आँख में लाज के डोरे होते हैं। अब अशोक चला गया, तो सरोज एक झटके के साथ उठी उसने चूल्हे में पानी डाल दिया। जो कुछ तैयार था, वह भर कर रख दिया एक बड़े बर्तन मे कि गाय को खिला दिया जायेगा। वह रात भर रोती रही। उसकी दृष्टि में आई तुलना। जिसमें दो आँखों में दो व्यक्ति खड़े थे। एक बचपन का साथी था और दूसरा जवानी का मित्र। जयन्त बचपन से उसे प्यार करता था और अशोक रीझा था जवानी में। अब उसकी समझ में आया कि जवानी का प्यार झूठा होता है। बचपन के साथी जिन्दगी भर एक-दूसरे को नहीं भूलते, जब कि जवानी में मन-ही-मन सौ-सौ घर बसते हैं। जयन्त के आगे अशोक कुछ नहीं। वह आदमी नहीं, निरा स्वार्थी है।

सरोज के मन में अब दो पहलू घूमने लगे। एक का नाम प्रकाश था और दूसरे का धरती। अशोक में बू थी, वास थी ग्रेजुयेट होने की गंध थी जब कि जयन्त था सरलता का प्रतीक। वह अपने को कुछ समझता ही नहीं थी। वह सोचने लगी कि निर्वाह की गाड़ी तभी चलती है जब उसमें जुते हुए बैल कदम से कदम मिलाकर चलते हैं। एक आगे चलता है, दूसरा पीछे खींचता है शायद मेरे नसीब में सुख नहीं रोना ही रोना लिखा है। खैर निर्वाह करूँगी मैं। औरत ही सहती है। वह इसीलिए बनाई गई है।

इस तरह सोचती रही सरोज। पहले दिन डूबा फिर उसकी आभा ने भी पयान किया। तब आकाश का नीला रंग तनिक श्याम वर्ण हुआ। उसमें तारे निकले। वे प्रतीक्षा करने लगे चन्द्रमा की। उसी समय सरोज को जमुहाई आई। उसने ऊपर सिर उठा कर देखा और स्वतः ही कहने लगी—"चलूँ बत्ती जला दूँ फिर खाना बनाऊँ। उसके आने में अब देर ही कितनी रह गई है!"

६४



बहुत दिन हो गये सरोज सुनीता के घर नहीं गई थी। एक दिन तीसरे पहर वह आ पहुँची। उसने देखा सरोज का उदास चेहरा। उस पर जर्दी छा रही थी। उसने देखा कि वह कुछ दुबली हो चली है। उसने कारण पूछा तो सरोज ने हँस कर टाल दिया कि कुछ नहीं दीदी। कोई बात नहीं। मन है कभी-कभी अकेले में ऊब जाता है। किन्तु सुनीता को इससे सन्तोष नहीं हुआ। नारी-नारी की आँख पहचानती है। उसका इशारा और उसकी झिझक। सुनीता जानती थी कि जिन आँखों में सुख होता है, वे मद को प्याली जैसी छलकतीं हैं। जिनमें दुख होता है, वे सोयी-सोयी-सी होतीं हैं। सरोज की भी आँखें दुखिया लग रही हैं। अवश्य उसने अपने अन्दर कोई-न-कोई गहरी वेदना छिपा रखी है। या तो उसे जयन्त के जाने का दुख है या अशोक से तना-तनी चल रही है। दो में से यही एक बात।

जब सुनीता ने देखा कि सरोज उसे सहज ही कुछ बतलाने वाली नहीं, तो उसने कुशल नीति से काम लिया। वह बोली—"इस बीच कोई नया नया देखा? बँगले भी नहीं आती हो! कोई नाराजगी है क्या?"

इस पर सरोज हँसी; लेकिन वह हँसी भी उधार ली हुई जैसी थी। वह बोली—"दीदी की बातें। मैं नाराज हो जाऊँगी दीदी से! और खेल-वेल देखने का मन ही नहीं होता।"

सुनीता तथ्य पर पहुँच रही थी। उसने और टटोला वह धीरे से बोली—"और क्या अशोक को भी मना कर दिया है कि वह भी बँगले न आये?"

"अच्छा! वे भी नहीं गये, मुझे नहीं मालूम। आज पूछूँगी।"

सरोज के इस कथन से सुनीता ने उसके मन का चोर पकड़ लिया। वह समझ गई कि दम्पत्ति में अनबन है वह बोली—"चलो मेरे साथ में नौकर भेज दूँगी मिल। अशोक भी आज खाना वहीं खायेगा।"

"वे नहीं आयेंगे दीदी। वह मुझसे नाराज हैं।" यह कहते-कहते सरोज

रोने लगी। अब फूट गया था समाई का श्रोत। नारी का दुख करुण क्रन्दन बन कर बह चला था। सरोज रोने-सिसकने लगी। सुनीता उसके आँसू पोंछने लगी और अन्त में वह उसे अपने साथ ले गई बँगले। नौकर मिल गया और रात को अशोक को भोजन करने के लिए बँगले में आना पड़ा।

इसके पूर्व ही सुनीता ने सरोज की स्थिति से पूर्णतया विज्ञ करा दिया था अपने पति को। दम्पति प्रतीक्षा में थे अशोक की वह जैसे ही आया, उसे प्राणी-द्वय ने हाथों हाथ लिया। डिनर टेबिल पर खाने की तश्तरियाँ सजीं। सुनीता और सरोज पास-पास बैठीं कुमारमाधव अशोक की बगल में। नीमा अलग बैठी थी। वह बहुत चंचल थी।

कुमारमाधव पालक कबाब को छुरी-काँटे से काटते हुए बोले—"अशोक आजकल कुछ नाराजी है क्या? तुम मेरे यहाँ नहीं आये और यह सरोज क्या भूल गई है हमें? यह भी तो नहीं आई। क्या बात है? तुम लोग···।

"कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं। सिर्फ समय नहीं मिला और कोई बात नहीं।"

अशोक ने यह कह कर अपनी सफाई देनी चाही। वह जल्दी-जल्दी चम्मच से खीर शिप करने लगा। तभी कुमारमाधव ने टोक दिया। वे बोले —"कुछ ही तो बहुत कुछ होता है अशोक। जिसे हम चिनगारी कहते हैं न। वही थोड़ी देर बाद शोला बन जाती है। चिनगारी बुझ जाती है और शोला भड़कता है! ऐसे ही दबी हुई आग कलेजे को खाक कर देती है। हँसी-खुशी रहो। जिन्दगी को अपनी समझो। अब कहने की जरूरत नहीं तुम्हारे अन्दर जो कमियाँ आ गई हैं उन्हें दूर कर दो।"

यद्यपि अशोक कुमारमाधव के कथन का तात्पर्य अच्छी तरह समझ गया था, लेकिन फिर भी अनभिज्ञ होकर बोला—"आपने क्या कहा मैं समझा नहीं।"

"और समझने की जरूरत नहीं है अशोक। तुम बहुत अधिक समझदार हो गये। मेरा कहना फिर यही है कि हँसी खुशी रहो, जिन्दगी का सुख इसी मैं है।"

इसके बाद कुमारमाधव मौन हो गये। तब सुनीता अशोक से बातें करने लगी। सरोज कुछ नहीं बोली। वह ऐसे बैठी थी जैसे बीच सभा में कठ-पुतली। किसी तरह खाना समाप्त हुआ। अशोक दुनियादारी के नाते सरोज को अपने साथ लेकर घर आया।

सरोज के प्रति कुमारमाधव बहुत ही दुखी थे और कम वेदना नहीं थी, सुनीता के भी हृदय में। दम्पति रात को जब तक सो नहीं गये, सरोज के ही प्रति सोचते रहे कि भगवान उसका अनिष्ट न हो। यह इष्ट की पात्री है।

और सरोज जब अशोक के साथ अपने आँगन में आई, तो वह भी सोच रही थी कि कुमारमाधव और सुनीता जैसे मेरे माँ बाप हो गये हैं। अशोक के शब्दों में वह घर मेरा पीहर है। जितना सगा नहीं करता, उतना उपकार गैर कर देता है।

और अशोक की तन रही थीं भौंहें। वह सोच रहा था कि यह हरक़त अच्छी नहीं की सरोज ने जो वह बँगले गई और मुझे नहीं बुलवाया। मैंने उसकी लाज रखी, भेद की एक भी बात नहीं छेड़ी; किन्तु भविष्य में उसे क्षमा नहीं करूँगा।

६५



एक रात जब अशोक दफ्तर से आया, तो उसने देखा कि सरोज बैठी एक पत्र पढ़ रही है। वह पूँछना चाहता था कि यह चिट्ठी किसकी है। लेकिन यह सब न कह कर वह उसे गौरपूर्वक निहारने लगा।

वह देखता रहा सरोज पढ़ती रही उसकी आँखों से आँसू धार बन कर बहे। वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। तब अशोक ने अपने को प्रकट किया।

वह बोला—"किसकी चिट्ठी है सरोज जिसे पढ़कर रो रही हो ? लाओ, मैं भी देखूँ ?

अब सरोज सकपका गई; उसको काटो तो बदन में लहू नहीं। वह बोली कुछ भी नहीं। उसने चुपचाप चिट्ठी अशोक के आगे बढ़ा दी। वह पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—"प्रिय सरोज, आजकल मैं धौलागिरि पहाड़ पर हूँ। नन्दा देवी को छोड़कर कहीं भी जाने को जी नहीं चाहता। इसके बाद मैं पशुपति नाथ महादेव की भी यात्रा करूँगा। लौटते समय हरिद्वार आऊँगा या कुरुक्षेत्र। तभी अजमेर का पुष्कर तालाब नहाऊँगा और आकर मिलूँगा तुमसे। देखो अशोक का ख्याल रखना, क्योंकि वही तुम्हारा जीवन सर्वस्व है। तुम्हारी तनिक सी भूल तुम्हें बहुत बड़ी आफत में डाल सकती है। अपना पति देखो, अपना पुत्र। तुम्हारी जिन्दगी का यही सौभाग्य है, यही सिन्दूर। जयन्त को भूल जाओ सरोज। समझ लो कि मैं एक सपना था, जो पूरा नहीं हुआ, बीच में ही टूट गया। बस विदा सरोज। यहाँ मुझे बड़ी शान्ति है।"

नीचे पत्र प्रेषक का नाम था। लिखा था 'जयन्त'। अशोक को इतना खला कि उसने उस समय खाना नहीं खाया। दम्पति में थोड़ी बहुत कहा-सुनी भी हुई; लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं निकला। मामला उलझ गया। सारी रात सोचता रहा अशोक कि सरोज मेरी पत्नी होकर जयन्त की पूजा करती है। यह मुझसे सहन नहीं होता। या तो मैं न रहूँ या वह। वरना कभी अनर्थ हो सकता है।

इस तरह दो-तीन दिन बीत गये। अशोक की मनःस्थिति बिगड़ती-ही गई। सरोज भी खूब हैरान रही और एक दिन जब वह सबेरे सोकर उठी, तो उसने देखा कि उसकी सारी देह डोरी से चारपाई में बँधी है। मुन्ना अलग फर्श पर बैठा रो रहा है। सरोज के हाथ-पैर भी खूब जकड़े हुए हैं। वह विवश हो गई; उठ न सकी। तभी उसने देखा कि सामने आ रहा है अशोक। उसके हाथ में मिट्टी के तेल की बोतल है। उसने पूरी बोतल छिड़क दी और फिर व्यंगपूर्वक हँसकर बोला—"तू खूब जप माला जयन्त के नाम की।

बुला उसको, अभी दियासलाई लगाता हूँ। तू जलभुन कर खाक हो जायेगी। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। मुझे फुर्सत मिल जायेगी।"

× × ×

सरोज भय-त्रस्त दृष्टि से पति की ओर देखने लगी। तभी अशोक ने लगा दी उसके तेल से भीगे कपड़ों में जला कर दियासलाई। सरोज जलने लगी। वह चीखने और चिल्लाने लगी। इसके पहले-ही जा चुका था अशोक। वह अपने साथ रोते हुए मुन्ने को भी ले गया।

अशोक सिर पर पैर रखकर भागा। मुन्ना उसकी गोद में रो रहा था। वह किसी तरह चौराहे आया। एक ताँगा पकड़ स्टेशन पहुँचा। उस समय भी जा रही थी एक ट्रेन बम्बई। वह उसी पर सवार हो गया। उसने टिकट भी नहीं खरीदा। वह पसीना-पसीना हो रहा था। वह किसी की हत्या का आयोजन करके आया था इसीलिये भय भी था। ट्रेन छूटने में अभी पाँच मिनट की देर थी। इस बीच उसका धीरज साँसें ले रहा था। वह चुपचाप दुबका-सा एक कोने में बैठा था और मुन्ना अब भी रो रहा था।

किसी तरह गाड़ी चली; अशोक की जान में जान पड़ी। वह आशंका से भर रहा था कि अगर सरोज का चिल्लाना सुनकर लोग दौड़ पड़े और वह जिन्दा बच गई, तो मेरे खिलाफ पुलिस में बयान जरूर देगी। तब मेरे नाम वारन्ट कटेगा और मैं जरूर पकड़ा जाऊँगा। और अगर वह जलकर मर गई, तो मैं समझूँगा कि मेरी जिन्दगी पाक और साफ हो गई।

ट्रेन ने रफ्तार पकड़ी; मुन्ना भी चुप हो गया। लेकिन अशोक में चलता रहा अन्तर्द्वन्द्व। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिली। वह अपने में उलझता और उलझता चला गया।



गनीमत यह हुई थी कि अशोक ने सरोज का मुँह नहीं बाँधा था। वह ऐसी चिल्लायी, ऐसी चीखी कि पड़ौसी दौड़ पड़े। किवाड़ें खुले हुए थे। सरोज आँगन में धू-धू करके जल रही थी। वह चारपाई पर बँधी थी। लोगों ने जल्दी से चारपाई पलटी, डोर के फंदे काटे फिर डाल दिया सरोज पर बाल्टियों पानी। किसी तरह आग तो बुझ गई; लेकिन सरोज झुलस कर रह गई थी।

खबर हुई; कुमारमाधव और सुनीता दोनों दौड़े आये। सरोज बेहोश हो गई थी। वह जहाँ-जहाँ झुलसी वहीं, फफोले पड़ गये थे। उसे फौरन-ही इरविन अस्पताल पहुँचाया गया। उसका चेहरा देखे से नहीं देखा जाता था। उसके सिर के बाल सब जल गये। जब चेत हुआ तो कुमारमाधव के पूछने पर उसने रोकर बतलाया—"जिस दिन से जयन्त तीर्थ यात्रा पर गया, वे (अशोक) मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गये। कभी सीधे बोले नहीं। कभी अच्छा व्यवहार नहीं किया। हमेशा डाँटते और फटकारते ही रहे। मैंने उनकी शिकायत नहीं की, न आप से, न दीदी से। वे कभी खाना घर में खाते, कभी होटल चले जाते। कभी तैयार रसोई छोड़ कर चल देते और कहने लगते कि आज मुझे जल्दी जाना है, एक जरूरी काम है। उनका संदेह गया नहीं। वह ज्यों-का-त्यों बना था। इसीलिए तो यह सब हुआ। सबेरे अचानक मेरी आँख खुली तो देखा कि कोई मुझे बाँध रहा है। मेरे हाथ-पैर पहले ही जकड़े जा चुके थे। उस समय वे बाँध रहे थे पेट और टाँगों पर डोरी। मुन्ना रो रहा था। उन्होंने उसकी भी परवाह नहीं की। वे मिट्टी के तेल की बोतल लाये। मुझ पर छिड़की और दियासलाई लगा दी। फिर मुन्ने को लेकर न जाने कहाँ चले गए मैं तो लुट गई भइया, बरबाद हो गई।

कुमारमाधव को क्रोध तो बहुत आया। अगर उस समय उनके सामने अशोक होता तो वे पता नहीं क्या करते। वे धीरे से बोले—"कोई बात नहीं

सरोज । तुम्हारी लाख रुपये की जान तो बच गई । जाएगा कहाँ अशोक । कभी तो आयेगा ही मुन्ने को भी ले गया । बड़ा पत्थर दिल आदमी है ।"

और जब सरोज के आँसुओं का वेग कम नहीं हुआ तो सुनीता अपने आँचल से उन्हें पोंछ सान्त्वनापूर्वक कहने लगी—"रो मत सरोज । जो कुछ हुआ उसे भूल जाओ । मैं हूँ, तुम्हारे भइया हैं । तुम बँगले में रहो । देखो तो निर्दयी को बाँध कर आग लगा दी और चला गया । तुम तनिक भी दुख न करो । जब तक मैं जिन्दा हूँ, तुम पर आँच नहीं आ सकती मैं बाद में खाऊँगी, पहले तुम्हें खिला कर । आदमी हीरा था जयन्त, सो चला गया । और यह अशोक कुछ समझ में नहीं आया । पहले तलाक दी फिर वापस लौटा । उसके बाद यह नीच काम किया । ईश्वर उसे बुद्धि दे । उसकी मति भ्रष्ट हो गई है ।"

"मैं अब जीकर क्या करूँगी । जो देखेगा, वही घिनायेगा । मेरा मुन्ना चला गया । एक सहारा था जयन्त वह भी छोड़ गया । इसके अलावा आज तक मुझे कभी सुख नहीं मिला । बचपन गरीबी में बीता । माँ की मृत्यु के बाद शराबी बाप ने मुझ पर जी भर कर अत्याचार किया । तब मैं जयन्त के साथ भाग कर देहली आई । यहाँ चार दिन चाँदनी रात रही फिर अँधियारे ने मेरा पल्ला पकड़ लिया । जयन्त भागा, उसे मरा समझ कर मैंने चूड़ियाँ तोड़ीं । फिर आप लोगों ने ही मुझे अशोक के गले बाँधा । उसके बाद जो हुआ वह कहने की जरूरत नहीं । मैं किसी की माटी की गुड़िया थी और मुझे माटी में ही मिल जाने दो दीदी । अच्छा होता मैं माटी में मिल जाती । अब जीऊँगी तो यातना भोगूंगी । जिसका पति नहीं, जिसका पुत्र नहीं, उस स्त्री का भी कोई जीवन है ?

पलंग के एक ओर कुमारमाधव बैठे थे, दूसरी ओर सुनीता । दम्पति अपने हाथों सरोज के आँसू पोंछते । उसे बार-बार समझाते और सरोज वह रोये ही जा रही थी ।

अस्पताल में अगर यह सूचना पहुँच जाती कि सरोज को जबरदस्ती आग लगा दी गई है, तो उसी समय वारन्ट निकलता अशोक के नाम । यह तो

कुमारमाधव की ही दम थी, जो उन्होंने चतुराई से काम लिया और यह लिखवाया कि स्टोव जलाते समय मिट्टी के तेल की बोतल फैल गई। सरोज ने उसे दियासलाई जलाई, वह फैंकी। वह फैले हुए तेल पर गिरी तभी उसके कपड़ों में आग लग गई।

यह सब तो हुआ किन्तु कुमारमाधव के मन को शान्ति नहीं मिली। वे बंगले आकर भी यही सोचते रहे कि अब अशोक और सरोज का निर्वाह नहीं हो सकता। दोनों में गहरा भेद-भाव बढ़ गया है। मैंने तो बहुत बनाने की कोशिश की; लेकिन राग बनता नहीं, बिगड़ता ही चला जा रहा है। कैसा होता है पुरुष जो नारी पर अत्याचार करता है। सन्देह के हाथों बड़े-बड़े बिक जाते हैं। अशोक संदेह का शिकार हो गया। वह मिले तो उसे समझाया जाय, उससे कुछ कहा जाय।

इस तरह सोचते रहे कुमारमाधव और सुनीता भी चिन्ता धारा में बहती रही। दम्पति रात बीतते-ही सबेरे फिर अस्पताल गये तब भी सरोज रो रही थी।

६७



एक महीने से अधिक हो गया, सरोज अस्पताल में ही पड़ी रही। जले हुए जख्म बहुत देर में भरते हैं अपेक्षाकृत चोट और घाव के। कुमारमाधव और सुनीता नित्य सबेरे आते, साँझ को भी। वे उसे दिलासा देते और हमेशा समझाते ही रहते। ऐसे में ही एक दिन आ गया जयन्त। उसके आने का कारण यह था कि वह नन्दा देवी से पशुपति नाथ नहीं गया। पीछे की ओर लौटा। वह बद्रिका आश्रम को जाना चाहता था कि एक रात को उसे सपना आया कि सरोज मुसीबत में है। अशोक उसे छोड़कर फिर चला गया है।

उसने उसके अंग भंग कर दिये हैं। सरोज कुरूप हो गई है। बस फिर नहीं रुका जयन्त। वह सीधा देहली भागा। पहले सरोज के घर गया। वहाँ ताला बन्द था। फिर पहुँचा बँगले, तो सुनीता और कुमारमाधव उसे अपने साथ अस्पताल ले गये।

जयन्त ने जब सरोज को देखा तो वह फूट-फूट कर रो दिया। उसका सपना सच्चा निकला। सरोज के अंग-भंग तो नहीं हुए; वह जल गई थी कुरूप हो गई थी। वह रो रोकर कहने लगा—"यह क्या हो गया सरोज ? यह सब मैं क्या देख रहा हूँ। मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती। मुझसे तुम्हारा दुःख देख नहीं जाता। तुम······"

"अगर तुम्हें मौत ही आ जाती तो मेरा यह हाल कभी नहीं होता। तुम फिर आ गये ? चले जाओ यहाँ से। तुमने ही मेरी हरी भरी दुनिया में आग लगाई है। तुम्हारा ही सारा कुसूर है जिसकी सजा मुझे मिल रही है। खूब रही माटी की गुड़िया। मैं गुड़िया की गुड़िया ही रही। तुमने मरने का ढोंग रचा। मैं दूसरे की गृहणी बनी और फिर तुम ही आये और तुमने ही आकर अशोक के मन में संदेह के बीज बोये। चले जाओ, डूब मरो। मैं तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहती। तुम्हारे पीछे मेरा मुन्ना भी चला गया। जाओ जयन्त जाओ। अब सरोज तुम्हारी एक नहीं सुनेगी। मुझे तुमसे नफरत हो गई है।"

यह कहने के बाद सरोज चीखी। जयन्त सहम गया। सुनीता और कुमारमाधव भी सन्नाटे में आ गये। सहस करके जयन्त ने फिर कहा—"अच्छा मैं डूब मरूँगा, चला जाऊँगा। पहले तुम अच्छी तो हो लो। गुस्सा न करो सरोज। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। तुम······"

"मैं गुस्सा करूँ या न करूं। अच्छी होऊँ या मर जाऊँ, तुमसे कोई मतलब नहीं। तुम मेरे कोई नहीं चले जाओ जयन्त, तुम जाते क्यों नहीं। तुम्हारी माटी की गुड़िया फूट गई। वह माटी में मिल गई और मेरा जयन्त मर गया। वह दुनिया से चला गया।"

सरोज के मुँह यह सुन जयन्त उठकर खड़ा हो गया। वह बोला, "तो

इतनी नफरत हो गई है मुझसे ? मैं बेकार जिया, मुझे मर ही जाना चाहिए था। अच्छी हो जाओ सरोज। भगवान तुम्हारा भला करे, मैं जाता हूँ।

यह कहकर जयन्त वहाँ से तेजी के साथ चल दिया। सुनीता और कुमारमाधव उसे बुलाते-ही रह गये, रोकते ही रह गये। लेकिन जाने वाला चला गया।

जयन्त ने कुमारमाधव के मुँह से सारी कहानी सुनी थी कि अशोक सरोज के आग लगाकर चल दिया। वह मुन्ने को भी ले गया। उसने उस तथ्य पर विचार किया और फिर चल दिया स्टेशन की ओर। रास्ते में वह पैदल भागा; देहली गेट पर आ एक रिक्शे से टकराया। दरियागंज की लम्बी सड़क उसने पार कर ली मिनटों में। फिर एडवर्ड पार्क में रुका जहाँ लोहे के घोड़े पर फिरंगी सम्राट जार्ज पञ्चम बैठा था। जयन्त रुका नहीं; उसका चित स्थिर नहीं हुआ। वह चला और लालकिले के चौराहे पर आया। फिर वहाँ से घूमा चाँदनी चौक की ओर जहाँ से सीधा रास्ता स्टेशन को जाता था। वह सोच रहा था और अपने में पूरा पूरा हैरान था कि सरोज को मुझसे नफरत हो गई। उसी ने तो कहा था कि चले जाओ, भाग जाओ, डूब मरो। तुम मेरे कोई नहीं। तुमसे मेरा कोई मतलब नहीं। कहाँ जाऊँ, खुदकशी कर लूं। मुझे सबसे पहले अशोक का पता लगाना-ही आवश्यक है। सरोज के होंठों पर मुस्कुराहट देखकर मैं मरना चाहता हूँ। अगर वह हँसी नहीं तो मैं मर नहीं पाऊँगा। उसे जितना आन्तरिक दुख है वह मैं जानता हूँ।

जयन्त चला जा रहा था। चाँदनी चौक का घंटाघर अपनी उन्नत आभा लिये खड़ा था। नगरपालिका का वह वृहत भवन, महात्मा गाँधी पार्क यह सब पार करता हुआ वह जा पहुँचा मुसाफिर खाने में जहाँ का कोलाहल यह कह रहा था कि जीवन है सग्राम, बन्दे जीवन है संग्राम। एक आता है एक जाता बन्दे पल भर का विश्राम, जीवन है संग्राम।

जयन्त एक ओर जाकर खड़ा हो गया। उसने एक टिकिट-कलेक्टर से पूछा कि बम्बई के लिये गाड़ी किस समय मिलेगी। बताने वाले ने कहा

कि वह बिल्कुल तैयार खड़ी है। जयन्त दौड़ा, उसने जल्दी से पुल पार किया। तब उसके पैर काँप रहे थे और हृदय में धड़कन हो रही थी।

६८



जयन्त अभी पुल की सीढ़ियाँ पूरी नहीं उतर पाया था कि सीटी देकर गाड़ी चल दी। वह दौड़ा और थर्ड क्लास के एक डिब्बे का डन्डा पकड़ कर लटक गया। जब ट्रेन ने पूरी रफतार पकड़ी, तो भीतर बैठे यात्रियों में दया उमड़ी। वे बोले कि भीतर कर लो भाई। बाहर डंडा पकड़ कर कौन लटका है।

इस तरह जयन्त भीतर प्रविष्ट हुआ; लेकिन फिर भी उसे बैठने की जगह नहीं मिली। वह एक कोने में खड़ा हो गया। ऐक्सप्रेस गाड़ी हवा से बातें कर रही थी। यात्रियों में बातें चल रही थीं। कोई पढ़ रहा था, कोई सोच रहा था और कोई मशगूल था राम रसरे में। यह रेल की दुनिया थी जहाँ सभी अपरिचित मिलते हैं। कोई किसी का नहीं, कोई किसी का सगा नहीं। एक अन्धा-मोहताज हाथ में एकतारा लिए मधुर स्वर में गा रहा था—"प्रीति करि काहू सुख न लह्यो। प्रीति पतंग करै दीपक से अपनो अंग जर्यो। सूरदास खल काली कभंरी दूजो रंग न चढ़यो। प्रीति करि······"

जयन्त के मर्म पर आघात हुआ। उसे उस गीत ने चोट दी। तभी सहसा उसकी निगाह पड़ गई सामने बैठे एक युवक पर जिसकी गोद में एक बच्चा था।

ऐं! यह अशोक, मुन्ना भी इसके साथ है। यह कहाँ से आ रहा है और कहाँ जा रहा है। शायद इसने मुझे देखा नहीं वर्ना जरूर बोलता।

किन्तु अशोक ने उसे देख लिया था। उसकी आँखें तन गईं। उसमें एक ऐसी प्रतिक्रिया हुई जिसमें हिंसा निहित थी। उसने मुँह घुमा लिया कि जयन्त से कहीं मेरी आँखें चार न हो जायें।

अशोक जब मुन्ने को लेकर भागा था तो वह सीधा बम्बई गया। वहाँ उसने अपने को सुरक्षित नहीं समझा कि यहाँ जयन्त आ सकता है और मुझे ढूँढ़ कर ले जा सकता है। क्यों न छोड़ दूँ बम्बई और सूरत में जाकर रहूँ। इसीलिए वह पन्द्रह-बीस दिन सूरत में रहा। वहाँ उसका मन न लगा सो वह गया देहरादून। देहरादून का वातावरण उसे उपयुक्त नजर नहीं आया। वहाँ बर्फीले तूफान आते। हवा के साथ भीनी-भीनी फुहार पड़ती। स्थलवासी पहाड़ी प्रदेश में नहीं रह सकते। जैसा वासी होता है वैसे ही उसके साधन होते हैं। इसीलिए वह देहरादून बाम्बे एक्सप्रेस पर सवार हुआ, जो आकर रुकी चाँदनी चौक स्टेशन पर।

जयन्त ने अशोक को देखा तो उसकी जान में जान पड़ी। वह उसके पास जाना चाहता था। तब तक उसके होंठ विचक गये। उसने घुमा लिया मुँह जैसे वह जयन्त को पहचानता ही नहीं था। वह सोचने लगा कि जयन्त ही वह आदमी है जिसने मेरी दुनिया बरबाद की। यही है घृणा का वह दलित पदार्थ जिसका सार नहीं, जिसका तत्व नहीं। जो निरुद्देश्य है, जो उपेक्षणीय है, जो समाज का सदस्य नहीं, एक आवारा प्राणी है। अगर यह जयन्त न आता मेरी जिन्दगी में तो सरोज खुशहाल रहती। न मैं उस पर गोली चलाता, न मैं उसको आग लगाता। भला अपनी प्रेयसी को भी कोई प्रतारणा देता है।

जयन्त खड़ा टुकुर-टुकुर अशोक की ओर देखता रहा। ट्रेन की गति में भर रही थी बिजली। वह दौड़ती चली जा रही थी। छोटे-छोटे स्टेशन पीछे छूट रहे थे। वह डाकगाड़ी थी और इसमें बैठे मुसाफिर भी लम्बी सफर के थे।

जयन्त सोचता कि मैं जाऊँ, अशोक की गोद से मुन्ने को ले लूँ। उसे समझाऊँ, उसकी खुशामद करूँ। वह मानेगा कैसे नहीं। आदमी-ही आदमी

की बात मानता है। अगर ऐसा न हो तो समाज न चले, दुनिया न चले। दुनिया न जिये और इन्सान हो जाय पागल जब उसे सहयोग न मिले। सहयोग ही सहकारिता है, सहयोग ही समाज का दूसरा नाम। जहाँ सहयोग नहीं, वहीं तो इर्ष्या वास करती है। वहीं द्वेष के पाँव जमते हैं। वहीं कला का होता है जन्म जो संघर्ष को निमन्त्रण देती है।

अशोक अपनी उधेड़बुन में व्यस्त था। जयन्त चिन्ताकुल था और मुन्ना खो रहा था उस भीड़भाड़ में, जहाँ चहल-पहल मची थी। रेल की सीटी बजती। वह सिगनल पर थोड़ी सी धीमी होती और फिर करने लगती छकपक। इन्जन धुँआ उगलता। गाड़ी आगे बढ़ती। जयन्त खड़ा था किंकर्त्तव्य विमूढ़। उसे परिस्थिति का बोध नहीं था। वह खोया-खोया सा था। उसकी आँखों के आगे अशोक और सरोज दोनों खड़े थे।

६९



सोचता रहा जयन्त और सोचते-सोचते जब थक गया, तो वह अशोक की ओर बढ़ा। अशोक को उसका यह आचरण बहुत बुरा लगा। वह उठकर खड़ा हो गया और जैसे ही जयन्त ने मुन्ने को गोद में लिया वैसे ही अशोक ने दाँत पीसे और कहा—"यह मेरा दुश्मन है। यह मेरे बच्चे को भी मार डालेगा।

यह कहने के बाद अशोक एक क्षण भी नहीं रुका। उसने खींच दी जंजीर चलती हुई ट्रेन की। गाड़ी रुक गई। लोग एक दूसरे को पूँछने लगे कि क्या हुआ?

इस पर अशोक ने अधिकारियों को बतलाया कि यह जयन्त नामक व्यक्ति उसका पीछा कर रहा है। वह कई बार का सजायाफ्ता है। उसका

चरित्र अच्छा नहीं।

बस रेलवे पुलिस ले गई जयन्त को रेलवे मजिस्ट्रेट के पास। उसकी जमानत उसी समय हो गई थी। अधिकारी उससे न खिन्न थे, न अप्रसन्न। वह जैसा आया था वैसा ही चला गया और गया कुमारमाधव के बँगले जहाँ दुखियों को शरण मिलती थी। उपकारी के घर हर दिन होली होती है हर रात दिवाली। उसकी सम्पत्ति ऐसी होती है जैसे बहती नदिया। जो उपकार नहीं करते, अपकार से अपने हाथ काले करते हैं; उन्हें ही तो कहा जाता है अवसरवादी। यथार्थ से वे डरते हैं।

पुलिस आई थी जयन्त को ले गई। कुमारमाधव ने उसकी जमानत की थी तभी वह रेलवे पुलिस से मुक्त हुआ था और देहली आकर उसे चैन नहीं पड़ी। वह फिर बम्बई की ओर भागा। तब भी अशोक उसी बोगी में सफर कर रहा था। उसका मन बम्बई में नहीं लगा। वह वहाँ से जा रहा था अमृतसर। वह सोचने लगा कि है क्या यह? जहाँ मैं जाता हूँ वहीं जयन्त मिल जाता है। क्या यह मेरे पीछे-पीछे घूमता है? एक बार इसे पकड़वाया बन्द हुआ। अब जंजीर खीचना व्यर्थ है। देखूँ यह कहाँ जाता है, और क्या करता है? मुझे इसकी सूरत से नफरत है और यह मेरे पीछे-पीछे लगा है।

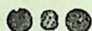
जब आदमी-आदमी का अच्छा रुख देखता है तभी उससे हँसकर बातें करता है। बदली हुई नजर और बिगड़े मन के भाव छिपाये नहीं छिपते। बच्चा तक पहचान जाता है कि कौन खुश है और कौन नाखुश। इसीलिए न अशोक उठा और न जयन्त ही आगे बढ़ा। दोनों साथ-ही-साथ सफर करते रहे और ऐसे बने रहे जैसे माटी के बुत। मानो वे कुछ जानते ही न हों।

ऐक्सप्रेस गाड़ी सर्र बाँधे दौड़ रही थी। उसमें बैठे लोग प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब कोई जंकशन आये, हम लोग पानी पियें नास्ता करें और जयन्त यह सोच रहा था कि अशोक ही सरोज की दुनिया है। उसी से उसकी जिन्दगी का जहाँ रोशन है। मैं उसे किसी भी शर्त पर छोड़ नहीं सकता।

उसे धिक्कारूँगा और उसे मनाऊँगा और कायल करूँगा। मैं यह कहूँगा कि कैसे हो तुम आदमी जो स्त्री पर अन्याय करते हो। उसे कत्ल कर सकते हो उसके बदले फाँसी भी तुम्हारे लिए आसान है। तुम औरत का मूल्य नहीं जानते। तुमने अभी सिर्फ बाहर की ही दुनिया देखी है।

न अशोक आगे बढ़ा और न जयन्त। जंकशन पर से वह छूटी और लगभग डेढ़ घण्टे दौड़ी। तब जाकर आया उसका दूसरा स्टाप। जयन्त उस पर सवार हुआ और सकूरबस्ती पहुँचा। तब उसके हृदय की गति जैसे मारी गई थी। उसका हृदय जैसे किसी ने छीन लिया था, टुकड़े-टुकड़े कर डाला था। वह अपने में नेस्तनाबूद हो गया था और बुझ गया था उस दिए की तरह जिसका तेल जल जाता है और बत्तियाँ जल जाती हैं। जैसे इन्सान की हस्ती पानी भरती है तब उसकी पराकाष्ठा मर जाती हैं। मर्यादा जब सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है तभी तो आदमी आवारा कहा जाता है। घर की दुनिया जब घर के अन्दर रहती है, तो घर के इन्सान घर के वासी होते हैं और जब घर से पैर निकालता है, वह ऊँचे-खाले पड़ता है तभी होता है बदनाम माटी का बुत। जिसे हम इन्सान कहते हैं जिसकी बड़ी-बड़ी बाँहें होती हैं।

इस तरह ट्रेन चलती रही। अशोक और जयन्त दोनों के अन्तर्द्वंद्व भी अपनी-अपनी सीमा का उल्लंघन करते रहे। एक चाहता था कि सामने की छाया दूर हो जाय और दूसरा यह कामना कर रहा था कि सम्मुख बठी यह मनुष्य की काया मेरी माटी की गुड़िया की हो जाय। सहसा ट्रेन ने जोर की सीटी दी। शायद कोई स्टेशन आ रहा था।



डाकगाड़ी जितनी सुविधा देती है यात्रा में, जितनी वह शीघ्रगामिनी होती है, उतनी ही होती है वह हानि की प्रतीक; क्योंकि खतरे की घन्टी उसके कानों में झूलती रहती है। उसको यदि किसी जगह अचानक रोकना होता है, तो तेज रफ्तार धीरे-ही-धीरे कम करनी पड़ती है। दुर्घटना उससे क्षण में हो सकती हैं क्योंकि वह द्रुतगामिनी होती है। हवा से बातें करती रेल अपनी पटरी पर दौड़ रही थी। सिगनल पर सिगनल आते; छोटे-छोटे स्टेशन पीछे छूटते। लाल झण्डी का नाम नहीं, जहाँ देखो वहीं हरी पताका। तभी तो भाप की गाड़ी को हवा उड़ाये लिये जा रही थी। जयन्त खड़ा था; अशोक बैठा था। दोनों की दृष्टि स्थिर थी और ट्रेन चल रही थी छपछप। इन्जन सीटी दे रहा था।

आगे एक नाला आया। यह बहुत पुराना था। इस पर जो रेल का पुल था उसको सदी बीत गई। उसकी मजबूती पर लोग कायल थे। वह बहुत ही सुदृढ़ था। लेकिन वह क्या? ईंटों की भारी भरकम डाट खड़खड़ा कर बैठ गई। पटरियाँ झूल गईं, गाड़ी पलट गई। सभी डिब्बे खड़े से बेंड़े हो गये। त्राहि-त्राहि मच गई। यात्रियों का रुदन वातावरण में गूँज उठा। बहुत से मर गये थे। अनेक घायल हुए। जयन्त के भी चोट आई। उसे जब होश आया, तो मुन्ने को रेलवे पुलिस ले जा चुकी थी। अशोक विदा हो गया था सदा-सर्वथा के लिए। बर्थ के नीचे उसकी लाश पड़ी थी।

जयन्त ने लाश को उसी नाले में प्रवाहित किया। उसने बहुत पता लगाया; लेकिन मुन्ना नहीं मिल सका। कुछ लड़के देहली अनाथालय भेज दिये गये थे। स्पेशल गाड़ियाँ आईं। क्रेन ने आकर इन्जन उठाया। उसी ने किये खड़े सब डिब्बे। तभी मातम मनाता हुआ चल दिया जयन्त। वह कुमारमाधव के बँगले आया। सरोज आजकल वहीं थी।

समाचार पत्रों में भी यह सनसनी खेज घटना छपी। सरोज खूब रोई

बुक फाड़। वह विधवा हो गई थी। उसका सुहाग लुट गया था। कुमार-माधव उसे समझाते; सुनीता बार-बार उसके आँसू पोंछती और कहता जयन्त कि दुख न करो सरोज। दुख ही तो आदमी की परीक्षा है। दुख ही वह धन है जो सुख को सामने ला देता है वह अशोक की निशानी मुन्ने को देखो। आज ही हम लोग चल कर देखते हैं कि वह किस अनाथालय में है।

किन्तु सरोज को सन्तोष नहीं होता। उसकी हिचकी भर भर आती वह सिसकती ही चली जाती। जब स्वर निकलता तो हाय। जब होठ मौन रहते-रहते थक जाते, तो दोनों मिल कर करते उफ। उसे याद आने लगी बीती हुई कहानी कि जब जयन्त मरा था तो मेरी चूड़ियाँ तोड़ी गई थीं मेरी माँग पानी से धोयी गई और पैरों से निकाल दिये गये बिछूए। मैं विधवा कहलाने लगी। पहले मैं नकली विधवा थी अब यह असलियत है। यह सोचती कि जहाँ कलह का बाजार गर्म हो जाता है, वहाँ फिर भूतों के ही डेरे लगते हैं, इन्सानियत मर जाती है। हाय हाय खा जाती है घर को झगड़ा-झंझट अच्छा नहीं होता। किसी न किसी की जान पर आ बनती है।

और जयन्त सोचता कि परिस्थितियाँ आदमी के आगे-पीछे और दायें बायें चलती हैं। वे जब मोड़ लेती हैं तो आदमी चौंक जाता है। आखिर करे भी क्या इन्सान जो उनका दास ठहरा। हर आदमी कहीं न कहीं पर कमजोर है। कहीं न कहीं पर मजबूर। हर बसर के कलेजा है। कभी वह ठंडा हो जाता है, कभी जल कर राख और कभी-कभी तो फट जाता है। ऐसा ही है सब। सरोज सन्तोष नहीं करेगी तो और करेगी क्या?

कुमारमाधव अकेले में रूमाल से अपने आँसू पोंछते और रोती सुनीता भी कि कोई उसे देख न ले। महीनों-सालों में कलह चल रही थी। जयन्त आया, उसने सरोज का गला दाबा। अशोक का उस बेजारी से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। वह पुनः भँवर जाल में पड़ी। वह जल गई। उसकी सोने जैसी काया बद-सूरत हो गई। हाय नारी! कितना सहती है तू। तेरी समाई को देख पुरुष की क्षमता पानी भरती है। तू दुख को पी जाती है जैसे चीनी मिला दूध। तू सदमा भी सह लेती है, तू आँसू पी मुस्कुराती है,

तभी तो धन्य कही जाती है।

तो सरोज ऐसी ही थी माटी की गुड़िया और वही तो थी देश की माटी की लाज-लाजवन्ती। भारतीय नारी अपनी परम्परा में अद्वितीय है। सरोज और सुनीता ने भी वही आदर्श स्थापित कर रखा था। बँगले में मातम मह-मान बन कर आया था। सभी उसका किसी न किसी रूप में आतिथ्य कर रहे थे। वह टिका था और जाने का नाम नहीं ले रहा था।

७१



अशोक की अचानक मृत्यु ने जैसे सबको दहला-सा दिया था। हँसी उस घर से विदा हो गई। अब तक वापस नहीं लौटी और खुशियों के भी हो गये थे डेरे कूच। वह जाते-जाते कह गई थी कि बीते दिन फिर वापस नहीं आते केवल उनकी याद रह जाती है और यह याद ही होती है वह कसक जो आदमी को बेचैन कर देती है। फिर बेचैन इन्सान स्थिर नहीं रह पाता उसकी क्षमता में परिवर्तन होता, तब वह जड़ता की चादर ओढ़ दोनों हाथ फैला-फैला कर कहता कि हाय मैं लुट गया, मैं बरबाद हो गया। जमाने तू किसी का नहीं और भगवान भी बेपीर है।

सरोज के घर में जिस दिन से ताला बन्द हुआ वह फिर नहीं खुला। बँगले का रंग फीका और फीका लग रहा था। कुमारमाधव गम्भीर रहते। जयन्त ने भी पकड़ रखा था हाथ साथी मौन का। सुनीता थोड़ा-बहुत बोलती और सरोज तो जैसे सब भूल ही गई थी कि वह कहाँ है और क्या है। घर में जब अच्छा-बुरा कोई भी परिवर्तन होता है, तो उसका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है सबसे पहले और बहुत अधिक। नीमा जब माँ का मुँह देखती, तो वह जो कुछ कहना चाहती भूल जाती और जब सरोज के पास जाती,

तो चुपचाप बैठ जाती। उसे यही शंका बनी रहती कि सरोज बुआ कहीं रोने न लगें। बाप को भी पाती वह अपने में गम्भीर। जयन्त का भी रुख उससे छिपा नहीं था।

इस तरह वर्तमान अपना मौन नृत्य कर रहा था। उसके हाथों में थे दो साज। एक में सिसकियाँ समाई थीं और दूसरे में साँसें। क्या दुनिया है? और कैसे दुनिया के लोग? मातम का भी अस्तित्व कम नहीं। वह सबके घर जाता है और रुलाकर चला आता है। बँगले में जितने लोग थे सब की विचारधारायें अलग-अलग वह रही थीं। सभी नदियाँ निकली थीं एक ही पर्वत से और सभी गिर रही थीं भावनाओं के एक निश्चित समुद्र में। यह था गति का मोड़। घर में जब कोई अनहोनी हो जाती है, समस्या एक होती है और बड़ी जटिल, तो उसके समाधान सोचे जाते हैं। उसके तथ्य पर पहुँचा जाता है। हर आदमी अपने-अपने दिमाग का जोर लगाता। कोई कहता यह। कोई कहता वह। किन्तु जटिल समस्यायें न तो जल्दी सुलझती हैं और न वे तत्काल ही समाधान को अपने पास फटकने देती हैं। वही स्थिति थी कुमारमाधव के बँगले में। जयन्त सोचता कि अब सरोज का क्या होगा। यों तो कुमारमाधव बाबू उसे अपनी छाया से कभी अलग नहीं होने देंगे; लेकिन फिर भी वह युवती है, वह नारी और माँ है। उसकी उम्र कच्ची है। क्या वह व्याह नहीं कर सकती? छिः छिः; अगर ऐसा सुन लेगी सरोज, तो शायद मुझे अच्छी दृष्टि से न देखे; क्योंकि दुखी आदमी से सुख की सेज पर बैठने को कहो, तो वह रो देता है। यही स्थिति है सरोज की।

सुनीता दूसरा ही बाग लगा रही थी जिसमें नये पेड़ों में पुराने फूल खिले थे। फल भी लटक झूल रहे थे। वह उजड़ी दुनिया बसाने की इच्छुक थी। वह टूटे हुए तार जोड़ सरोज और जयन्त की जिन्दगी का सरगम बजाना चाहती थी।

इसी तरह जयन्त की योजनायें, उसकी भावनायें उसी तक सीमित थीं। उसने यह भी सोचा कि मेरी बड़ी लालसा थी और अब भी है मैं मुन्ने

को बड़ा आदमी बनाऊँगा, बहुत बड़ा। मैं जीऊँगा और कमाऊँगा मुन्ने के लिये। मैं सरोज के हित के लिये जान की बाजी तक लगा दूँगा।

सुनीता की गुप्त योजना उसी में निहित थी और कुमारमाधव को अभी तक भावी पर सोचने के लिए समय नहीं मिला था। वे वर्तमान से ही उलझ रहे थे। शेष बची थी सरोज। उसका सोचना-विचारना कुछ नहीं। उसके पास सूनी साँसें थीं और आँखों में आँसू।

७२



अशोक की मृत्यु को लगभग एक महीना हो गया। मुन्ने का पता नहीं चला कि वह अनाथालय में है; क्योंकि सभी यतीमखाने देख लिये गए थे। एक दिन जी ऊबा, तो सरोज ने सुनीता से कहा कि मैं कुछ दिन अपने घर में जाकर रहूँगी। सुनीता इसके लिये प्रस्तुत नहीं थी। उसने पति से कहा। कुमारमाधव ने सरोज को रोका कि अकेले में तुम रो-रोकर मर जाओगी सरोज मैं तुम्हें अकेला नहीं रहने दूँगा।

"तो भइया कहाँ से लाऊं जिन्दगी। मैं तो रोते-रोते थक गई। मेरा संसार भी सूना हो गया। मेरा मुन्ना नहीं मिला। अब घुल-घुलकर मिट जाने दो मुझे। मेरा भाग्य अच्छा नहीं। मैं नसीब की खोटी हूँ।"

यह कहा सरोज ने और कुमारमाधव वे वक्ष से लग फूट-फूट कर रोने लगी। वे उसे समझाने में व्यस्त हुए, तभी सुनीता ने वहाँ प्रवेश किया। आते ही वह बोली—"जिन्दगी लाने की जरूरत नहीं सरोज। वह तुम्हारे सामने खड़ी है। अगर तुम चाहो, तो वह मुस्करा सकती है।"

सुनीता की इस गूढ़ वार्ता का अर्थ कुमारमाधव भी नहीं समझ पाये। वे चक्कर में पड़ गये। चौंकी सरोज भी। उसने सिर उठाकर सुनीता को

देखा। एक कोने में खड़ा था जयन्त। उसने पूरी गति विधि को परखा; किन्तु निष्कर्ष नहीं निकाल पाया कि सुनीता क्या कहती है।

और तभी सुनीता ने पकड़ा सरोज का हाथ। दूसरे में आँचल थाम उसने उस दुखिया के आँसू पोंछे। फिर धीरे-धीरे बोली—"मेरी बात समझी नहीं सरोज? अच्छा मैं साफ-साफ कहती हूँ सुनो जयन्त तुम्हारा पहला पति है, तुम्हारा चिर परिचय। क्या तुम उसकी गृहस्थी बन सकती हो? क्या तुम फिर से उसका हाथ पकड़ सकती हो। मरने वाला तो लौटकर आता नहीं। उसके लिए कब तक रोओगी। दोनों प्राणी सुख-चैन से रहो, मेरा यह आशीर्वाद है।"

जयन्त बुत बना खड़ा था। कुमारमाधव को सुनीत की बात बेहद पसंद आई। मुस्कुरा दिये। किन्तु रोने वाली आँखें क्रोध दिखलाने लगीं। सरोज छूटते ही बोली—"वाह दीदी, वाह! एक राह जिन्दगी में एक ही बार चली जाती है, बार-बार नहीं? कहाँ है जयन्त? वही तो सामने खड़ा है। यही है वह आदमी जिसने मेरा सुख छीना, सौभाग्य छीना। मैं जयन्त से व्याह करूँ? अब यह भूल नहीं कर सकती, नहीं कर सकती। अभी तक मुझमें दया थी, माया-ममता थी; लेकिन अब मैं हो गई हूँ जयन्त के लिए कठोर; मेरा चित्त फट गया। यह तब से हुआ जब मैं जल गई थी। मुझे मजबूर न करो कोई।"

कुमारमाधव बोलना चाहते थे; लेकिन यह अवसर उन्होंने सुतीता के लिए ही छोड़ा। उस कुशल गृयस्थी ने चातुर्य भरे विवेक से काम लिया। वह सरोज की ठुड्डी पकड़ प्रश्न करने लगी—"अच्छा तुमको जयन्त से नफरत है, तुम्हारा चित्त फट गया है। मान लो अभी उसकी मृत्यु हो जाय, तो रोओगी तो नहीं? खबरदार सरोज अगर एक भी आँसू गिरा। ठोक है। तुम उससे नफरत करती हो। तुम्हारी बात मान ली और जयन्त किनना चाहता है तुम्हें मैं यह भी जानती हूँ। वह सिर्फ तुम्हारे-ही लिए जी रहा है सरोज। उसकी दुनिया तो बरबाद हो चुकी। कितना दुख हुआ होगा उसे। तुम्हारे मुँह से ऐसी बात निकली।"

"मुझे इसकी परवाह नहीं। मैं जयन्त की हमदर्दी की कायल नहीं। उसकी दुनिया बरबाद हुई, तो मैं कब आबाद हूँ।"

सरोज ने दृढ़ता के साथ यह कहा उसने मुँह घुमा लिया। और कुमार-माधव कुछ कहें-कहें जब तक जयन्त तेजी के साथ कमरे से बाहर निकल गया। प्रसंग जहाँ-का तहाँ रह गया। सुनीता उसके पीछे भागी कि वह कहीं चला न जाय। लेकिन सरोज मुंह घुमाये खड़ी-ही रही। उसमें कोई हरकत नहीं हुई।

७३



सुनीता 'जयन्त-जयन्त' पुकारती रही; किन्तु वह उसकी दृष्टि से ओझल हो चुका था। फिर भी वह उधर भागी। जब देर हो गई, वह वापस नहीं लौटी, तो कुमारमाधव बाहर आये वे चल दिये अनिश्चित दिशा की ओर और 'सुनीता-सुनीता' पुकारने लगे।

सरोज अब भी ज्यों-की-त्यों खड़ी थी। जब देर हो गई, न सुनीता लौटी और न कुमारमाधव, तो वह सोचने लगी कि यह दोनों पति-पत्नी जयन्त के पीछे गये हैं उसे मना कर लायेंगे। मैं नहीं करती परवाह। मेरी दुनिया में तो आग लग गई है।

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। दिन और रात का नियम नहीं बदलता। न बदलता है प्रकृति का कोई कार्यक्रम। आदमी ही कर्त्तव्य को भूल जाता है, तभी तो वह कहा जाता है परिस्थितियों का दास। मनुष्य सब कुछ है और कुछ भी नहीं।

समाज में जब कोई नया चेहरा प्रतिष्ठा का हार गले में पहनता है, तो सारा समूह समवेत-स्वर में कहता है कि घड़ी आज की प्यारी-प्यारी मुबारिक। किन्तु जब अपमान का टीका किसी के माथे पर लगा होता है, तो वही समाज कहता है थू-थू, छिः छिः।

सरोज को दुनिया नजर आ रही थी पुरानी और नयी दोनों। उसने जो प्यार की परिभाषा सीखी थी, वह महत्वहीन सिद्ध हुई। उसने जो त्याग की भूमिका अभिनीति की थी, उसमें भी कुछ नहीं मिला। क्रोध उसका साथ दे रहा था, और वह उसी ज्वार में बह रही थी। उसका मन कहता कि जाने दो जयन्त को। वही मेरा कौन है। जो प्यार करना जानता है निर्वाह नहीं कर सकता। वह भी कोई आदमी है। जो किसी को पेड़ पर चढ़ा कर उसकी जड़ काट सकता है, जो परदेश में लाकर अपना प्यार भुला सकता है, जो हाथ पकड़ कर साथ छोड़ देता है, ऐसा आदमी कुछ भी नहीं, मिट्टी है मिट्टी। स्त्री-पुरुष पर बहुत जल्दी विश्वास कर लेती है किन्तु पुरुष उसे धोखा देता है। आदमी औरत को नाचीज समझता है, इसीलिए तो तवाह रहता है।

जब लगभग दो घण्टे बीत गये न कुमारमाधव लौटे, न सुनीता, तो सरोज को चिन्ता हुई। वह सोचने लगी तो जयन्त चला गया! शायद उसे बात लग गई। कहाँ गया होगा वह। कहाँ ढूँ-ढूं। अरे! बड़ी भूल हो गई। मैंने क्या से क्या कह दिया।

कमरे का क्लाक टिक-टिक कर रहा था। उसका पेन्डुलम झूल रहा था। मिनट पर मिनट गुजरते। सरोज चिन्ताकुल थी। उसे याद आ गया वही दिन जब बच्चे उसे चिढ़ा रहे थे कि अरे यह क्या लेगी गुड़िया। इसका बाप शराबी है। इसकी माँ बीमार है, इसे रोटी तक तो मिलती नहीं। गुड़िया क्या खरीदेगी। तभी किसी ने पकड़ी थी मेरी चोटी और कहा था कि चल मेरी माटी की गुड़िया, और जब बरसा था पानी। गुड़िया के रंग धुल गये थे, तभी तो कहा था जयन्त ने कि मैं इसकी माँग भर दूंगा और सब रंग।

तू चिन्ता क्यों करती है।

जब सरोज का अन्तर्द्वन्द्व उसे विचलित करने लगा, तो वह भी कमरे से बाहर निकली। वह चल दी जमुना जी की ओर कि शायद जयन्त वहीं गया होगा।

× × ×

जयन्त अपने लिए नहीं, सरोज के लिए ही जा रहा था, यह सत्य था। वह मुन्ने को बड़ा आदमी बनाना चाहता था और सरोज को सुखी देखना। किन्तु जब सरोज के ही मुँह से कटु शब्द सुने, तो वह चल दिया कि मेरा जीवन व्यर्थ है। अशोक मर गया। मैं भी प्राण दे दूँ। बस सरोज सुखी हो जायेगी। मैंने तो अपनी दुनिया बिगाड़ ली और फिर भी माटी की गुड़िया को सन्तोष नहीं हुआ।

अच्छा सरोज, अब जयन्त तुम्हें अपना मुँह नहीं दिखायेगा। वह भागा जमुना की ओर और सुनीता ने पटेल नगर की राह पकड़ी। कुमारमाधव जब बँगले से बाहर निकले, तो वे पहाड़गंज की ओर भागे। उधर जयन्त पहुँचा निगम बोध घाट, जहाँ लाशें जल रही थीं, चिल्ला चिंध आ रही थी। वहाँ उसे बोध हुआ कि जिन्दगी कुछ नहीं है, जो कुछ है सो मृत्यु। आदमी यहीं विश्राम पाता है। वह भागा और भागता गया। उसने जमुना का पुल पार किया। वह बाँध की ओर बढ़ा, जो गाँधी नगर की पृष्ठ भूमि में था।

वहाँ जमुना हहर-हहर वह रही थी। बाँध के ऊँचे कगार से उसकी लहरें केलि-क्रीड़ा कर रही थीं। धार बहतीं, यहाँ पर आकर कगार से टकराती। जल घूमता, वह छल-छल करता। यही तो वह राह थी जो सामने की बस्तियों को जलमग्न कर देती। इसीलिए बाँध बाँधा गया और उसकी दीवाल ऊँची उठाई गई।

जयन्त खड़ा था। सामने का सूरज उससे कह रहा था कि कूद पड़ मूर्ख खता क्या है ? तेरी जिन्दगी में अब कुछ भी नहीं रहा। हवा भी उसे सलाह देती। कानों में फुस-फुस करती कि जब प्यार मर गया, तू क्यों जिन्दा है। प्यार के राहियों की मौत-ही मंजिल होती है; यह तुझे नहीं मालूम ?

दे दे जान जयन्त। तेरा प्यार अमर हो जायेगा।

जयन्त ने खूब सोचा, खूब विचारा। फिर उसने कमर पर रखे दोनों हाथ और जैसे-ही कूदने के लिए प्रस्तुत हुआ, वैसे ही किसी ने आकर रख दिया पीछे से पीठ पर उसके हाथ। जयन्त ने देखा; वह पीछे घूमा। हाथ सरोज का था। वह खड़ी रो रही थी।

७४



जब जयन्त ने मुँह घुमाया, तो सरोज सिसक-सिसक कर रोने लगी। बोली कुछ नहीं। जयन्त ने उसे ललकारा, उसे धिक्कारा और खूब कहा कि अगर औरत के पास आँसू न हों, तो आदमी उसके चक्कर में न पड़े। सरोज तू कुछ नहीं, मैंने तुझे हीरे की कनी समझा था। जा, चली जा, डूबने दे मुझे। मैं जिन्दगी नहीं, मौत चाहता हूँ। तू आई क्यों यहाँ? तू तो मुझसे नफरत करती है। मैं तेरी ही बात दोहरा रहा हूँ कि मेरी माटी की गुड़िया फूट गई। वह माटी ही में मिल गई। मेरी सरोज मर गई। जा चली जा जयन्त तेरा कोई नहीं, उससे तेरा कोई नाता नहीं।

"ऐसा न कहो जयन्त। न कहो! सरोज तुम्हारे बिना नहीं रह सकती। वह मर जायेगी। तुम कूदो, मैं भी कूदती हूँ। जमुना माता दोनों की बलि लेंगी। क्या भूल गये पंजाब की वह कहानी? सोहनी और महिवाल दोनों साथ-साथ डूबे थे। सोहनी का कच्चा घड़ा फूट गया था और मेरा भाग्य फूटा है जयन्त। चलो, कूदो। दो जान, मैं भी पीछे नहीं हूँ।

रो-रोकर यह कहा सरोज ने और वह रोती ही रही । जयन्त चकराया परिस्थिति उसे सोचने पर विवश करने लगी । वह कुछ कहे-कहे तब-तक सरोज पुनः बोल उठी—"अशोक दुनिया से चला गया। मेरा मुन्ना भी खो गया। अब इस जीवन नैया के खेवनहार तुम्हीं हो, पतवार तुम्हीं । मेरी माँग सिन्दूर से भरो, मुझे स्वीकार करो । मैं तुम्हारी पत्नी हूँ ।

जयन्त सरोज का मुँह देखने लगा। उसके आँसू धार बनकर बह रहे थे। वह खूब सुबक रही थी। हवा दोनों का माथा चूम रही थी। वह कह रही थी कि आँसू पोंछों, हाथ में हाथ लो और खा लो यह कसम कि यह हाथ कभी नहीं छूटेगा। जीवन भर पिया साथ रहेगा। प्रीति पुरानी फिर जागी है। वह सोयेगी नहीं, वह रहेगी अमर। और ऐसी अमर कि जैसी गंगा-जमुना ।

सरोज सिसक-सिसक कर रो रही थी। जयन्त बुत बना खड़ा था । तभी वहाँ आ गये कुमारमाधव और पीछे-पीछे सुनीता । दोनों ने परिस्थिति का अध्ययन किया । दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए कि सरोज यहाँ आ गई है । सुनीता रोने लगी । वह रोते-रोते जयन्त से बोली—"अब भी खड़ा है मूर्ख ! पकड़ ले इसका हाथ । यह तेरी पत्नी है । तुझे मेरी कसम । नीमा के बाप की कसम । मेरी बात मान ले जयन्त । तू मेरा छोटा भाई है ।"

और एक नई बात । कुमारमाधव भी रोने लगे बच्चों की तरह । उन्होंने जयन्त के कन्धे पकड़े, खूब जोर से हिलाये और वे रोते-रोते बोले—"अरे पागल क्या तेरी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं। मुझे शर्मिन्दा करता है। सरोज का सहारा तू-ही है। उसे अँगीकार कर। या फिर मार मेरे गाल पर थप्पड़। जयन्त होश में आ । सरोज तेरी पत्नी है ।"

अब जयन्त भी रोने लगा शिशु की भाँति अधीर हो । वह बोला—"पत्नी नहीं, यह मेरी माटी की गुड़िया है। मैं इसे दुलहिन बनाऊँगा। खूब सजाऊँगा । माफ कर दो दादा मैंने आप लोगों को बहुत दुख दिया। और सरोज, तुमने यह सिद्ध कर दिया कि नारी खूब सहती है अपेक्षा-कृत पुरुषों के । चल, चल माटी की गुड़िया ।"

चारों व्यक्ति अनमोल मोती बहा रहे थे। जमुना हहर-हहर बह रही थी। उसका नीला जल याद कर रहा था कृष्ण कन्हैया को उसने सदियाँ नहीं, युग देखे थे, उसने प्रणय के गीत सुने थे और विरह का राग भी। उसने देहली का वैभव देखा था और उसका कीचड़ भी। जो कभी लालकिले की दीवालों को चूमती हुई बहती थी, आज आ गई मीलों दूर। कलयुग में सभी कुछ सम्भव है सभी कुछ अनिश्चित। जमुना का पाट इतना चौड़ा था कि दूसरे किनारे के लोग छोटे-छोटे दिखलायी पड़ते। उस पर जो स्टीमर चलते, वे भी छोटे ही नजर आते। वह नदी थी बेजोड़। राजधानी देहली उस पर गर्व करती।

रुदन व्यापार चल रहा था हवा सन-सन डोलती। दिशायें कहती मुँह खोल कि यह मिलन का पर्व है और मिलन की वेला। यह जिन्दगी का नया अध्याय है और आदमी का नया बसेरा।





७५

जमुना के बाँध पर पैदल ही सब लोग चल पड़े। आगे-आगे थे कुमार-माधव। उनके पीछे सुनीता। माटी की गुड़िया अपनी दीदी का अनुकरण कर रही थी और उसका अनुगामी था जयन्त जिसके हृदय की धड़कन तीव्र हो गई और जिसकी साँसें तेजी से चल रही थीं।

जमुना का पुल आया; सब उस पर से पैदल ही गुजरे और जब पुल के पार आये, तो कुमारमाधव ने टैक्सी की। वे करौलबाग पहुँचे। सुनीता

192

सरोज का हाथ पकड़ इसे अपने साथ के कमरे में लिवा ले गई और कुमारमाधव ले आये अपने साथ जयन्त को। तभी टेलीफोन की घंटी बजी। उन्होंने रिसीवर उठा कर कान से लगाया और चोगे से मुँह। यह गाँधी अनाथालय का टेलीफोन था कि अशोक का लड़का पहले शहर से बाहर था। कल इस अनाथालय में आ गया है। आप आइये और प्रमाण देकर उसे ले जाइये।

जयन्त को जब यह मालूम हुआ तो वह खुशी से उछल पड़ा। वह दौड़ता-दौड़ता सरोज के पास गया और व्यस्त स्वर में बोला—"हमारा मुन्ना मिल गया सरोज। अभी-अभी टेलीफोन आया है। वह गाँधी अनाथालय में है। अभी चलते हैं हम सब और उसको ले आते हैं।"

सरोज प्रसन्नता के अतीव आवेग के कारण कुछ भी बोल नहीं पायी सुनीता तभी कह उठी—सच, जयन्त के तो मन की मुराद मिल गई। अब मेरी सरोज जी जायेगी। उसे जीने का सहारा मिल गया। देर न करो, चलो जल्दी।"

यह कह सुनीता ने जयन्त के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। वह सीधी पति के पास पहुँची और जोर देकर बोली—"अरे! तुम चुपचाप बैठे हो? फौरन चलो। सरोज का मुन्ना मिल गया है न! उसे लाना है। तुम हँसे नहीं, तुम्हें खुशी नहीं हुई। यह सब क्या है?"

"कुछ नहीं, कुछ भी नहीं। चलो मैं तैयार हूँ।"

यह कहा कुमारमाधव ने, लेकिन फिर भी वे गम्भीर ही रहे। उन्हें याद आने लगा वह दिन जब अशोक आत्महत्या के लिये जमुना के पुल पर से कूदा था। तो अशोक हम लोगों के बीच से चला गया सदा-सर्वदा के लिये! क्या हो जाता है, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की जाती। आदमी सपना बन जाता है, जो एक दिन साक्षात अपने सामने खड़ा होता है।

सब लोग कार में आकर बैठे। गाड़ी चली। तब भी कुमारमाधव सोच रहे थे कि जब आदमी हमसे दूर हो जाता है, दुनिया उसे छीन लेती है, तो हम उसे बहुत याद करते हैं। रोते हैं कलपते है और उस समय उसका मूल्यांकन कर लम्बी-लम्बी साँसें लेते हैं न सम्पर्कीय बुरा होता है, न मित्र और पड़ौसी। स्वजन